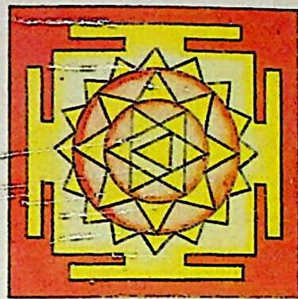
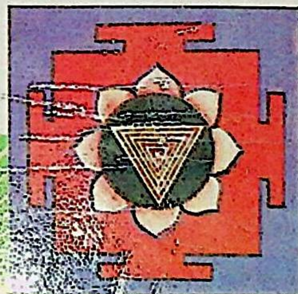
तांत्रिक सिद्धियां





डा० नारायणदत्त श्रीमाली



हिन्द पुस्तक भण्डार दिल्ली

तांत्रिक सिद्धियां

आशीर्वाद
डा० नारायणदत्त श्रीमाली

सम्पादन
योगी ज्ञानानन्द

संयोजन
कैलाशचन्द्र


हिन्द पुस्तक भण्डार
खारी बावली . दिल्ली - 110006

प्रकाशक

हिन्द पुस्तक भण्डार, दिल्ली-110006

संबद्ध संस्था

पुस्तक महल, दिल्ली-110006

विक्रय केन्द्र

• 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006.........................फोन 2944314, 2911979

• 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002............फोन: 3268292-93

प्रशासनिक कार्यालय

एफ-2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

फोन : 3276539, 3272783, 3272784

टेलेक्स : 031-78090 एस बी पी इन * फैक्स: 91-11-2924673

शाखा कार्यालय

• 23-25, जाओबा वाडी, ठाकुरद्वार, बंबई-400002 फोन: 2010941

• 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलोर-560027 फोन: 2234025

• खेमका हाउस, वूमेन्स हॉस्पिटल के सामने, अशोक राजपथ, पटना-800004 फोन: 653644

मूल्य : 40/-

10-3

दो शब्द

मुझे प्रसन्नता है कि एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है जिसकी विषय-वस्तु सर्वथा मौलिक और अप्रकाशित है, तथा वे साधनाएं तथा सिद्धियां जिनके वल पर भारत सम्पूर्ण विश्व का सिरमौर कहा जाता है और प्रत्येक साधक की इन सिद्धियों को प्राप्त करने की लालसा रहती है, वे सिद्धियां स्पष्ट रूप में इस पुस्तक के माध्यम से पहली बार प्रकट हो रही हैं।

सिद्धियों और साधनाओं का विवरण स्पष्ट रूप से दे दिया गया है, इस संबंध में जो भी पत्र मुझे प्राप्त हुए, मैंने बिना उनमें संशोधन किये उन पत्रों को इस पुस्तक में स्थान दिया है, अतः इन सिद्धियों की सफलता-असफलता के प्रति प्रकाशक लेखक या सम्पादक किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं। जो साधक साधना करना चाहें, वे अपने विवेक और इच्छा के अनुसार इनसे लाभ उठा सकते हैं।

साधना कार्य एक कठिन कार्य है। इस पुस्तक में जो भी सिद्धियां और साधनाएँ दी हैं, वे प्रामाणिक हैं, पर सफलता और असफलता के मूल में साधक का विवेक और सामर्थ्य शक्ति मुख्य रूप से प्रभावक रहती है। यदि साधक किसी साधना में असफल होता है तो यह उसके अपने विवेक और सामर्थ्य शक्ति की न्यूनता ही कही जा सकती है।

प्रकाशक महोदय की तत्परता और रुचि के कारण यह पुस्तक इतने शीघ्र समय में सज-धज करके प्रकाशित हो रही है, उसके लिए प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक में वर्णित घटनाएं कल्पना एवं यथार्थ का सुखद सामंजस्य हैं।

यह पुस्तक डॉ० श्रीमाली के संपूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। अतः उनका नाम मैं अपने गुरु होने के नाते आदर व्यक्त करने के लिए दे रहा हूँ। इस दृष्टि से यह पुस्तक मैं गुरु चरणों में समर्पित भाव से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

—योगी ज्ञानानन्द

भूमिका

योगी ज्ञानानन्द ने परम प्रिय नारायणदत्त श्रीमाली के जीवन से सम्बन्धित पत्रों का संग्रह मुझे दिखाया, उनकी इच्छा इन पत्रों के प्रकाशन की है, इनमें जो पत्र उन्होंने चुने हैं वे वास्तव में ही महत्वपूर्ण हैं और श्रीमाली जी के व्यक्तित्व की झांकी इन पत्रों के माध्यम से प्राप्त होती है।

मेरी धारणा है कि ये पत्र बहुत पहले प्रकाशित हो जाने चाहिए थे, क्योंकि ये पत्र कालजयी होने के साथ-साथ साधना के क्षेत्र में कार्य करने वाले साधकों के लिए भी प्रेरणा स्तम्भ हैं। इनके माध्यम से वे अपने प्राणों में एक नई ऊर्जा का संचार अनुभव कर सकेंगे और अपने पथ पर बढ़ने में उन्हें एक नया साहस और शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

मैं श्रीमालीजी के बहुमुखी व्यक्तित्व से परिचित हूं, यद्यपि मैं उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आंकने में समर्थ नहीं हूं परन्तु जितना भी मैं उनके सम्पर्क में आ सका हूं उससे ज्ञात होता है कि उनका व्यक्तित्व हिमालय के समान विराट और गंगा के समान निर्मल है। उन्होंने जीवन को पूर्ण क्षमता के साथ जीया है, और प्रत्येक क्षण का उन्होंने आनन्द के साथ उपभोग किया है। कई बार जब उनके व्यक्तित्व के बारे में चिन्तन करता हूं तो आश्चर्यचकित रह जाता हूं कि एक व्यक्ति साधना के इतने विविध आयामों को किस प्रकार से स्पर्श कर सकता है, पर श्रीमालीजी का व्यक्तित्व हमारे सामने इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जिस प्रकार से वह अपनी विराटता को छू सका है।

मन्त्र के क्षेत्र में श्रीमालीजी अद्वितीय हैं, उन्होंने मन्त्रों के मूलस्वरूप को स्पष्ट किया है और वेदोक्त मन्त्रों की मूल ध्वनि को स्पष्ट कर हमें उस युग से साक्षात्कार कराया है जब इन मन्त्रों की रचना हुई थी। उनके द्वारा इस प्रकार के मूलध्वनियुक्त मन्त्रों के टेप तैयार किये गए हैं जो कि अपने आप में ऐतिहासिक कार्य है। आने वाली पीढ़ियों के लिए ये टेप संग्रहणीय रहेंगे क्योंकि इनके माध्यम से वे

साधक वेदों की ऋचा और उसकी मूल ध्वनि का परिचय पा सकेंगे कि हमारे महर्षियों के मुंह से वेदों की ध्वनि किस आरोह-अवरोह के साथ निसृत हुई थी जिससे कि उन मन्त्रों का प्रभाव अमिट था।

वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ योगीराज श्री सच्चिदानन्दजी का शिष्य होना ही अपने आप में अत्यन्त उच्चस्तरीय सौभाग्य है और यह सौभाग्य श्रीमालीजी को प्राप्त है। योगीराज सिद्धाश्रम के मूल प्रवर्तकों में से एक हैं और पूरा विश्व उनके प्रति कृतज्ञ है, इस प्रकार के परम श्रेष्ठ योगीराज के दर्शन ही हम साधकों के लिए दुर्लभ हैं ऐसे योगीराज के शिष्य होना ही अपने आप में इस व्यक्तित्व का प्रमाण है। श्रीमालीजी, श्री योगीराज सच्चिदानन्दजी के परम प्रिय शिष्य हैं और उनके माध्यम से मन्त्रों का साकार रूप हमें प्राप्त हो सका है।

कामाक्षा के तांत्रिक सम्मेलन की हल्की-सी झांकी योगी ज्ञानानन्द ने इस पुस्तक में दी है। उस सम्मेलन में श्रीमालीजी ने जो दुर्लभ और कठिन साधनायें सबके सामने उपस्थित की थीं वे अपने आप में अन्यतम हैं। उनके तांत्रिक स्वरूप को मैं पहले से ही जानता था और यदि इस क्षेत्र में उन्हें आधुनिक गोरखनाथ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ज्योतिष के क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ योगदान दिया है उससे पूरा भारत परिचित है, आने वाले समय में इस क्षेत्र में उनका और अधिक योगदान हमें मिल सकेगा, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

श्रीमालीजी के व्यक्तित्व के बारे में कुछ लिखूं ऐसी सामर्थ्य मैं अपने आप में अनुभव नहीं करता हूं। उनके सामने मैं लघु हूं, भले ही आयु में मैं उनसे बड़ा हूं परन्तु वास्तव में ज्ञानवृद्ध ही वृद्ध कहलाता है इसलिए मैं उनके प्रति सम्मान और आदर प्रदान करता हूं।

उन्होंने जीवन में जो कष्ट और यातनाएं सहन की हैं, वे रोमांचकारी हैं। उन्होंने कभी भी अपने जीवन को जीवन समझा ही नहीं, अपितु अपने प्रत्येक क्षण को सार्थकता प्रदान करने में ही जुटे रहे। तांत्रिक क्षेत्र में उन्हें त्रिजटा अघोरी जैसे युग-पुरुष का सान्निध्य प्राप्त हो सका है, यह कम महत्व की बात नहीं है।

मैं श्रीमालीजी के स्वभाव से परिचित हूं। वे अत्यन्त संकोची हैं, अपने बारे में कभी कुछ भी नहीं कहते हैं अपितु अपनी प्रशंसा सुनना भी वे पसन्द नहीं करते। इसलिए इन पत्रों का प्रकाशन यदि नहीं होता तो साधक समाज एक बहुत बड़े अभाव में रह जाता। वास्तव में ही उनके ये पत्र प्रकाशन के योग्य हैं जिससे कि आने वाली पीढ़ियां और हम सब लाभ उठा सकें। इस दृष्टि से ज्ञानानन्द ने जो कार्य किया है, वह वास्तव में ही सराहनीय है।

इन पत्रों के साथ कुछ दु:ांभ साधनाओं से सम्बन्धित पत्र भी प्रकाशित हो रहे हैं, जिससे यह ज्ञात होता : कि सही रूप में साधना करने पर उसका फल निश्चय ही मिलता है। इससे भी साधक वर्ग लाभ उठा सकता है। आज भी श्रीमालीजी सक्रिय हैं, और अपने ज्ञान को ,ाष्यों के माध्यम से प्रदान करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं, यह उनके पत्रों से स्पष्ट है।

मेरी भावनाएं उनके प्रति नमन हैं और मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे अभी और काफी समय तक गृहस्थ में रहें जिससे कि उनका लाभ समाज उठा सके और वे दीर्घायु हों जिससे हम सब उनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

—भूर्भुआ बाबा

विषय क्रम

साधना और सिद्धियां

मनोद्‌गार

बात प्रारंभ करता हूं, कामाक्ष्या के तांत्रिक सम्मेलन से। इस सम्मेलन की काफी कुछ चर्चा हम लोगों के बीच थी; विशेषकर जो तंत्र में विश्वास रखते थे या तांत्रिक क्रियाएं जानते थे, उनके लिये यह एक अभूतपूर्व अवसर था। जबकि तंत्र की आराध्य कामाक्षा स्थान पर तांत्रिक सम्मेलन होने जा रहा था। यद्यपि इसकी चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में नहीं थी, परन्तु तंत्र के जानने वालों के लिये यह सूचना अनुकूल थी और इसमें भारत के ही नहीं, कुछ विदेशों के भी तांत्रिकों के भाग लेने के बारे में समाचार सुनने को मिले थे।

यह भी सुना था कि इसमें पूरे भारत से विशिष्ट तांत्रिक भाग लेंगे और उन तांत्रिकों के भाग लेने की भी यह शर्त थी कि इसमें केवल वे ही तांत्रिक भाग ले सकते हैं जो कि दस महाविद्याओं में से कोई एक महाविद्या सिद्ध की हो। तंत्र के क्षेत्र में यह काफी ऊंचे स्तर की बात होती है। यह शर्त इसलिये रख दी थी जिससे कि विशिष्ट तांत्रिक ही भाग ले सकें, सामान्य तांत्रिकों से प्रांगण भर जाय और व्यर्थ में ही समय बीत जाय, आयोजक ऐसा नहीं चाहते थे।

यह आयोजन न तो राजनीतिक स्तर पर था और न सामाजिक स्तर पर। इसके पीछे न किसी सेठ साहूकार का धन था और न कौतूहल आदि। इसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि बदलते हुए परिवेश में तांत्रिकों का समाज को क्या योगदान हो सकता है, और समाज उनसे किस प्रकार से लाभ उठा सकता है?

इसके अलावा यह मी ज्ञात करना था कि वास्तव में उच्चकोटि के कितने तांत्रिक हैं। इसके लिये उन माध्यमों को चुना था जिनका सम्पर्क सुदूर हिमालय स्थित योगियों से और तांत्रिकों से भी था।

यहां जब मैं 'तांत्रिक' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं तो इसका तात्पर्य केवल तांत्रिक ही नहीं अपितु मंत्र शास्त्र के जानने वाले व्यक्तियों या विद्वानों से भी है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इस सम्मेलन में उच्च कोटि के मंत्र शास्त्री और तंत्र शास्त्रियों को बुलाना था और परस्पर विचार विमर्श करना था।

साल भर से इसके बारे में चर्चा चल रही थी और हम सब लोग इसमें भाग

लेने के लिये उत्सुक थे। अधीरता से उस तारीख की प्रतीक्षा कर रहे थे जब यह तांत्रिक सम्मेलन होना था। कुल १० दिन का यह सम्मेलन था और उन सभी तांत्रिकों से सम्पर्क स्थापित किया जा चुका था जो इस क्षेत्र में विशिष्ट थे या अति विशिष्ट थे। इसके साथ-ही-साथ उन मंत्र शास्त्रियों या मंत्र के जानने वालों और विद्वानों को भी बुलाया था जिन्होंने उस क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया हो, मंत्रों के माध्यम से जो कुछ भी करने में समर्थ हों।

उन सभी योगियों और साधकों से सम्पर्क किया जा चुका था, जिन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा उस विशिष्ट साधना में बिताया हो, और यह प्रसन्नता की बात थी कि भारत के अति विशिष्ट मंत्र-मर्मज्ञों और तांत्रिकों ने भाग लेने की स्वीकृति दी थी। इनमें पगला बाबा, स्वामी चैतन्य मूर्ति, कृपालु स्वामी, बाबा भैरवनाथ, स्वामी प्रेत बाबा, अघोरी गिरजानन्द, अघोरी खर्परानंद भारती, त्रिजटा अघोरी, आदि कई ऐसी विशिष्ट विभूतियां थीं जिनके बारे में लाखों करोड़ों बार सुना था, जिनके साथ आश्चर्यजनक कहानियां जुड़ी हुई थीं जो विशिष्ट सिद्धियों के स्वामी थे। इस प्रकार के तांत्रिकों, मांत्रिकों और अघोरियों का सम्मेलन एक स्थान पर हो, यह हम जैसों के लिये आश्चर्यजनक था।

इस सम्मेलन में निर्णय यही था कि इसमें वाममार्गी और दक्षिण मार्गी साधना से सम्पन्न साधक एक स्थान पर एकत्र हों और अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करें। सिद्धियों को प्राप्त करने में जो बाधाएं आ रही हैं, उनका निराकरण किस प्रकार से हो तथा इन साधनाओं और सिद्धियों का लाभ जनमानस को किस प्रकार से मिल सके, इसका निर्णय और विचार इस सम्मेलन में होना था।

इसके अलावा पिछले पांच हजार वर्षों में यह पहला अवसर था जबकि इस प्रकार के अति विशिष्ट योगी, साधक, तांत्रिक और मांत्रिक एक स्थान पर एकत्रित हुए। इसके लिये कुछ विशिष्ट योगियों ने जो प्रयत्न किया था वह वास्तव में ही सराहनीय था, और उनके ही प्रयत्नों से यह असंभव कार्य संभव हो सका था। उनके प्रयत्नों से ही सुदूर हिमालय स्थित साधकों से सम्पर्क हो सका था और उनको उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये तैयार किया जा सका था।

प्रयत्न यह था कि इस सम्मेलन की चर्चा ज्यादा न हो, क्योंकि इससे पूरे भारत से लोग दर्शनों के लिये या मिलने के लिये एकत्र हो जाते और इससे अव्यवस्था-सी उत्पन्न हो जाती; फलस्वरूप जिस उद्देश्य के लिये यह सम्मेलन बुलाया जा रहा था, वह उद्देश्य ही अपने आप में समाप्त हो जाता। इसके अलावा साधकों ने भी यह शर्त लगा दी थी कि हम जन-साधारण के सामने न तो जाना चाहते हैं और न अपना या अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करना चाहते हैं।

उनकी बात अपने स्थान पर सही भी थी और यह उचित ही था कि जिस उद्देश्य के लिये यह अभूतपूर्व सम्मेलन हो रहा है, उसकी गरिमा बनी रह सके, साथ-

ही-साथ इसमें जो महापुरुष या विशिष्ट साधक भाग ले रहे हैं उनकी प्रतिष्ठा में किसी प्रकार की आंच न आवे तथा किसी प्रकार की न्यूनता न रहे।

पिछले बीस वर्षों में मैंने तंत्र के क्षेत्र में घुसने का प्रयत्न किया है और तारा साधना को, जो कि दस महाविद्याओं में से एक है सिद्ध किया है, और सफलतापूर्वक प्रयोग भी किया है, इससे मैं अपने आपको कुछ समझने लग गया था। सही कहूं तो अपने आपको बहुत कुछ समझने लग गया था, परन्तु इस सम्मेलन में भाग लेने पर ज्ञात हुआ कि मैं कुछ भी नही हूं या यों कहूं कि भाग लेने वाले साधकों के पास जो सिद्धियां हैं उनके सामने मैं नगण्य हूं, धूल के कण जितना भी मेरा महत्त्व नहीं है। यदि मैं सैकड़ों वर्षों तक उनके चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त करूं तब भी उनकी थाह नहीं आ सकती।

इस तारा साधना की कड़ी परीक्षा देने के बाद ही मुझे इस सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति मिली थी। मैं सोचता हूं कि पिछले बीस वर्षों में भी मैं जो नहीं जान सका था वह इस सम्मेलन से जान पाया। यह मेरे पूर्व जन्म और इस जन्म का पुण्य प्रभाव ही था, जिससे कि मैं इस सम्मेलन में भाग लेने का अधिकारी माना गया। यह मेरी पीढ़ी का सौभाग्य है कि इस पीढ़ी में इस प्रकार का अभूतपूर्व सम्मेलन हो सका और हम अपनी आंखों से इस सम्मेलन को देख सके। वह मेरे पुण्यों का उदय था जिससे कि मैं उन विशिष्ट साधकों को देख सका जिनके तो दर्शन ही दुर्लभ हैं। यदि तंत्र और मंत्र इस देश में जीवित हैं तो केवल इस प्रकार के विशिष्ट साधकों के बल पर ही। ये साधक नहीं, मंत्र-तंत्र के मूर्तमंत रूप हैं।

जीवन के प्रारम्भ में मैं कानून का विद्यार्थी रहा था और मैंने उच्च श्रेणी में कानून की परीक्षा पास की थी, पर मेरे द्वारा एक बार एक गलत फैसला हो जाने के कारण एक निर्दोष को फांसी की सजा मिल गई। यह मेरी गलती थी। उस गलती से मैं इतना अधिक दुखी रहा कि मैंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, और हमेशा के लिये नौकरी छोड़ दी। इसके बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में मैंने भाग लिया और अपनी पैनी दृष्टि तथा निर्मम लेखनी से मैं शीघ्र ही पत्रकारों के बीच लोकप्रिय हो गया और पत्रकार-संघ का अध्यक्ष भी कई वर्षों तक रहा, अंग्रेजों का जमाना होने के कारण मुझ पर उनकी क्रुद्ध दृष्टि शुरू से ही थी, अतः उन्होंने मेरे चारों तरफ घेराबन्दी प्रारंभ की। इस घेरा बंदी में मैं जकड़ा जाऊं इससे पहले ही मैंने संसार छोड़ दिया, शादी मैंने की नहीं थी इसलिये घरबार की चिन्ता थी नहीं। निश्चय यही कर लिया था कि आगे का पूरा जीवन साधना में ही व्यतीत करना है, और अज्ञात रहस्यों की खोज में जीवन बिता देना है।

प्रारम्भ से ही मैं कुतर्की रहा हूं, सहज ही मैं किसी से प्रभावित होता नहीं, बातचीत में मेरी पत्रकारिता तुरन्त सामने आ जाती है और जिस व्यक्ति से बातचीत करता हूं, अपने पैने प्रश्नों से उसके व्यक्तित्व की चीरफाड़ इस प्रकार से कर लेता हूं कि वह सहज में ही मेरे सामने नंगा हो जाता है, भीतर में जो नकलीपन होता है

सामने आ जाता है, और इस प्रकार मैं उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होने की अपेक्षा वह मेरे व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता है।

साधु जीवन धारण करने के बाद मैंने इस आदत के कारण कई शत्रु बना लिये। जो भी विशिष्ट साधु या तांत्रिक होता उससे मिलता और दो चार घंटों में ही मैं उसकी कलई खोल देता। उसके भीतर जो कमजोरी होती वह मैं उसके सामने ही उजागर कर देता और इस प्रकार मेरी पत्रकारिता मुझे सहज ही किसी पर विश्वास नहीं करने देती।

आज भी मैं इस आदत को छोड़ नहीं पाया हूं। कानून का विद्यार्थी और अधिकारी होने के नाते बहुत अच्छी तरह से जिरह कर लेता हूं और सामने वाले के अस्त्रों से ही उसको घायल कर लेता हूं, साथ-ही-साथ मेरी पत्रकारिता सामने वाले को पूरी तरह से नंगा करके रख देती है, इसलिये मैं अपने जीवन में बहुत ही कम लोगों से प्रभावित रहा हूं और किसी के प्रति मेरे मुंह से 'गुरु' शब्द तो निकल ही नहीं पाया है, क्योंकि जब तक अत्युच्च साधना से सम्पन्न व्यक्तित्व नहीं मिलता, तब तक मैं उसके सामने नतमस्तक हो ही नहीं सकता। पिछले बीस वर्षों में मैं सैकड़ों साधुओं, मांत्रिकों और तांत्रिकों के सम्पर्क में आया और उनसे सीखने को मिला, परन्तु प्रभावित किसी से भी नहीं हो पाया। एक प्रकार से मुझे ये सभी खण्ड-खण्ड रूप में अवश्य मिले, उनका खण्डित व्यक्तित्व अवश्य देखने को मिला परन्तु पूर्ण व्यतित्व मेरे सामने कोई आया ही नहीं और इसीलिये मेरा सिर किसी के चरणों में पूरी तरह से झुक ही नहीं पाया। जब तक मेरा व्यक्तित्व प्रभावित नहीं होता तब तक मेरे होठ 'गुरु' कह ही नहीं पाते। एक प्रकार से देखा जाय तो मैं पिछले बीस वर्षों में 'गुरुहीन' ही रहा हूं। यद्यपि इस अवधि में मैंने तंत्र की कुछ क्रियाएं अवश्य सीखीं, कुछ लोगों के कार्यों से प्रभावित भी हुआ, कुछ विशिष्ट साधकों के सम्पर्क में भी आया, भूत बाबा से मैंने विशिष्ट तांत्रिक साधना-तारा साधना-भी सीखी और उनके प्रति अपने मन में अनुकूल धारणायें भी बनाईं, परन्तु हर बार मेरी पत्रकारिता बीच में आ जाती, और इस वजह से उनके खण्ड व्यक्तित्व से तो प्रभावित हो जाता, परन्तु अभी तक कोई ऐसा पूर्ण व्यक्तित्व नहीं मिला जो वास्तव में ही उच्च कोटि की क्रियाओं से सम्पन्न हो और मेरे लिये गुरु पद का अधिकारी हो।

कुछ तांत्रिक अवश्य मिले, वे वाम मार्गी थे पर उन्हें 'दक्षिण मार्ग' साधना का क ख ग भी ज्ञात नहीं था, कुछ ऐसे साधक भी मिले जो तंत्र की दक्षिण मार्गी साधना में निष्णात थे, पर वाम मार्ग साधना में शून्य थे।

कुछ हठ योगी भी मिले जिनके पास कुछ सिद्धियां थीं पर वे सामान्य सिद्धियां थीं। साधारण नागरिक उससे प्रभावित हो सकते हैं पर मेरे प्रभावित होने का तो प्रश्न ही नहीं था। कुछ मंत्र शास्त्री मिले जो मंत्रों के माध्यम से अलौकिक कार्य करने में सक्षम थे, परन्तु इसके अलावा उनके पास कुछ भी नहीं था।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह मेरे जीवन का दुर्भाग्य ही है कि इतना भटकने के बाद भी कोई पूर्ण साधक नहीं मिला, जिसे दक्षिण मार्ग और वाम मार्ग के तंत्र का पूर्ण ज्ञान हो और जो इस क्षेत्र का अधिकारी माना जाता हो, साथ ही जिसे मंत्र का भी उच्च कोटि का ज्ञान हो और अघोरी साधना या गौरक्ष साधना के बारे में विशेष जानकारी हो। एक ही व्यक्तित्व में जब तक इन सारे गुणों का समावेश नहीं होता तब तक वह पूर्ण सक्षम कहलाने में समर्थ नहीं हो सकता और जब तक ऐसा व्यक्तित्व मेरे सामने नहीं आता तब तक मेरा सिर किसी के चरणों में नहीं झुक सकता था।

ऐसी स्थिति में जब मैंने इस तांत्रिक सम्मेलन की चर्चा सुनी और यह ज्ञात हुआ कि इसमें विशिष्ट साधक भाग लेंगे तो मन में आशा का संचार हुआ कि शायद इनमें कोई ऐसा पूर्ण सक्षम व्यक्तित्व मिल सके, जिसके सामने मेरा सिर नमन हो या जो वास्तव में ही इन सारी क्रियाओं का जानकार हो।

मैं चाहता यह था कि ऐसे व्यक्तित्व को केवल 'थ्योरिटिकल' ज्ञान ही नहीं हो अपितु 'प्रेक्टिकल' ज्ञान भी हो, जिससे कि वह अपने ज्ञान का योगदान दूसरों को दे सके, समाज कल्याण में सहायक हो सके।

इन बीस वर्षों में मैंने यह भी अनुभव किया कि जिनके पास भी ऐसा ज्ञान होता है उनकी मनोवृत्तियां दूषित हो जाती हैं, या उनका स्वभाव पूरी तरह से अक्खड़ किस्म का हो जाता है, बात करने में उन्हें कुछ भी होश नहीं रहता, या तो वे नशे में चूर रहते हैं, जिससे अपने अलावा उनको दीन-दुखिया की भी खबर नहीं रहती या वे इतने एकान्तवासी हो जाते हैं कि दूसरों से बात करना भी हेठी समझते हैं। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति क्रोधी और मनमर्जी के मालिक होते हैं। ऐसे लोग किस समय क्या कर बैठेंगे इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। सीधे-सीधे बात करते-करते वे गालियां देने लग जाते हैं और कई लोगों को तो मैंने मारपीट करते हुए भी देखा है।

मेरी धारणा यह है कि ज्ञान ज्ञान होता है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो, ज्ञान के साथ नम्रता और व्यावहारिकता आवश्यक है, पर जो तांत्रिक अघोरी या मांत्रिक हैं उनका नम्रता से दूर का भी वास्ता नहीं रहता, वे अपने ही खयालों में मस्त, क्रोधी, अहंकारी, और अपने आपको सर्वोच्च समझते हैं, बिना नम्रता के पूर्ण व्यक्तित्व संभव नहीं है, नम्रता के साथ यदि साधना होती है, तो वह व्यक्तित्व अपने आप में ही विशिष्ट बन जाता है।

मुझे कहीं पढ़ी हुई घटना स्मरण आ रही है। एक बार सारे ऋषि-मुनियों की सभा हुई, और उसमें यह वाद-विवाद हुआ कि देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है?

इसका भार भृगु ऋषि पर डाला और यह विचार हुआ कि ऋषियों में भृगु ऋषि श्रेष्ठ हैं अतः वे किसी भी प्रकार से किसी भी युक्ति से यह ज्ञात करें कि ब्राह्म, विष्णु, महेश इन श्रेष्ठतम देवताओं में से, सर्व श्रेष्ठ देवता कौन हैं, जिससे कि उनको सर्वोच्चता प्रदान की जा सके।

भृगु ऋषि सबसे पहले ब्रह्म लोक में गए। वहां ब्रह्मा जी सृष्टि रचना में संलग्न थे। वे वहां जाकर दो क्षण तो उनके कार्य को देखते रहे और जब ब्रह्मा ने ऋषि को प्रणाम किया तो किसी भी प्रकार का आशीर्वाद या उत्तर नहीं दिया, इसके विपरीत उन्होंने लातों के प्रहार से जो कुछ उन्होंने निर्माण किया था उसको तोड़-फोड़ दिया। यही नहीं अपितु इतना अधिक नुकसान कर दिया कि कई वर्षों की मेहनत बरबाद कर दी। ऐसा देखकर ब्रह्मा को क्रोध चढ़ आया और ऋषि को पीटने के लिए उद्यत हो गए।

ऋषि ने जब ब्रह्मा के क्रोध से तमतमाते हुए चेहरे को देखा और अनुभव किया कि किसी भी समय हाथापाई हो सकती है तो वे वहां से खिसक गए।

ब्रह्म लोक से निकल कर भृगु सीधे कैलाश पर्वत की ओर गए, जहां महादेव का निवास स्थान था। वहां पर महादेव तथा पार्वती दोनों बातचीत में संलग्न थे।

ऋषि ने आव देखा न ताव और सीधे पार्वती के कंधे पर चढ़ गए। पार्वती हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुईं तो ऋषि फिर उचक कर उनके कंधों पर बैठने की कोशिश करने लगे।

प्रलयंकारी महादेव ने जब अपनी आंखों के सामने अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार का अभद्र व्यवहार होते देखा तो उनके क्रोध का पारावार न रहा और तुरन्त त्रिशूल उठा कर भृगु को मारने के लिए उनकी तरफ झपटे।

क्रोध से उनकी आंखें लाल हो रही थीं और जितने वेग से उन्होंने त्रिशूल उठाया या वह आश्चर्यजनक था, भृगु की मृत्यु निश्चित थी, पर वे इससे पूर्व ही वहां से भाग खड़े हुए। कुछ दूरी तक तो महादेव ने पीछा किया, पर जितनी तेजी से भृगु भागे थे वह आश्चर्यजनक था।

वहां से भृगु सीधे क्षीरसागर पहुंचे, जहां शेषनाग की शैया पर भगवान विष्णु लेटे हुए थे और लक्ष्मी उनके चरण दबा रही थीं।

भृगु ने जब ऐसा देखा तो तुरन्त जोरों की एक लात विष्णु के सीने में दे मारी। यह देखकर शेषनाग क्रोध से फुफकार उठा और उसके फनों से ज्वालाएं-सी निकलने लगीं, लक्ष्मी एक बार तो हतप्रभ हो गईं, पर दूसरे ही क्षण उनका चेहरा क्रोध से लाल अंगारे की तरह दहक उठा।

पर इधर ज्यों ही भृगु की लात विष्णू के सीने पर लगी, त्योंही विष्णु शांत चित्त से उठ बैठे और भृगु के चरणों को पकड़ कर दबाने लगे, बोले—आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं, और मेरा सीना अत्यन्त कठोर, लात मारने से आपके चरणों को अवश्य ही चोट पहुंची होगी, इसका मुझे दुख है और इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं, कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू छलछला आए।

भृगु उनकी नम्रता के सामने परास्त हो गए। उन्होंने कहा—"प्रभु मैं आपकी परीक्षा ले रहा था, वास्तव में ही देवताओं में आप सर्वोपरि हैं।"

वह व्यक्तित्व सर्वोच्च नहीं हो सकता जो विद्वान् या ज्यादा ज्ञानवान हो,

अपितु वह व्यक्तित्व महान है जिसमें विद्वत्ता के साथ-साथ नम्रता भी हो।

मैंने इस प्रकार के व्यक्तित्व नहीं देखे, जिनमें विशिष्ट ज्ञान के साथ-साथ नम्रता भी हो। तांत्रिक और मांत्रिक क्षेत्र में मैंने विशिष्ट योगी और साधक तो अवश्य देखे, परन्तु अनमें नम्रता का सर्वथा अभाव था। उनमें अहं की प्रवृत्ति जरूरत से ज्यादा थी, वे प्रशंसाप्रिय थे। उनको इससे आत्मतुष्टि मिलती थी। नम्रता और विद्वत्ता इन दोनों का संगम मुझे देखने को ही नहीं मिला, खास तौर से इस तांत्रिक क्षेत्र में।

अतः जब मैंने इस प्रकार के विशिष्ट तांत्रिक सम्मेलन की चर्चा सुनी और यह भी सुना कि इसमें सुदूर हिमालय स्थित साधक भी भाग लेंगे और इसमें केवल वे ही तांत्रिक या मांत्रिक भाग ले सकेंगे जिनमें विशिष्ट ज्ञान हो या विशिष्ट तांत्रिक क्षमता हो तो मन में आशा का संचार हुआ कि शायद इस बार मेरी इच्छा पूर्ण हो जाय। हो सकता है इस बार मुझे खण्ड-खण्ड व्यक्तित्व के स्थान पर पूर्ण व्यक्तित्व से मिलना हो जाय, यह भी हो सकता है कि कोई ऐसा व्यक्ति या व्यक्तित्व मिल जाय जिसके सामने मेरा सर्वांग नतमस्तक हो सके और जिसे मैं गुरु शब्द से सम्बोधित कर सकूं।

यह तो मेरी धारणा थी ही कि मेरा गुरु वही हो सकेगा जिसमें सभी प्रकार की तांत्रिक और मांत्रिक क्रियाओं का समावेश हो या इस क्षेत्र में उच्चतम ज्ञान से सम्पन्न हो, साथ ही वह ऐसा व्यक्तित्व हो जिसमें ज्ञान के साथ-साथ नम्रता का समावेश हो, वह केवल अघोरी योगी, या तांत्रिक ही नहीं हो अपितु सही शब्दों में मानव भी हो। मैं ऐसे ही मानव की खोज में था जो कि पूर्ण हो, क्योंकि गुरु 'पूर्णता' का ही पर्याय होता है।

इन सब बातों से मैं रोमांचित था और इसीलिए मैंने इस सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया था, परन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि इसमें वही भाग ले सकता है जो उच्च साधना से सम्पन्न हो, अर्थात् तांत्रिक क्षेत्र में दस महाविद्याओं में से किसी एक विद्या को सिद्ध किया हो या वाम मार्गी साधना में 'श्यामा साधना' सफलतापूर्वक सम्पन्न की हो, या गोरक्ष साधना में अघोर तत्र के साथ पीताम्बरी साधना सम्पन्न हो, या तांत्रिक क्षेत्र में संजीवनी विद्या में निष्णात हो, इस प्रकार के उन्होंने कुछ माप दण्ड, रख दिए थे और जो व्यक्ति इनमें से किसी एक माप दण्ड पर खरा उतरता उसी को इस सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार दिया जाता।

मैंने भूत बाबा से तारा साधना सफलतापूर्वक सम्पन्न की थी और उसमें दक्षता भी थी, अतः मैंने क्रिया रूप में तारा साधना सम्पन्न करके दिखा दी तो आयोजकों ने मुझे प्रवेश पत्र दे दिया। यह प्रवेश पत्र पाना ही मेरे लिए सौभाग्य का सूचक रहा, क्योंकि इसकी वजह से मैं इस सम्मेलन में भाग ले सका, विशिष्ट तांत्रिकों के सम्पर्क में आ सका और जो मेरा लक्ष्य था, जीवन की जो इच्छा थी वह पूरी हो सकी, अर्थात् मुझे ऐसा गुरु प्राप्त हो सका जो मेरे मानस में अंकित था।

तांत्रिक सम्मेलन के प्रारम्भ होने के एक दिन पहले मैं संयोजक स्वामी अभयानन्द जी से मिला। वे अत्यन्त व्यस्त थे और व्यस्तता से भी ज्यादा परेशान थे। उनकी परेशानी का मूल कारण यह था कि इतने बड़े आयोजन में किसी प्रकार की न्यूनता न रह जाय और उससे भी बड़ी चिन्ता की बात यह थी कि इसमें भाग लेने वाले सभी विशिष्ट साधक थे और उन सभी का स्वभाव अपने आप में अलग था। कुछ तांत्रिकों के बारे में तो यह भी सुना था कि वे साक्षात दुर्वासा के अवतार हैं, क्रोध तो उनकी नाक पर रहता है और थोड़ा-सा भी अनुचित या उनके मनोनुकूल न होने पर वे कुछ भी कर बैठते हैं, इस दृष्टि से संयोजक यदि परेशान थे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इस सम्मेलन के मूल में भूर्भुआ बाबा थे, जो कि मूलतः आध्यात्मिक सन्त हैं परन्तु इसके साथ-ही-साथ विशिष्ट तांत्रिक भी हैं, उनकी ख्याति भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में हैं। तंत्र के क्षेत्र में और अध्यात्म के क्षेत्र में उनका नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। विशिष्ट व्यक्तियों को एक स्थान पर एकत्र करने में उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है और इस सम्मेलन को सम्पन्न करने के मूल में उनकी ही प्रेरणा और परिश्रम रहा है।

मैं सम्मेलन के एक दिन पहले प्रयत्न करके भूर्भुआ बाबा से मिला तो वे शान्त चित्त थे, फिर भी उनका मस्तिष्क अत्यन्त क्रियाशील था। मैंने इस सम्मेलन के बारे में जब कुछ जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि यह मेरे जीवन की कसौटी है। यदि यह दस दिन का सम्मेलन भली प्रकार से सम्पन्न हो गया तो मैं इसे अपने जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि ही मानूंगा।

भूर्भुआ बाबा के बारे में काफी कुछ सुन रखा था और उनके बारे में जो कुछ सुना था प्रत्यक्ष में देख कर सुखद अनुभूति ही हुई थी। मूलतः वे तांत्रिक हैं परन्तु पिछले कई वर्षों से उन्होंने अपना जीवन अध्यात्म के क्षेत्र में विकसित किया है। इनकी आयु के बारे में काफी मतभेद है। कुछ तांत्रिक इनकी आयु ६०० वर्षों से भी ज्यादा बताते हैं और उनके पास इसका प्रमाण भी है, परन्तु देखने पर वे ६०-७० वर्ष से ज्यादा आयु के नहीं लगते, शान्त और गम्भीर मुखमण्डल, पैनी दृष्टि, और तेजस्वी व्यक्त्वि। उनसे बातचीत करते समय सुखद अनुभूति ही होती है। वे जो भी बात करते हैं उसके पीछे उनका ठोस ज्ञान और दीर्घ अनुभव रहता है। वास्तव में ही वे अपने क्षेत्र के अत्यन्त तेजस्वी व्यक्तित्व हैं।

दूसरे दिन प्रातः १० बजे के लगभग सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन के चारों तरफ भूर्भुआ बाबा के शिष्य मुस्तैदी से चौकस थे, और उनको सख्त हिदायत थी कि केवल वे ही व्यक्ति इस सम्मेलन में प्रवेश करें जिनके पास अनुमति पत्र हो, जिस व्यक्तित्व के बारे में सन्देह हो उसे वहीं पर रोक लिया जाय, और तब तक अन्दर जाने की अनुमति न दी जाय, जब तक कि बाबा स्वयं जांच पड़ताल न कर लें। इस संबंध में सामने वाला व्यक्ति चाहे कितने ही उच्च कोटि का हो, चाहे कितना ही गरिमा-

पूर्ण हो, प्रयत्न यही किया गया था कि सभी के पास परिचय पत्र हों जो इसमें भाग लेने वाले थे। कई तांत्रिक तो प्रातः ही आये थे, फिर भी व्यवस्था में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं थी, और सभी को परिचय पत्र जांच पड़ताल करके दे दिए गए थे।

सम्मेलन में लगभग ४०० तांत्रिक और मांत्रिक इकट्ठे थे और वास्तव में ही वे सभी एक दूसरे से बढ़-चढ़कर थे, कोई किसी से अपने आपको न्यून नहीं समझ रहा था। सभी विशिष्ट साधनाओं से सम्पन्न थे और अपने क्षेत्र में दक्ष तथा लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तित्व से सम्पन्न थे।

मैंने धार्मिक ग्रन्थों में ही शिवजी की बारात के बारे में पढ़ा था, परन्तु इस सम्मेलन को देख कर मैंने अनुमान लगा लिया कि शिवजी की बारात में किस प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित हुए होंगे। सम्मेलनं में ४०० से कुछ ज्यादा ही साधु, योगी; अघोरी, तांत्रिक आदि थे और सभी की वेषभूषा अपने आप में विचित्र थी।

अधिकांश लंगोटी लगाए हुए थे और पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी। कुछ की जटाएं इतनी लम्बी थीं कि चलने पर पीछे जमीन पर घिसटती थीं, कुछ ने तो लोहे की लंगोट ही लगा रखी थी। सम्मेलन में सौ से ऊपर साधु ऐसे भी थे जो सर्वथा निर्वस्त्र थे। कुछ तांत्रिकों ने हड्डियों की माला पहन रखी थी। एक तांत्रिक ने तो गले में ११ नरमुण्डों की माला ही पहनी हुई थी। किसी-किसी तांत्रिक के गले में विचित्र मणियों की माला थी तो कुछ साधु इतने अधिक कपड़े पहने हुए थे कि उनका सारा शरीर उन कपड़ों में छिप गया था। एक साधु ने कमर पर नरमुण्डों की कर-धनी बांध रखी थी।

इसमें कुछ भैरवियां भी थी, संभवतः उनकी संख्या १५ से २० के बीच में थी। इसमें कुछ तो पूर्णतः वृद्ध दिखाई दे रही थीं पर एक दो भैरवियां ऐसी भी थीं जो अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी थीं और उनकी आयु २० से २५ वर्ष के बीच होगी, मुझे आश्चर्य था कि इस छोटी आयु में उन्होंने किस प्रकार से इतनी कठिन क्रियाओं को सम्पन्न कर लिया होगा, परन्तु तांत्रिकों की गति विचित्र है, हो सकता है उन्होंने कुछ क्रियाओं के माध्यम से अपनी आयु को बांध रखा हो और अपने यौवन को अक्षुण्ण बनाए रखा हो।

कुछ हठ योगी भी थे। एक हठ योगी का पांव इतना अधिक फूला हुआ था कि उसका घेरा छः फुट से ज्यादा ही होगा। कुछ हठ योगी विशालकाय थे, एक दो हठ योगी के हाथ लकड़ी की तरह ठूंठ हो गए थे। इस सम्मेलन में काफी अघोरी भी थे जो कि पूर्णतः निर्वस्त्र थे और देखने में भीमकाय राक्षस की तरह अनुभव हो रहे थे, उनके शरीर पर जरूरत से ज्यादा मैल जमा हुआ था और जब वे पास से गुजरते तो दुर्गन्ध का एक भभका सा अनुभव होता, परन्तु वे इन सबसे बेखबर थे और अपनी ही धुन में मस्त थे।

इनमें कुछ विशिष्ट वाम मार्गी तांत्रिक भी थे जिनको यदि सामान्य जन देखले, तो बेहोश हो जाय। उनका शरीर अपने आप में भयंकर था, लाल आंखें, डरावना

चेहरा, और भीमकाय शरीर, ऐसा लग रहा था जैसे वे राक्षस हों। उनको देखकर मन में भय का सा संचार होता था और रोंगटे खड़े हो जाते थे।

स्वामी अभयानन्द जरूरत से ज्यादा व्यस्त थे और प्रत्येक को यथोचित स्वागत दे रहे थे, भूर्भुआ बाबा बराबर इस बात पर नजर रखे हुए थे कि किसी भी साधक के मन को ठेस न पहुंचे और वे उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लें।

इसमें आशा से अधिक तांत्रिकों और मांत्रिकों ने भाग लिया और जिनके बारे में हम आश्चर्य के साथ सुनते रहते थे। उनको प्रत्यक्ष देखकर एक भयमिश्रित आश्चर्य हो रहा था। वास्तव में यह भूर्भुआ बाबा का ही कमाल था कि वे इस प्रकार के विशिष्ट साधकों को एक स्थान पर एकत्र कर पाए।

सम्मेलन में मां कृपाली भैरवी, आनन्दा भैरवी, पिशाच सिद्धियों की स्वामिनी देबुल भैरवी आदि के भाग लेने से सम्मेलन में विशेष प्रसन्नता अनुभव हो रही थी। इसके साथ-ही-साथ पगला बाबा, स्वामी देवहुर बाबा, कृपालुस्वामी, बाबा भैरवनाथ, खर्परानन्द भारती, स्वामी गिरजानन्द, अघोरी, बिरघा स्वामी, त्रिजटा अघोरी, आदि ऐसी बिभूतियां थीं, जो कि अपने आप में अन्यतम थीं, जिनका नाम विश्वविख्यात है और तांत्रिक लोगों के लिए ये व्यक्तित्व स्मरणीय हैं। इन्होंने इस क्षेत्र में अद्‌भुत सिद्धियां प्राप्त की हैं, हमारी पीढ़ी का यह सौभाग्य है कि हम लोगों के बीच इस प्रकार के विशिष्ट व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान से इस पीढ़ी को ऊंची उठाने में सहायता दी है, विशेष रूप से मैं रोमांचित था कि अपने जीवन में मैं इन सारी विभूतियों को एक स्थान पर देख सका अन्यथा यदि मेरा पूरा जीवन भी बीत जाता तब भी मैं इन सारी विभूतियों के दर्शन नहीं कर सकता था। मैं ही नहीं मेरे जैसे अधिकांश तांत्रिक रोमांचित थे, आह्लादित थे, आश्चर्यचकित थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ में भूर्भुआ बाबा ने विशिष्ट वाणी में इस सम्मेलन के बारे में बताया और अत्यधिक प्रसन्नता अनुभव की कि उनके कहने से सभी साधक एक स्थान पर एकत्र हुए। उन्होंने बताया कि पिछले पांच हजार वर्षों में यह पहला अवसर है जबकि इस प्रकार का सम्मेलन हो सका है। कुछ साधक सिद्धाश्रम से भी आये हैं यह मेरे लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

उन्होंने आगन्तुक तांत्रिकों, मांत्रिकों, योगियों, साधकों, हठयोगियों और अघोरियों से विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि वे शान्त चित्त से इस सम्मेलन को सफल बनाने में योगदान दें। सभी साधक अपने आप में अन्यतम हैं इसलिए परस्पर वादविवाद हो जाना स्वाभाविक है, पर इस प्रकार वादविवाद से व्यर्थ में समस्याएं पैदा होंगी, एक दूसरे पर तांत्रिक-प्रहार होंगे और व्यर्थ में ही शक्ति का अपव्यय होगा, अतः जहां तक हो सके वे अपने क्रोध को सीमित रखें और एक दूसरे को ज्ञान देने में उदारता बरतें।

उन्होंने देश की परिस्थिति पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला, साथ ही उन्होंने दुख

प्रकट किया कि पिछले ३०० वर्षों का समय तंत्र के क्षेत्र में अन्धकार-युग ही कहा जाएगा, जबकि इस विद्या पर भीषण प्रहार हुए हैं और इस साधना को केवल मात्र मारक-विद्या मान ली गई है। तंत्र का नाम लेते ही जन साधारण भयभीत हो जाता है, उनके मानस में यह धारणा बन गई है कि तांत्रिक केवल किसी को मार सकता है या दुख पहुंचा सकता है। उनकी धारणा के अनुसार मोहन वशीकरण, उच्चाटन आदि क्रियाएं ही तंत्र हैं, जबकि तंत्र इससे कहीं ऊंचे स्थान पर स्थित है और इससे पूरे विश्व का कल्याण हो सकता है।

यह विद्या हमारे पूर्वजों की थाती है तथा इस क्षेत्र में पूरा विश्व भारत की तरफ ताक रहा है। उनको इस क्षेत्र में जब भी ज्ञान मिलेगा तो वह भारत की तरफ से ही मिल सकता है, पर धीरे-धीरे नकली तांत्रिक समाज में घुस गए हैं जिन्होंने चमत्कार दिखाने को ही तंत्र मान लिया है और इस प्रकार वे जहां तंत्र का अहित कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर जन साधारण को गुमराह भी कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति में तांत्रिक यदि अन्तर्मुखी बन कर रह जाता है तो यह बहुत बड़ी भूल है। वे देश के निर्माण में रचनात्मक योगदान दे सकते हैं, इस क्षेत्र की जो विशिष्ट क्रियाएं हैं वे धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं, जल-गमन, वायु गमन, परकाय प्रवेश, आदि क्रियाएं कुछ साधकों के पास ही रह गई हैं और वे साधक जनमानस से इतने दूर हो गए हैं कि उनसे ये विद्याएं प्राप्त करना संभव ही नहीं रहा है, उनकी काया के साथ-ही-साथ इस प्रकार की विद्याएं भी समाप्त हो जाएँगी और हमारा देश एक बहुत बड़ी निधि से वंचित हो जाएगा।

देश की सेवा केवल राजनीति के माध्यम से ही संभव नहीं है, अपितु कई ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनके माध्यम से देश सेवा और जन सेवा हो सकती है, इस प्रकार के क्षेत्रों में तंत्र और मंत्र सर्वोपरि है, जब तक इन विद्याओं के प्रति जो भ्रामक धारणाएं जनमानस में फैली हुई हैं वे दूर नहीं होंगी तब तक इन साधनाओं के प्रति आस्था जनमानस में नहीं हो सकेगी।

उन्होंने तांत्रिकों, मांत्रिकों और साधकों को आह्वान किया कि वे जनसाधारण से अपने आपको सम्पर्कित करें और अपने ज्ञान को इस प्रकार से समाज में वितरित करें जिससे कि सामान्य साधक भी लाभ उठा सकें।

भूर्भुआ बाबा के बारे में सभी लोग श्रद्धानत हैं क्योंकि उनका व्यक्तित्व अपने आप में विशिष्ट रहा है और उन्होंने अपने जीवन में इस क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया है। बाबा के भाषण को सभी लोग शान्त चित्त से सुन रहे थे। एक-दो अघोरियों ने इसका प्रतिवाद भी किया और बीच में कुछ कहने के लिए व्यग्र भी दिखाई दिए, पर पास के साधकों द्वारा उनको जबर्दस्ती बिठा दिया गया जिससे वे और ज्यादा बिफर गये और भाषण में क्रोध प्रदर्शन हेतु खड़े रहे।

भाषण की समाप्ति के साथ बाबा ने कहा कि सम्मेलन के लिए सभापति चुना जाय और ऐसे व्यक्ति को सभापति बनाया जाय जो कि किसी एक ही क्षेत्र में

निष्णात न हो अपितु उसकी गति सभी प्रकार की विद्याओं में समान रूप से हो। तांत्रिक और मांत्रिक समाज में वह वृद्ध नहीं कहलाता जो कि आयु से वृद्ध होता है अपितु वह वृद्ध कहलाता है जो कि ज्ञान वृद्ध होता है।

एक साधक ने भूर्भुआ बाबा से ही निवेदन किया कि आप अध्यक्ष पद को सम्भाल लें पर अब तक जो दो अघोरी सम्मेलन में खड़े थे उन्होंने इसका डटकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि भूर्भुआ केवल तांत्रिक हैं मांत्रिक नहीं हैं, अतः मांत्रिकों की जिज्ञासाओं का समाधान वह नहीं कर सकेंगे।

भूर्भुआ बाबा ने स्वयं इस बात का अनुमोदन किया और वे एक तरफ बैठ गए। स्वामी कृपाचार्य ने मां कृपालु भैरवी का नाम अध्यक्ष पद के लिए रखा पर त्रिजटा अघोरी ने इसका विरोध किया, क्योंकि वह केवल भैरवी है और अन्य कसौटियों पर खरी नहीं उतर सकतीं, उन्होंने चैलेंज भी दिया कि यदि भैरवी मेरी साधना का सामना कर लें तो मैं उन्हें अध्यक्ष मान सकता हूं, पर मां भैरवी ने इस चैलेंज को स्वीकार नहीं किया।

कुछ साधकों ने पगला बाबा से निवेदन किया, पर उन्होंने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया कि मैं तांत्रिक अवश्य हूं पर वाममार्गी साधना का अभ्यास मैंने नहीं किया है अतः मैं अध्यक्ष पद के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। इसके बाद कुछ अन्य नामों पर भी चर्चा हुई, पर अन्य लोगों ने उनका भी विरोध किया और सभा में एक घंटे भर की इस बहस में कोई निर्णय नहीं हो सका कि कौन व्यक्ति इस सभा का सचालन करे।

कुछ अघोरियों ने हठ योगी स्वामी प्रेत बाबा का नाम सुझाया तो एक तांत्रिक ने खड़े होकर प्रेत बावा को चुनौती दे दी कि यदि वह मेरी कृत्या का सामना कर लें तो मैं उनको सभापति स्वीकार कर सकता हूं, साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी बता दिया कि मैंने संहारिणी कृत्या सिद्ध कर रखी है।

कृत्या अपने आप में पूर्णतः मारक प्रयोग है और कहते हैं कि जब शंकर ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था तो उन्होंने कृत्या का ही सहारा लिया था। ऊंचे-से-ऊंचा तांत्रिक भी कृत्या के प्रयोग से घबराता है और उसका सामना नहीं करता, क्योंकि कृत्या प्रयोग के बाद सामने वाला साधक एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। कृत्या स्वयं उस साधक को समाप्त कर देती है, दक्ष अपने आप में विशिष्ट ऋषि एवं अन्यतम तांत्रिक थे, परन्तु वे भी कृत्या का सामना नहीं कर पाये थे, यद्यपि उन्होंने यज्ञ को बचाने में अपनी सारी सिद्धियों का प्रयोग कर लिया था पर वे सिद्धियां कृत्या के सामने निरुपाय हो गई थीं।

मैंने सुन रखा था कि संसार में कुछ तांत्रिक ही ऐसे जीवित हैं जो कृत्या सिद्ध करना जानते हैं या सिद्ध करके उसका प्रयोग कर सकते हैं। जब उन तांत्रिक ने कृत्या का नाम लिया तो मैं चौकन्ना हो गया। वास्तव में ही उस समय उनका चेहरा लाल भभूका हो रहा था और वे किसी भी समय प्रयोग करने में आमादा थे,

उनके चेहरे पर कठोरता और दृढ़ता स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

यदि कृत्या का प्रयोग होता तो सामने वाला व्यक्ति ही नहीं आसपास के लोग भी हताहत होते, फिर भले ही वे कितने ही बड़े तांत्रिक या साधक हों। भूर्भुआ बाबा ने इस खतरे को एक क्षण में भांप लिया और उन्होंने उस साधक से शान्त रहने की प्रार्थना की और कृत्या का प्रयोग न करने की याचना की।

कृत्या प्रयोग में भी संहारिणी कृत्या सर्वाधिक उग्र और विनाशकारी होती है। इसके बारे में काफी कुछ पढ़ रखा था, परन्तु ऐसा व्यक्तित्व नहीं मिला था जो कि इस साधना को जानता हो। आज जब उन्हें देखा तो मन में सुखद आश्चर्य भी हुआ कि अभी तक विश्व में कृत्या प्रयोग करने वाले साधक जीवित हैं।

कृत्या का समाधान कृत्या से ही सम्भव है। साधक यदि संहारिणी कृत्या का प्रयोग करे तो सामने वाले का बचाव तभी सम्भव है जबकि वह संहारिणी कृत्या का प्रयोग जानता हो और इस प्रयोग को खेचरी कृत्या के माध्यम से नष्ट कर सकता हो। जैसा कि मैंने सुन रखा था इस प्रकार के साधक बहुत कम रहे हैं।

पगला बाबा ने क्षमा याचना की और उन्होंने अध्यक्ष पद स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की, साथ ही उन्होंने निवेदन भी किया कि कृत्या का प्रयोग इस सम्मेलन में न करें, अन्यथा काफी विध्वंस और संहार हो जाएगा। पगला बाबा ने कृत्या प्रयोग के बारे में अनभिज्ञता भी स्वीकार की।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि पगला बाबा को चैलेंज देने वाले धूर्जटा अघोरी थे। धूर्जटा अघोरी के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। यह भी सुन रखा था कि वे नई सृष्टि रचना विधि भी जानते हैं। पुराणों में पढ़ा था कि विश्वामित्र ने ब्रह्मा के कार्य से असन्तुष्ट होकर नई सृष्टि-रचना आरम्भ कर दी थी, इससे पूरे देव समाज में खलबली मच गई थी और जब देवताओं और ऋषियों ने विश्वामित्र से प्रार्थना की, तभी उन्होंने नवीन सृष्टि रचना कार्य बन्द किया था।

मैंने धूर्जटा अघोरी के बारे में बहुत पहले सुन रखा था। तब मन में यह साध थी कि शायद कभी इस विराटकाय व्यक्तित्व के दर्शन होंगे, पर आज जब मैंने उन को देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। यद्यपि कृत्या के प्रयोग को जानने वाले उस सम्मेलन में और भी साधक थे जिनमें त्रिजटा अघोरी, देवहुर बाबा, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, पर वे शान्त रूप में बैठे रहे।

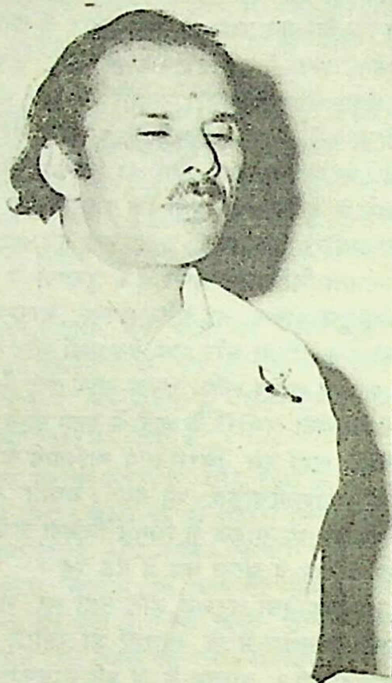
कुछ-कुछ ऐसा अनुभव होने लगा था कि यह सम्मेलन शायद ही पार पड़े, जबकि इसके श्रीगणेश में ही बाधाएं आ रही हैं। यह तो मेंढकों को एक तराजू पर रखकर तोलना था। वास्तव में ही इन साधकों को और उनके अहं को सन्तुष्ट करना अत्यन्त कठिन था। क्योंकि सभी साधक अपने आप में विशिष्ट व्यक्तित्व साधनाओं से संपन्न थे और प्रत्येक का अहं अपने आप में प्रबल था। कोई भी किसी से दबने वाला नहीं था, कोई भी किसी को अपने से उच्च मानने के लिए तैयार नहीं था।

इस हो-हल्ले में दो-तीन नाम और सुझाये गए, परन्तु कुछ लोगों ने उनका

प्रबल विरोध किया और चैलेंज ा दिया, फलस्वरूप उनके नामों पर पूरी तरह से विचार नहीं हो सका।

एक राय यह भी रनां कि इस सम्मेलन में कोई भी सभापति न बने और सभी अपने आपको सभाप.ने ही मानकर कार्य आगे बढ़ावें। परन्तु कुछ साधकों ने इसका प्रबल प्रतिरोध किया। उनका आग्रह था कि बिना सभापति के संचालन सही रूप में नहीं हो सकेगा और सभी अपने तरीके से बोलेंगे जिससे एक बात दूसरा नहीं सुन सकेगा और इस प्रकार उन पर सही प्रकार से नियंत्रण नहीं हो सकेगा।

व्यवस्था और मर्यादा बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभापति का



डॉ० श्रीमाली तांत्रिक सम्मेलन के समय

चुनाव हो। उनका तर्क यह भी था कि यदि हम सभापति के नाम पर एकमत नहीं हो सकते तो अन्य विषयों पर एकमत कैसे हो सकेंगे ?

इस सारे वाद-विवाद में दोपहर का एक बज गया तब मध्याह्न-साधना का समय अनुभव कर भूर्भुआ बाबा ने सुझाव रखा कि कुछ साधक नियमित रूप से मध्याह्न-साधना करते हैं, अतः यह बैठक इस समय स्थगित की जाती है और चार बजे जब हम सब एकत्र हों तब इस विषय पर पुनः विचार कर लें और सभापति का चयन हो जाय।

उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि सभापति के नाम पर सभी एकमत न हो सकें तो प्रतियोगिता हो जाय और जो अपने आपको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करे वह सामने आवे और अन्य साधकों के चैलेंज को स्वीकार कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करे जिससे कि उसे सभापति पद दिया जा सके।

भूर्भुआ बाबा के इस सुझाव के साथ ही प्रातःकालीन बैठक हो-हल्ले के साथ स्थगित हो गई। मैं आश्चर्यचकित भी था और दुःखी भी था। आश्चर्यचकित इसलिए था कि इस सम्मेलन में विभिन्न साधनाओं से सम्पन्न साधक हैं, किसी एक ही विषय का सम्मेलन हो तो श्रेष्ठता ज्ञात की जा सकती है पर जब विभिन्न साधनाओं से सम्पन्न साधक हों तो सर्वोपरि व्यक्ति का चयन कठिन हो जाता है। क्योंकि जो तांत्रिक क्षेत्र में सर्वोपरि हो वह मंत्र के क्षेत्र में भी श्रेष्ठ हो यह आवश्यक नहीं है, या यदि कोई व्यक्ति तंत्र और मंत्र के क्षेत्र में सर्वोपरि हो तो वह गोरक्ष साधना या अघोर साधना में भी निष्णात हो यह सम्भव नहीं है। ये सभी साधनाएं एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत हैं और अपने आप में कष्टकर हैं, अतः इन सभी क्षेत्रों में एक ही व्यक्ति निष्णात हो ऐसा कम देखने में आया है। यद्यपि इस पृथ्वी पर असम्भव नाम की कोई वस्तु नहीं है, फिर भी प्रातःकालीन बैठक में जिस प्रकार से चैलेंज दिये जा रहे थे और चैलेंज आते ही सामने वाला व्यक्ति जिस प्रकार से निस्तेज हो जाता था उसको देखते हुए सभी क्षेत्रों में निष्णात या विशिष्ट व्यक्तित्व सामने आ जाय ऐसा असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य लग रहा था।

गोष्ठी के बाद भी सभी साधक उग्र थे और कुछ तांत्रिक और वाममार्गी साधक तो अत्यन्त ही क्रोध की मुद्रा में थे कि उनके रहते हुए अन्य साधना में निष्णात व्यक्ति सभापति बन जाय ऐसा कैसे सम्भव है ? उन्होंने यह भी मत स्पष्ट कर दिया कि यदि हम पर किसी व्यक्ति को सभापति के रूप में थोपा गया तो हम किसी भी प्रकार का प्रयोग उसके विरुद्ध करने में हिचकिचाएंगे नहीं, या तो वह उस प्रयोग से अपने आपको बचाए या समाप्त हो, दो में से एक ही रास्ता हो सकता है, इस प्रश्न पर क़ाफी गरमागरमी थी और लोग काफी क्रोध की मुद्रा में थे।

इस मध्याह्न-विश्राम में मेरी पत्रकारिता प्रवृत्ति जाग गई थी और मैंने कुछ विशिष्ट साधकों से जिज्ञासा भी की थी कि क्या कोई ऐसा व्यक्तित्व सामने आ जाएगा जो कि निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ हो तो मैंने पाया कि कोई भी अपने आप में स्पष्ट नहीं

था, परन्तु सभी इस भावना में अवश्य थे कि जो भी सभापति बनेगा उसे कठिन परीक्षा में से अवश्य ही गुजरना पड़ेगा। यह भी स्पष्ट था कि सभापति वही हो सकेगा जो सभी विषयों में श्रेष्ठ होगा और जिसकी सभी क्षेत्रों में गति होगी, इस वाद-विवाद में किसी की मृत्यु हो जाए ऐसा असंभव नहीं था।

मैंने भूर्भुआ बाबा से भी यह जिज्ञासा रखी तो वे शान्तचित्त थे। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के सम्मेलन में ऐसा सब कुछ होना स्वाभाविक है। सभी अपने-अपने क्षेत्रों में अद्वितीय हैं और वे किसी अन्य को अपने ऊपर सहज ही हावी नहीं होने देंगे, फिर भी मुझे विश्वास है कि सायंकालीन बैठक में अवश्य ही सभापति की समस्या का समाधान हो सकेगा।

मैं इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहता था, अतः अधिक-से-अधिक हठयोगियों और तांत्रिकों से मिलना चाहता था और उनसे जानना चाहता था। मैंने यह अनुभव किया कि वास्तव में सभी व्यक्तित्व अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय थे और उनके पास साधनाओं का, क्रियाओं का और विशिष्ट ज्ञान का भण्डार था। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस कार्य में लगा दिया था। जो भी व्यक्तित्व मेरे सामने आता वह अपने आपमें अप्रतिम अनुभव होता, कोई भी किसी से किसी प्रकार से न्यून नहीं था।

चार बजे सायंकालीन बैठक प्रारम्भ हुई। सभी के चेहरे तनावपूर्ण थे, सभी के चेहरे पर उत्सुकता थी और सभी अपनी-अपनी कलाओं को, विद्याओं को, साधनाओं को व्यक्त करने के लिए उतावले थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ में भूर्भुआ बाबा ने दुःख प्रकट किया कि हम प्रातः-कालीन बैठक में किसी एक नाम पर सहमत नहीं हो सके यह स्वाभाविक था, क्योंकि यह सम्मेलन केवल तांत्रिक सम्मेलन ही नहीं है, अपितु इसमें अन्य विद्याओं के भी श्रेष्ठतम जानकार हैं, अतः इस प्रकार के मतभेद स्वाभाविक हैं, फिर भी मैं आप सब लोगों से निवेदन करता हूं कि वे किसी एक व्यक्ति के नाम पर सहमत हों और ऐसी प्रक्रिया अपनाई जाय जिससे कि सभापति का चयन सही रूप में हो सके।

उन्होंने एक प्रक्रिया का सुझाव भी दिया कि सम्मेलन में कोई विशिष्ट व्यक्ति कोई ऐसा नाम सुझावे जो सभी क्षेत्रों में निष्णात हो। यदि उनके ध्यान में ऐसा व्यक्तित्व हो तो उनका नाम सभा के सामने रखे और सभा उस पर विचार करे। इसके लिए सभी स्वतन्त्र हैं और वे अपने तरीके से चुनौती दें सकते हैं, परन्तु यदि सामने वाला व्यक्ति चुनौती स्वीकार न करे तो व्यर्थ में उस पर प्रयोग न करें, अन्यथा कुछ भी अघटित घटना घटित हो सकती है।

भूर्भुआ बाबा के बैठते ही कई लोग एक साथ उठ खड़े हुए और कई नामों की ध्वनि कानों में आई, परन्तु हो-हल्ला कुछ इतना अधिक हो रहा था कि कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। इसी बीच त्रिजटा अघोरी अपने स्थान से उठ खड़े हुए और उन्होंने जोरों से सभी को शान्त रहने की हुंकार दी।

उनकी आवाज अपने आप में भीषण थी और कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि

जैसे बम फट गया हो। उस ध्वनि में बाकी सारी ध्वनियां दब गई और सभा में एक प्रकार से सन्नाटा-सा छा गया।

त्रिजटा अघोरी का व्यक्तित्व अपने आप में विशालकाय और अद्भुत था। लम्बा-चौड़ा डीलडौल, भयंकर और लाल सुर्ख आंखें और सारे शरीर पर काले बाल इस प्रकार से आच्छादित थे कि उसको देखकर ही मन में भय का संचार होता था।

यों भी त्रिजटा अघोरी के बारे में काफी कुछ सुन रखा था कि तांत्रिक क्षेत्र में वे सर्वोपरि हैं। उनके पास कुछ ऐसी विशिष्ट सिद्धियां हैं जो कि दूसरे तांत्रिकों के लिए दुर्लभ हैं, 'मृत संजीवनी तंत्र' के वे एकमात्र साधक हैं और इसीलिए उनका नाम तंत्र के क्षेत्र में आदर के साथ लिया जाता है।

उनका व्यक्तित्व अपने आप में विशाल और भयानक था। ऐसा लग रहा था जैसे कोई भीमकाय व्यक्तित्व उठ खड़ा हुआ हो। बड़ा सिर, उद्दीप्त उन्नत ललाट, बड़ी-बड़ी विशाल रक्तिम आंखें, सिर पर लम्बे बाल और उन बालों की तीन श्रेणियां चोटी की तरह गुंथी हुई थीं, सम्भवतः इसीलिए उनका नाम त्रिजटा पड़ गया हो। ललाट पर सिन्दूर का बड़ा-सा गोल तिलक और शरीर पर वे व्याघ्रचर्म लपेटे हुए थे।

त्रिजटा को देखने का यह पहला ही अवसर था, परन्तु कई तांत्रिकों के द्वारा इनके बारे में सुन रखा था कि ये पूरे बकरे को एक ही झटके में तोड़कर उसका सारा खून पी लेते हैं, यह भी सुना था कि विशालकाय भैंसे को ये एक मुष्टिका प्रहार में ही समाप्त कर देते हैं, यह भी सुना था कि ये अत्यन्त क्रोधी हैं और क्रोध में कुछ भी कर गुजरते हैं, एकान्त प्रिय हैं और किसी दुर्गम पहाड़ी पर सर्वथा एकान्तवास करते हैं। यह भी सुना था कि भैरव के ये श्रेष्ठ साधक हैं और तंत्र के क्षेत्र में इनका मुकाबला कोई अन्य नहीं कर सकता।

इसलिये जब उस सभा में खड़े होकर त्रिजटा ने हुंकार भरी तो वह हुंकार कुछ ऐसी थी जैसे शेर ने तृप्त हुंकार ली हो। उनकी आवाज से सारे लोग चुप हो गए और केवल उनकी ही आवाज सभा में गूंजती रही।

उन्होंने कहा कि इस प्रकार समय व्यर्थ में जा रहा है और यदि समय का इसी प्रकार अपव्यय करना है तो फिर मैं पुनः अपने स्थान पर जाता हूं, क्योंकि केवल वादविवाद से कुछ भी हल होना संभव नहीं है। भूर्भुआ बाबा के इस कथन से मैं सहमत हूं कि पृथ्वी में असम्भव नाम का कोई शब्द नहीं है इसलिए सभापति का चयन एक मत से हो जाय तो ज्यादा उचित रहेगा, और यह भी बात सही है कि इस सम्मेलन में सभी विद्याओं के साधक एकत्र हैं, अतः उसी व्यक्ति का चयन किया जाए जो इन सभी विद्याओं में निष्णात हो। जहां तक मैं समझता हूं कि इस प्रकार के वादविवाद से समस्या का समाधान सहज ही संभव नहीं है, पर मेरे दिमाग में एक नाम है और उसके पीछे ठोस कारण है, मैं सभापति पद के लिए श्रीमाली का नाम प्रस्तुत करता हूं, परन्तु मेरा प्रस्ताव थोपा हुआ नहीं है, इसके पीछे ठोस कारण है, मैंने इस व्यक्तित्व को परखा है, इसने तंत्र के क्षेत्र में मृत संजीवनी विद्या मुझ से सीखी है। बदले में मैंने भी उससे

कई साधनाएं प्राप्त की हैं, जो सामान्य रूप से अगम्य हैं, मेरी राय में इस सम्मेलन के सभापति के रूप में उनका चयन सर्वसम्मत होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

त्रिजटा की आवाज समाप्त होते ही चारों तरफ से इतना अधिक कोलाहल मचा कि कुछ भी सुनाई देना संभव नहीं रहा। मैं स्वयं तंत्र के क्षेत्र में २० साल से काम कर रहा था और नगर, गांव आदि के अलावा हिमालय के सुदूर स्थानों पर भी भटका था, पर श्रीमाली का नाम सुना ही नहीं था। त्रिजटा के मुंह से जब उनका नाम प्रस्तावित हुआ तो मैं स्वयं आश्चर्यचकित रह गया कि यह कौनसा व्यक्तित्व है जिसकी चर्चा अभी तक मेरे कानों में नहीं आई थी। यदि त्रिजटा ने किसी का नाम प्रस्तावित किया है तो वह व्यक्तित्व जरूर अपने आप में अन्यतम होगा।

मेरी तरह संभवतः और भी कई साधक आश्चर्यचकित थे और वे श्रीमाली को देखने के लिये उत्सुक थे कि यह कैसा नाम है जिसके पीछे न तो कोई स्वामी है और न कोई बाबा आदि का विशेषण।

भूर्भुआ बाबा ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उन्होंने कहा मैं व्यक्तिगत रूप से श्रीमाली जी से परिचित हूं, यद्यपि मेरा उनका साथ ज्यादा नहीं रहा है, फिर भी कुंभ पर्व के अवसर पर मैंने जो कुछ देखा है उससे मेरी धारणा बलवती बनी है कि श्रीमाली जी इस पद के लिए सर्वथा योग्य हो सकते हैं।

भूर्भुआ बाबा के बैठते ही त्रिजटा अघोरी ने अपने पास बैठे हुए एक व्यक्ति को उसका हाथ पकड़कर सभा में खड़ा कर दिया। कई आंखें उनकी तरफ केन्द्रित हो गईं। मैं सहज ही विश्वास नहीं कर सका कि जो व्यक्ति खड़ा है वह इतना बड़ा साधक, तांत्रिक या मांत्रिक हो सकता है। मुझे किसी भी कोने से यह व्यक्तित्व असाधारण नहीं लगा। न तो उसकी विचित्र वेशभूषा थी, न विशालकाय डील-डौल, और न कुछ ऐसा ही लग रहा था जिससे कि मेरी आत्मा इस तथ्य को संभव मान ले कि यह व्यक्तित्व असाधारण है।

लम्बा और ऊंचा कद, उन्नत ललाट, छोटी पर पैनी आँखें, और चेहरे पर पूर्ण आत्मविश्वास की झलक। शरीर पर धोती और कुर्ता तथा करीने से बाल संवारे हुए यह व्यक्तित्व जो त्रिजटा के पास खड़ा था वह तांत्रिक की अपेक्षा गृहस्थ ज्यादा लग था। पहली बार मैंने जब उन्हें देखा तो मैं आश्चर्यचकित था कि इस सम्मेलन में इस गृहस्थ को कैसे प्रवेश की स्वीकृति दे दी है, परन्तु जब इस व्यक्तित्व को भूर्भुआ बाबा के द्वारा अनुमोदित सुना तो कुछ विश्वास करना पड़ा कि यह व्यक्तित्व अपने आप में असाधारण हो सकता है।

परन्तु इस बीच तीन-चार अघोरी एक साथ उठ खड़े हुए और उन्होंने प्रबल प्रतिवाद किया। उनमें से एक अघोरी अत्यन्त ही विशालकाय और डरावनी मुख मुद्रा से युक्त था और उसके हाथ में खप्पर था जिसमें कुछ बोटियां भरी हुई थीं। वह बीच-बीच में उनको चबाता भी जाता था। बोलते समय उसके मुंह से थूक उछलता था और आंखें इतनी डरावनी थीं कि सहज ही उन आंखों से आंखें मिलाने की हिम्मत नहीं

हो रही थी। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि उसका नाम भैरूआ अघोरी था।

भैरूआ अघोरी ने जोरों से एक बात का प्रतिवाद किया और कहा कि मैंने श्रीमाली का नाम आज तक नहीं सुना। मुझे यह व्यक्ति कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। सबसे पहले अघोर पन्थ की तरफ से मैं चैलेन्ज दे रहा हूं और यदि यह मेरा चैलेन्ज स्वीकार कर आघात सहन कर लेगा तभी मैं इसको अपना सभापति स्वीकार करूंगा।

अभी भैरूआ अघोरी अपनी बात समाप्त कर ही नहीं पाया था कि सभा के पीछे की पंक्ति से एक साधु उठ खड़ा हुआ जिसके पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी और सिर की जटाएं इतनी लम्बी थीं कि चलने पर जमीन पर घिसटती थीं, आंखें भयंकर और चेहरे पर क्रूरता स्पष्ट रूप से झलक रही थी, उसने छूटते ही गालियों की बौछार शुरू कर दी और कहा कि मेरे जीते जी अन्य कोई सभापति बनने का अधिकारी नहीं हो सकता, मैंने कृत्या सिद्ध की है और मेरी कृत्या का जो समापन कर देगा वही सभापति बन सकेगा, अन्यथा मैं उसको खड़े-खड़े ही राख की ढेरी बना दूंगा। श्रीमाली क्या है? किस खेत की मूली है? यह अपने आपको समझता क्या है और इसके साथ-ही-साथ उसके मुंह से गालियों की बौछार इस भीषण वेग से हो रही थीं कि सारी सभा में सन्नाटा छा गया।

मेरी आंखें एक बार उस बाबा को देख रही थीं और दूसरी बार श्रीमाली को परख रही थीं, पर मैंने देखा कि उनके चेहरे पर किसी प्रकार की कोई शिकन या भय की रेखा तक नहीं थी, अपितु वहां पर एक आत्मविश्वास की झलक दिखाई दे रही थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इन दोनों व्यक्तियों के सामने किसी अन्य तांत्रिक को बोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी, क्योंकि अभी-अभी जो बाबा उठ खड़े हुए थे वे कपाली बाबा थे और यह सुना था कि इन्होंने चौंसठ कृत्याएँ सिद्ध कर रखी हैं और उनका प्रयोग किसी भी क्षण करने में समर्थ हैं, अतः दूसरे तांत्रिक स्वभावतः ही कपाली बाबा से घबराते थे और यदि कुछ अन्य तांत्रिकों ने कृत्या प्रयोग सीखी भी होगी तो उन्होंने एक या दो कृत्या से ज्यादा सिद्ध नहीं की होंगी।

त्रिजटा उठ खड़ा हुआ। क्रोध से उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। उसने कपाली बाबा तथा भैरूआ अघोरी के चैलेन्ज को स्वीकार करते हुए कहा कि कपाली बाबा का चैलेन्ज मैं तो स्वीकार करने में समर्थ नहीं हूं परन्तु श्रीमाली अवश्य ही चैलेन्ज को स्वीकार करेंगे और समुचित उत्तर देंगे। मुझे उन पर और उनके ज्ञान पर पूरा भरोसा है। मुझे यह भी ध्यान है कि उन्होंने मंत्र के क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त की है और वे विश्वविख्यात योगीराज सच्चिदानन्द के प्रिय शिष्य हैं, साथ-ही-साथ निखिलेश्वरानन्द के रूप में उन्होंने सभी प्रकार की कृत्याएं सिद्ध की हैं और इस नाम से सभी तांत्रिक समुदाय परिचित हैं, इन्होंने अपना नाम गृहस्थ में जाने पर बदला है।

भूर्भुआ बाबा ने भी इस समस्या का निराकरण जल्दी-से-जल्दी हल करने के लिए प्रार्थना की, और उन्होंने उपाय सुझाया कि मंच पर श्रीमाली जी खड़े हो जाते हैं और आप में से तीन या पांच साधक उनको चैलेन्ज देकर उनकी परीक्षा ले सकते

हैं। ऐसा कहते-कहते भूर्भुआ बाबा ने श्रीमाली जी का हाथ पकड़कर उन्हें मंच पर लाकर खड़ा कर दिया।

इस बीच अघोरियों और तांत्रिकों के बीच काफी गहमा-गहमी चल रही थी, परन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी का पूर्व नाम निखिलेश्वरानन्द ही था तो कई साधक शान्त हो गये, क्योंकि इस नाम से वे पूर्णतः परिचित थे और उनकी सिद्धियों के बारे में भी उन्होंने काफी कुछ सुन रखा था। मां कृपाली भैरवी यह कहते हुए सुनी गईं कि इस सभा में अब इनसे बढ़कर और कोई साधक नहीं है, इनका सामना जो भी करेगा वह व्यर्थ में अपना अपमान ही कराएगा।

अघोरियों ने तथा तांत्रिकों ने खड़े होकर एक स्वर से कहा कि हमारी तरफ से कपाली बाबा नियत हैं और सभापति का चयन अब इन दोनों में से ही होना है। वे दोनों परस्पर अपनी सिद्धियों के माध्यम से निर्णय कर लें कि कौन सर्वश्रेष्ठ है ? क्योंकि हमारी राय में कपाली बाबा के समान ऊंचा और श्रेष्ठ तांत्रिक और कोई नहीं है।

भैरूआ अघोरी ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की कि कपाली बाबा और श्रीमाली जी में परस्पर संघर्ष हो जाय और इन दोनों में जो जीत जाएगा वही इस सभा का सभापति बन सकेगा।

तब तक कपाली बाबा उठ खड़े हुए थे और वहीं खड़े-खड़े उन्होंने चैलेन्ज दिया कि यह बच्चा है, और मेरे पहले ही प्रहार से समाप्त हो जाएगा, इसलिये इसी को अधिकार देता हूं कि यह पहले अपना प्रयोग मुझ पर करे, क्योंकि मेरे प्रयोग करने के बाद तो श्रीमाली नाम का अस्तित्व ही संसार से मिट जाएगा। ऐसा कहते-कहते वे जोरों से हंस पड़े। ऐसा लग रहा था जैसे कई फटे हुए बांस एक साथ खड़खड़ा उठे हों।

पहली बार श्रीमाली जी के मुंह से ध्वनि निकली। मैंने देखा कि इतने उग्र वातावरण में भी उनका चेहरा शान्त और सरल था। चेहरे पर किसी प्रकार की उग्रता या क्रोध की मात्रा दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े कपाली बाबा की चुनौती स्वीकार करते हुए कहा कि कपाली बाबा मेरे लिए आदरणीय हैं, परन्तु उनमें जो व्यर्थ का घमण्ड है उसे यदि वे त्याग दें तो ज्यादा उचित रहेगा, क्योंकि उनको मात्र अपनी कृत्याओं पर भरोसा है, पर उनको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे भी चौंसठ कृत्याओं से सम्पन्न हो सकते हैं।

श्रीमाली जी ने साथ-ही-साथ मुस्कराते हुए यह भी कहा कि कपाली बाबा भ्रम में न रहें। उनके प्रहार से या प्रयोग से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। अस्तित्व मिटने की बात तो अलग है, कपाली बाबा के अलावा भी मैं अन्य सभी अघोरियों और तांत्रिकों की चुनौती स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। मुझे सभापति पद की इच्छा नहीं है या इस इच्छा के वशीभूत होकर यह सब कुछ नहीं कह रहा हूं पर व्यर्थ का जो 'अहं' कपाली बाबा तथा अन्य तांत्रिकों और अघोरियों में है, उस अहं की चुनौती स्वीकार करने के लिए मैं इस मंच पर उपस्थित हूं।

इस बीच कई अघोरी उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा कि हम में कपाली बाबा

सर्वश्रेष्ठ हैं और उनको परास्त करना हमें परास्त करना है। तांत्रिकों ने भी इसी मत को दोहराया और उन्होंने भी यही कहा कि हमारी तरफ से प्रतिस्पर्धी के रूप में कपाली बाबा हैं।

श्रीमाली जी ने मंच पर भूर्भुआ बाबा को एक स्थान पर बिठा दिया और मंच के बीच में खड़े हो गए। इधर सभा के मध्य में कपाली बाबा के रूप में विशाल और डरावना व्यक्तित्व खड़ा था। दोनों की आपस में कोई तुलना ही नहीं थी। मंच पर एक सीधा सरल सामान्य साधक दिखाई दे रहा था, जबकि सभा के मध्य में कपाली बाबा के रूप में विराटकाय डरावना अहं का मूर्तमंत रूप।

मैं अभी तक यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि मंच पर जो व्यक्ति खड़ा है क्या वह कपाली बाबा का सामना कर सकेगा? यह सुना था कि संहारिणी कृत्या का प्रयोग यदि हिमालय पर भी कर दिया जाय तो वह भी रुई की तरह उड़ जाता है, तो फिर यदि कपाली बाबा ने इस प्रकार की कृत्या का प्रयोग इस व्यक्ति पर किया तो यह किस प्रकार से उसका सामना कर सकेगा। यह तो एक क्षण में ही समाप्त हो जाएगा और वास्तव में ही इसका अस्तित्व दिखाई नहीं देगा।

कई तांत्रिक मन-ही-मन प्रसन्न थे कि आज त्रिजटा अघोरी को नीचा देखना पड़ेगा, क्योंकि श्रीमाली का नाम उन्होंने ही प्रस्तावित किया था, अतः श्रीमाली की पराजय परोक्ष रूप से त्रिजटा की ही पराजय थी, उसके साथ-ही-साथ त्रिजटा ने यह भी स्वीकार कर लिया था कि वह संहारिणी कृत्या का प्रयोग नहीं जानता है अतः त्रिजटा की विद्या भी श्रीमाली के लिए सहायक नहीं हो सकेगी।

पूरी सभा का माहोल एक अजीब-सा हो गया था और सभी लोग आतंकित थे कि आज कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। अधिकांश लोगों की राय यही थी कि त्रिजटा ने श्रीमाली को बलि का बकरा बना दिया है और कपाली बाबा इसे पहले ही प्रयोग में समाप्त कर देंगे, क्योंकि अधिकांश साधक कपाली बाबा, उनकी सिद्धियां और उनके क्रोध से परिचित थे। उनका सामना करने की हिम्मत किसी में नहीं थी।

तभी श्रीमाली जी ने कपाली बाबा को चैलेन्ज दिया कि आपको जो अहं है कि आपके पहले ही प्रयोग से मैं समाप्त हो जाऊंगा, यह आपका भ्रम है, आप वृद्ध हैं अतः पहला प्रयोग आप ही मुझ पर करें और यह भी मैं आपको स्पष्ट रूप से कह दूं कि आपके पास ऊंचे-से-ऊंचा जो संहारक अस्त्र हो उसका प्रयोग कर दें जिससे कि आपके मन में मलाल न रहे।

इतना सुनना था कि कपाली बाबा क्रोध से लाल अंगारे की तरह दहक उठे, और गालियों की बौछार के बीच कहा कि तेरी यह हिम्मत कि मुझे ही चैलेन्ज दे, अगर ऐसी ही बात है तो फिर तू संभल।

श्रीमाली जी मंच पर खड़े थे। सारी सभा में सन्नाटा-सा छाया हुआ था। उस समय यदि सभा में सुई भी गिरती तो उसकी आवाज भी स्पष्ट सुनाई देती।

कपाली बाबा ने अपना दाहिना हाथ हवा में लहराया। कुछ सरसों के दाने

हवा में से ही प्राप्त किये और मुट्ठी बंदकर मंत्र पढ़ना शुरू किया। मैंने अपने पास बैठे एक अघोरी से पूछा कि कपाली बाबा कौन-सा प्रयोग कर रहे हैं तो उसने कांपते हुए कहा कि कपाली बाबा 'संहारिणी कृत्या' का प्रयोग कर रहे हैं, और कुछ ही क्षणों के बाद यह कृत्या श्रीमाली को और उसके मंच को निश्चय ही जला देगी। इसका सामना करना ऊंचे-से-ऊंचे तांत्रिक और साधक के लिये भी संभव नहीं है।

तभी जोरों से हुंकार की ध्वनि सुनाई दी और ऐसा लगा जैसे भयंकर गर्जना हुई हो। वह गर्जना इतनी भीषण थी कि कानों के पर्दे फटने के लिये आतुर थे। मैंने दोनों कानों में उंगलियां डाल दीं और देखा कि कपाली बाबा क्रोध से लाल हो रहे थे, उनके मुंह से मंत्र ध्वनि आ रही थी और उनका सारा शरीर लाल सुर्ख हो गया था, तभी उन्होंने अपनी मुट्ठी में बंद सरसों के दाने श्रीमाली की तरफ फेंके और कहा ले, अपनी करनी का फल भुगत।

सैकड़ों आखें एक बारगी ही मंच पर एकत्र हो गईं। मैंने देखा कि श्रीमाली जी कुछ डगमगाये, वे जिस स्थान पर खड़े थे उससे तीन-चार कदम लड़खड़ाकर पीछे हटे, परन्तु दूसरे ही क्षण वे सहज हो गये और वापस चार कदम भरकर उसी स्थान पर आकर खड़े हो गये जहां पहले खड़े थे।

मैंने कपाली बाबा के चेहरे पर देखा तो उनका चेहरा आश्चर्य के साथ कुछ बुझ-सा गया था। उनको यह उम्मीद नहीं थी कि यह साधारण-सा व्यक्ति संहारिणी कृत्या का सामना कर लेगा। शायद श्रीमाली जी के पास इस कृत्या को नष्ट करने की विधि है और उसी की वजह से इसने कृत्या को समाप्त कर दिया है, उनकी आंखों में किंचित भय उतर आया था।

श्रीमाली जी शान्त बने रहे। उन्होंने फिर कपाली बाबा को चैलेन्ज दिया और कहा कि मैं आपकी उम्र को देखते हुए आपका सम्मान करता हूं, परन्तु सिद्धि और साधना के क्षेत्र में अभी आप काफी कमजोर हैं, यद्यपि आपने जिस भीषण वेग से कृत्या का प्रयोग किया था, वह अपने आप में असाधारण था और सहज ही इसके प्रहार को झेलना संभव नहीं था, फिर भी मैं आपके सामने उपस्थित हूं, अतः आपको फिर अवसर देता हूं कि आप अपने मन में किसी प्रकार की इच्छा न रखें, और यदि इससे भी बड़ी कोई शक्ति आपके पास हो तो आप उसका भी प्रयोग कर दें।

मां कृपाली भैरवी बीच में उठ खड़ी हुईं, उन्होंने कहा कि न्याय तो हो गया है अब दूसरी बार कपाली बाबा को अवसर देने की क्या आवश्यकता है। उन्होंने जो कुछ प्रयोग किया है वह मानवता से हटकर है। इस कृत्या का प्रयोग पांच हजार मील के वेग से एक हजार मन के पत्थर का जो आघात होता है उससे भी कई गुना ज्यादा गहरा आघात इस कृत्या के प्रयोग से सामने वाले पर होता है फिर भी श्रीमाली जी की सौजन्यता है कि वे एक अवसर और दे रहे हैं।

मैं इसमें इतना और जोड़ रही हूं कि यदि कपाली बाबा हार जायेंगे तो उन्हें श्रीमाली जी का शिष्य होना पड़ेगा और यदि श्रीमाली जी हार गये तो उन्हें कपाली

बाबा का शिष्य होना पड़ेगा। इसके बाद गुरु जो भी आज्ञा देगा वह उस शिष्य को मानने के लिये बाध्य होना पड़ेगा, क्योंकि इस साधना-परम्परा का निर्णय इसी प्रकार से ही होता है।

अधिकांश तांत्रिकों ने मां कृपाली भैरवी के कथन का अनुमोदन किया और उन्होंने कहा कि जो हारेगा उसे शिष्य बनना ही होगा।

इससे कपाली बाबा कुछ विचलित होते हुए नजर आये, परन्तु फिर भी उनके पास संभवतः कई सिद्धियां थीं और उनके भरोसे वे कुछ निश्चिन्त भी लग रहें थे।

श्रीमाली जी ने कहा कि सभा ने आपको मेरे विरोधी के रूप में उपस्थित किया है। न्याय तो यही है कि आपके प्रयोग के बाद मैं अपने प्रयोग को अपनाऊं, परन्तु मैं एक बार फिर आपको अवसर देता हूं जिससे कि आप भीषणतम शक्ति या साधना का प्रयोग मुझ पर कर सकें। इसके बाद आपको अवसर नहीं मिलेगा, फिर तो मैं केवल एक बार आप पर प्रयोग करूंगा और उसी से हार जीत का निर्णय हो जायगा।

कपाली बाबा ने अपने पास बैठे एक तांत्रिक से कुछ कहा, परन्तु सुनाई नहीं दिया। कपाली बाबा तन कर खड़े हो गये और अपनी जांघ के पास से मांस उधेड़ कर उसमें से छोटी-सी गोली निकाली और उसे दाहिने हाथ की हथेली पर रख कर कहा श्रीमाली! यह तुम्हारे लिये अन्तिम अवसर है, तुमने मुझे क्रोध दिलाकर उचित नहीं किया है। इस बार तेरी मृत्यु निश्चित है।

श्रीमाली जी अविचलित भाव से मंच पर खड़े थे और उनके दोनों हाथों की मुट्ठियां बंधी हुई थीं। संभवतः वे होठों में ही कुछ मंत्र बुदबुदा रहे थे।

कपाली बाबा ने अपने दाहिने हाथ की हथेली मुंह के सामने रखी। हथेली पर एक सफेद गोली रखी हुई थी और उस गोली को लक्ष्य कर कपाली बाबा मंत्र पढ़ रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने इस बार अपनी सारी शक्ति लगा दी हो। उनका सारा शरीर तन कर ठूंठ की तरह हो गया था और रक्त का प्रवाह हथेली की तरफ तेजी से होने लगा था। थोड़े ही समय बाद हथेली के नीचे से रक्त की बूंदें टपकने लगी, फिर भी कपाली बाबा का मंत्र जप चालू था और अचानक उन्होंने जोरों से मुट्ठी को कसी और वह गोली श्रीमाली जी की तरफ फेंक दी।

मैंने अपने पास बैठे तांत्रिक से प्रश्न किया कि इस बार कपाली बाबा ने कौनसा प्रयोग किया है तो भय से उसका चेहरा पीला पड़ गया। उसने कहा कि यह 'विध्वंस' प्रयोग है और इसके पीछे बावन भैरव शक्ति प्रयोग कार्य करता है, इसके साथ-ही-साथ इस प्रयोग में चौंसठ योगिनियों का भी प्रभाव कार्य करता है, यह प्रयोग सर्वाधिक संहारक और विध्वंसक होता है।

मेरी दृष्टि स्वभावतः ही श्रीमाली जी के चेहरे पर जम गई। ऐसा लगा कि जैसे वे लड़खड़ा गये हों। अचानक उन्हें एक सेकण्ड के लिये मंच पर बैठते हुए भी देखा, पर दूसरे ही क्षण वे उठकर खड़े हो गये और उन्होंने अपनी आखें खोल दीं।

पूरी सभा में हर्ष की लहर दौड़ गई और त्रिजटा अघोरी ने दौड़ कर श्रीमाली

जी को अपने कंधे पर उठा लिया। हर्ष में उन्होंने किलकारी की और पुनः मंच पर उन्हें खड़ा कर अपने स्थान पर जा खड़ा हुआ।

सारी सभा हतप्रभ थी कि यह साधारण-सा दिखने वाला व्यक्तित्व क्या इतना असाधारण हो सकता है ? निश्चय ही श्रीमाली जी उच्च कोटि के ज्ञाता हैं जो कपाली बाबा से सामना ले सकता है उसकी सिद्धियों की थाह संभव नहीं है।

इधर कपाली बाबा थक से गये थे। उनका चेहरा सफेद पड़ गया था और आंखों में क्रोध की जगह याचना झलकने लगी थी। उनके सहयोगी जो अघोरी थे वे अपने आप में कमजोरी अनुभव करने लगे थे, और एक प्रकार से परास्त से प्रतीत हो रहे थे।

श्रीमाली जी ने कहा, कपाली बाबा क्या आपके मन में कुछ और है, इस विध्वंसक प्रयोग को झेलने से श्रीमाली जी के चेहरे पर क्रोध की मात्रा जरूरत से ज्यादा आ गई थी, आंखों में ललाई-सी दिखाई दे रही थी और पूरा शरीर अंगारे की तरह लाल अनुभव हो रहा था।

श्रीमाली जी ने कहा कपाली बाबा ! प्रत्येक साधना के कुछ नियम होते हैं, कोई भी साधक अपने नियमों से आगे नहीं जाता। भीषण-से-भीषण शत्रु भी इस प्रकार का योग सामने वाले पर नहीं करता, क्योंकि इस प्रकार का प्रयोग तांत्रिक मान्यताओं के विपरीत है, साथ-ही-साथ मानवता के भी विरुद्ध है, आपने मानवता को भी स्पर्श नहीं किया और जिस प्रकार का प्रयोग मुझ पर किया है, यदि ऐसा ही प्रयोग किसी पहाड़ पर भी करते तो उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता, यह ज्ञात ही नहीं रहता कि वहां किसी समय पहाड़ था भी।

कपाली बाबा ! अब मैं तुमको छोड़ूगा भी नहीं, पर मानवता के साथ। तुमने दो प्रयोग मुझ पर किए हैं अब मैं एक प्रयोग तुम पर करता हूं, यदि इस प्रयोग से तुम बच गए या इस प्रयोग को झेल लिया तो मैं अपने आपको परास्त मान लूंगा, चाहता तो मैं यह था तुम्हें समाप्त कर दूं परन्तु अभी तक मैंने मानवता छोड़ी नहीं है।

मैं सावधान कर रहा हूं कि तीन मिनट के भीतर-भीतर प्रयोग करूंगा और तुम्हें संभलना है तो संभल जाना—और कहते-कहते श्रीमाली जी की मुख मुद्रा कठोर हो गई, उनका चेहरा लाल सुर्ख हो गया, आंखों से ज्वाला-सी निकलने लगी और उनका हाथ हवा में लहराया। दूसरे ही क्षण नीचे आया और फिर तन कर सामने की तरफ मुट्ठी खुली, जैसी कि कोई वस्तु सामने की तरफ उछाली हो।

एक ही क्षण में धड़ाम से कपाली बाबा नीचे गिर गए, और उनके मुंह से खून निकलने लगा, आंखों में भय छा गया और उन्हें एक ही क्षण में ऐसा लगने लगा था जैसे मृत्यु बहुत दूर नहीं रह गई हो।

कई तांत्रिक एक साथ उठ खड़े हुए और कपाली बाबा के चारों तरफ घेरा डाल दिया, उनकी आंखें बुझने लगीं, उनका चेहरा सफेद पड़ रहा था, उनके मुंह से खून निकल रहा था और ऐसा लग रहा था कि यदि तीन-चार मिनट कोई उपाय नहीं किया

गया या खून निकलना बंद नहीं हुआ तो कपाली बाबा जीवित नहीं बच सकेंगे।

तभी श्रीमाली जी की आवाज गूंजी कि सभी बीच में से हट जायं, अन्यथा उनको भी इसी प्रकार के प्रयोग का सामना करना पड़ेगा। यदि कपाली बाबा क्षमा मांग लेते हैं तो मैं उन्हें दया करके जीवन दान दे सकता हूं।

आवाज के साथ ही सभी तांत्रिक और अघोरी अपने-अपने स्थान पर बैठ गए, कपाली वावा के मुंह से अभी तक खून निकल रहा था और वह बह कर पास की जमीन को लाल कर रहा था, फिर भी उनमें चेतना बाकी थी, उनके दोनों हाथ परस्पर जुड़े—यह इस वात की साक्षी थे कि वे अपने आपको परास्त अनुभव करते हैं।

श्रीमाली जी और भूर्भुआ बाबा मंच से उनके निकट आये और श्रीमाली जी ने हवा में से लहरा कर कोई वस्तु अपने हाथ में ली और उस बारीक-सी वस्तु को कपाली बाबा पर डाल दिया। दूसरे ही क्षण उनके मुंह से खून निकलना बन्द हो गया।

श्रीमाली जी ने बाबा के हाथ को पकड़ कर उठाया और उन्हें उसी स्थान पर बिठाया जहाँ पर वे वैठे हुए थे, दो क्षणों के बाद वे चेतन्य हुए और उन्होंने उठ कर अपना सिर श्रीमाली जी के चरणों में रख दिया।

मां कृपाली भैरवी ने कहा कि मेरी बात रखी जाए। इसका निर्णय हो ही चुका है, अतः कृपाली वाबा शिष्यत्व स्वीकार करें।

भूर्भुआ वावा कपाली वावा को अपने साथ लेकर मंच पर आए, पास में ही श्रीमाली जी खड़े हुए थे। सारी सभा हतप्रभ और स्तब्ध थी। उनकी आंखों में आश्चर्य-मिश्रित भय विद्यमान था।

क्षीण स्वर में कपाली वावा ने अपनी पराजय स्वीकार की और कहा मैं हार गया हूं। मेरी सारी सिद्धियां और कृत्याएं आपके प्रयोग के सामने निष्फल सिद्ध हुई हैं अतः मैं शिष्यत्व स्वीकार करता हूं।

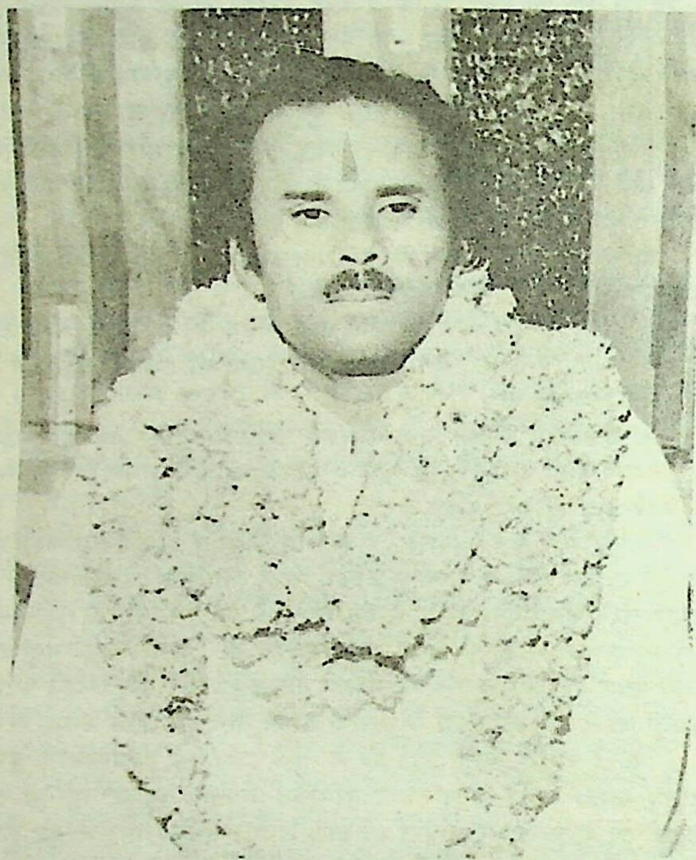
श्रीमाली जी ने कहा, कपाली बाबा आयु में मुझसे बड़े हैं और वयोवृद्ध होने के कारण मैं उनका सम्मान करता हूं। फिर भी वे पराजित हैं और उन्होंने शिष्यत्व स्वीकार करने की प्रार्थना की है, मैं इस प्रकार के कार्यों में विश्वास नहीं रखता, फिर भी मैं मां कृपाली भैरवी की आज्ञा का उल्लंघन भी करना नहीं चाहूंगा, अतः मैं कपाली वावा को शिष्य के रूप में स्वीकार करता हूं···और कहते-कहते प्रतीक रूप में श्रीमाली जी ने कपाली वावा के सिर के सामने वाले कुछ वाल उखाड़ लिए।

सारी सभा प्रसन्नता और हर्ष से गूंज उठी, सभी अपने-अपने स्थान से उठ खड़े हुए, उनकी आंखों में एक आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता लहरा रही थी और उन्होंने श्रीमाली जी के चारों तरफ घेरा सा डाल दिया। भूर्भुआ बाबा ने वृद्ध होते हुए भी श्रीमाली जी को अपनी बांहों में भर लिया, उनकी आँखों में प्रसन्नता के कण छलछला आये थे। सारी सभा एक स्वर से प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी।

पन्द्रह मिनट तक लगभग इसी प्रकार की प्रसन्नता मिश्रित ध्वनियां गूंजती रहीं। सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया कि निःसन्देह सिद्धियों के क्षेत्र में श्रीमाली

जी सर्वोपरि हैं और उनके पास जो अक्षय भण्डार है वह अपने आप में अद्वितीय है।

भूर्भुआ बाबा के बार-बार के अनुरोध से सभा शान्त हुई, और सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे, सभा के वयोवृद्ध देवहुर बाबा अपने स्थान से उठे और अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को चीर कर रक्त से श्रीमाली जी का सभापति के रूप में अभिनन्दन किया।



तांत्रिक सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ० श्रीमाली

भूर्भुआ बाबा ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं आज अत्यन्त प्रसन्न हूं, क्योंकि हमने एक जटिल समस्या का समाधान ढूंढ़ निकाला है। मैं श्रीमाली जी से और उनकी साधनाओं से परिचित रहा हूं, तन्त्र-मन्त्र और अन्य सभी प्रकार की

साधनाओं में वे निष्णात हैं, निष्णात ही नहीं उन्होंने सर्वोपरि सिद्धियों को हस्तगत किया हैं, इसका प्रमाण अभी आप देख चुके हैं ।

मेरी ही नहीं पूरी सभा की आंखें श्रीमाली जी के चेहरे टिकी हुई थीं । कुछ क्षणों पूर्व उनके चेहरे पर क्रोध की जो लालिमा थी वह समाप्त हो गई थी और उनका चेहरा पुनः सामान्य-सा दिखाई देने लग गया था, पूरी सभा के हर्ष और प्रसन्नता का उन पर कोई प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा था । इस अद्भुत और श्रेष्ठतम तांत्रिक सम्मेलन के सभापति पद को प्राप्त करके भी उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार की अहं की रेखा दिखाई नहीं दे रही थी, इसके स्थान पर मुझे उनकी आंखों में स्नेह और करुणा का मिला-जुला रूप दिखाई दे रहा था ।

श्रीमाली जी ने प्रारम्भिक भाषण में अपने गुरु श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी का स्मरण करते हुए आगन्तुक सभी साधकों और तांत्रिकों की अभ्यर्थना की और बताया कि युग परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्ति को भी परिवर्तन के लिए तैयार रहना चाहिए । हम पूरे विश्व में तंत्र-मंत्र के क्षेत्र में सर्वोपरि हैं और विश्व की आदिम सभ्यता से अब तक इस भारत को विश्व के अन्य देश चैलेन्ज नहीं दे सके हैं, इस क्षेत्र में हम अब भी अग्रगण्य और सर्वोपरि हैं, परन्तु धीरे-धीरे हम में संकुचितता आ रही है । हम अपने ज्ञान को अपनी ही बपौती समझ बैठे हैं और दूसरों को देने में कृपणता वरत रहे हैं, यह हमारी स्वार्थ प्रवृत्ति है जो हमारे स्वयं के लिए और इस विद्या के विकास के लिए पूर्णतः घातक है ।

समाज में हम अपना सम्मान उस रूप में कायम नहीं रख सके हैं, जिस रूप में रहना चाहिए, क्योंकि हमने तन्त्र का प्रयोग केवल मारक कार्यों के लिए ही किया है, तंत्र का तो सबसे बड़ा उपयोग रचनात्मक कार्यों में है । यदि हम इस तंत्र का रचनात्मक कार्यों में उपयोग लें तो निश्चय ही सीमित समय में इस देश का काया पलट कर सकते हैं । हम इस क्षेत्र में सर्वोपरि होते हुए भी नगण्य हैं, क्योंकि हमने इस विद्या का प्रयोग या तो चमत्कार प्रदर्शन के लिए या व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही किया । समाज के रचनात्मक उपयोग के लिए भी इस विद्या का उपयोग हो सकता है, ऐसा हमने सोचना ही छोड़ दिया ।

हमने तंत्र को एक अजीब रूप दे दिया है, विचित्र वेषभूषा को इसका प्रतीक बना दिया है, यह एक घातक प्रवृत्ति है । हमें चाहिए कि हम इस संकुचितता से बाहर आएं और अपने ज्ञान को पुस्तकों के माध्यम से, प्रयोगों के माध्यम से तथा समाज के रचनात्मक कार्यों के माध्यम से व्यक्त करें, जिससे कि यह विद्या जीवित रह सके, अन्यथा एक समय ऐसा भी आ सकता है जब यह विद्या हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी ।

आज 'परदेह प्रवेश' या 'परकाया प्रवेश' विद्या को जानने वाले कितने बचे हैं ? 'आकाश गमन' और 'मनोनुकूल गमन' साधना इने-गिने लोगों के पास रह गई है, यदि हम इस विद्या को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित नहीं रख सके तो यह विद्या

इस विश्व से हमेशा-हमेशा के लिए लोप हो जाएगी।

यह सम्मेलन एक आश्चर्यजनक और ऐतिहासिक सम्मेलन है। जिसकी गरिमा और महत्ता को हमें अनुभव करना चाहिए। इस सम्मेलन में आपसी वाद-विवाद या अपनी अहंम्मन्यता को ही बढ़ावा नहीं देना है अपितु मिल-जुल कर एक-दूसरे की भावनाओं से, एक-दूसरे की कलाओं से और एक-दूसरे की साधनाओं से परिचित होना है, जिससे कि हम आने वाली पीढ़ियों के लिए निश्चित रूपरेखा बना सकें और धरोहर के रूप में उनको कुछ दे सकें।

श्रीमाली जी का भाषण नपा-तुला संयत और स्पष्ट था। उनके भाषण में लुप्त हो रही विद्या को जीवित रखने की ओर संकेत था, इसके साथ-ही-साथ उनकी यह चेतावनी भी थी कि यह विद्या केवल एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर समाप्त न हो जाए, बल्कि इसे समाज के आधुनिक परिवेश में स्थान देना होगा और समाज के मन-मस्तिष्क से जो इसके प्रति भ्रान्त धारणाएं हैं उसे दूर करना होगा।

मैं श्रीमाली जी के भाषण से भी ज्यादा उनकी सादगी और विनम्रता से प्रभावित हो रहा था। मैं देख रहा था कि उन्होंने प्रायोगिक रूप से अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की है फिर भी उनके मन में किसी भी प्रकार का अहं नहीं है, दूसरों के प्रति आदर, सम्मान और स्नेह में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है, जितना ही मैं उनको देख रहा था उतना ही ज्यादा उनके प्रति एक अजीब-सा अपनत्व महसूस कर रहा था। अपने आपको उनके व्यक्तित्व के प्रति सम्मोहित-सा अनुभव कर रहा था। मैंने यह निश्चय कर लिया कि इस अज्ञात व्यक्तित्व के बारे में ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी प्राप्त करनी है जिससे कि मैं इनसे लाभ उठा सकूं।

मैं उठ कर त्रिजटा अघोरी के पास जाकर बैठ गया और अपना परिचय देते हुए श्रीमाली जी के बारे में चर्चा छेड़ी तो मैंने देखा कि उनके चेहरे पर एक अपूर्व-सी चमक आ गई थी। उन्होंने बताया कि तंत्र के क्षेत्र में यह व्यक्ति सागर के समान है, जिसकी थाह पाना सम्भव नहीं है। मैं अपने आपको तंत्र के क्षेत्र में बहुत कुछ मानता था और श्रीमाली जी मेरे साथ कुछ समय तक पहाड़ी पर रहे भी थे और मुझसे दो-चार विद्याएं सीखी भी थीं परन्तु हकीकत यह है कि मैंने जितनी विद्याएं उन्हें सिखाई हैं उससे ज्यादा उनसे सीखी हैं। मैंने यह देखा कि यह व्यक्ति जितना दक्षिण मार्गी साधना में निष्णात है उससे भी ज्यादा वाम मार्गी साधना में सम्पन्न है। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि यह व्यक्तित्व सिद्धाश्रम के सर्वोपरि योगीराज श्री सच्चिदानन्द जी का परम प्रिय शिष्य है, जो कि अपने आप में एक विशिष्ट गौरव है। योगीराज जी से बहुत कुछ प्राप्त किया है, मंत्र साधना के क्षेत्र में योगीराज विश्ववन्द्य हैं और उनका शिष्य होना ही अपने आप में विशिष्ट गौरव माना जाता है, अलभ्य दुर्लभ और आश्चर्यजनक साधनाएं उनके द्वारा श्रीमाली जी ने प्राप्त की हैं, इसके अलावा यह व्यक्ति कई वर्षों तक अघोरियों के साथ रहा है, गौरक्ष साधना में आज के युग में यह सर्वोपरि है, ऐसा कहने में मुझे कोई संकोच नहीं।

त्रिजटा अपने आप में एक प्रामाणिक व्यक्तित्व है। सभा में उपस्थित कई श्रेष्ठ तांत्रिक किसी-न-किसी रूप में त्रिजटा के शिष्य रहे हैं, अतः त्रिजटा के शब्द अपने आप में प्रामाणिक हैं, इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी, जहां त्रिजटा ने श्रीमाली जी के वारे में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है तो निश्चय ही श्रीमाली जी तंत्र के और मंत्र के क्षेत्र में सर्वोपरि होंगे।

मेरे कान त्रिजटा के शब्द सुन रहे थे और मेरी आंखें श्रीमाली जी के व्यक्तित्व पर अटकी हुई थीं। मैं आश्चर्यचकित था कि इतना श्रेष्ठ साधक किस प्रकार से बिना हो हल्ले के, बिना प्रचार प्रसार के, अपने कार्य में रत है, इससे भी बड़ी बात मैंने यह देखी कि यह व्यक्ति बहुत अधिक उदार और नम्र है, यदि इसके स्थान पर कोई दूसरा होता और इस प्रकार मृत्यु के संघर्ष में विजयी होकर सभापति बनता तो उसका अहंकार इस समय आसमान को छू रहा होता, इसकी अपेक्षा यह अपने आप में संकोच शील है और मृत्यु का फाग खेलने पर भी अपने प्रबल शत्रु कपाली बाबा को आदर-पूर्वक अपने पास बिठा रखा है।

मैंने निश्चय किया कि आज की सभा समाप्त होने पर मैं श्रीमाली जी से अलग से मिलूंगा और उनके विचारों को जानने का प्रयत्न करूंगा।

अगले दिन की, और आगे के सम्मेलन समाप्त तक की रूप रेखा और कार्य-प्रणाली स्पष्ट करने के बाद आज सायंकालीन सभा समाप्त हो गई, क्योंकि कई साधक सूर्यास्त के समय की जाने वाली साधना में भाग लेने के इच्छुक थे, अतः सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही सभा समाप्त कर दी गई।

सभा समाप्त होते ही अधिकांश तांत्रिकों और मांत्रिकों ने श्रीमाली जी को चारों तरफ से घेर लिया। सभी अपना-अपना परिचय देने की उतावली कर रहे थे, सभी तांत्रिक उनकी नजरों में आना चाहते थे और सभी साधक इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि उनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त हो सके जिससे कि वे अपनी अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित कर सकें।

सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये, जहां पर कि सभी को ठहराने की व्य-वस्था की गई थी और जाते ही अधिकांश साधक अपनी साधनाओं में व्यस्त हो गए। मेरा मन अन्य किसी कार्य में नहीं लग रहा था। एक ही इच्छा हो रही थी कि किसी प्रकार श्रीमाली जी से समय प्राप्त कर सकूं जिससे कि मैं अपनी बात को उनके सामने रख सकूँ और उनके विचारों को जान सकूं।

पर उनके एक पुराने तांत्रिक शिष्य से ज्ञात हुआ कि रात्रि में उनसे मिलना संभव नहीं हो सकेगा, क्योंकि एक बार अपनी साधना में जाने के बाद सूर्योदय से कुछ पूर्व ही वे साधना पूर्ण कर बाहर आते हैं, अतः इस समय मिलना संभव नहीं हो सकेगा, यह शिष्य किसी समय श्रीमाली जी के साथ रहा था और उनसे काफी कुछ प्राप्त किया था। आज भी जब वह अपने होठों से श्रीमाली जी का नाम उच्चारित करता तो उसके चेहरे पर एक अपूर्व चमक आ जाती थी और प्रसन्नता से सीना फूल जाता

था। वह इस बात में गौरव अनुभ कर रहा, कि वह किसी समय श्रीमाली जी का शिष्य रहा है और आज भी उस पर उनकी पूर्ण कृपा है।

उससे मुझे श्रीमाली ः ी के बारे में काफी कुछ सुनने को मिला। मुझे ज्ञात हुआ कि लगभग २० वर्षों तक श्रीमाली जी घर गृहस्थी छोड़कर केवल तंत्र और मंत्र की पूर्णता को जानने के लिए ंगलों में भटकते फिरे थे, और इस अवधि में उन्होंने जो कुछ कष्ट उठाया उसकी अपने आप में एक अलग कहानी है।

भारत के ऊंचे-से-ऊंचे साधकों के सम्पर्क में रहने का उन्हें अवसर मिला है और स्वामी सच्चिदानन्द जी के वे परमप्रिय शिष्य हैं और योगीराज ने इनको ही अपना उत्तराधिकारी माना है, इसके अलावा अत्यन्त दुर्लभ सिद्धाश्रम के वे सदस्य हैं और 'आकाश गमन' साधना के माध्यम से वे यदा-कदा सिद्धाश्रम आते जाते रहते हैं।

उन्होंने अपने जीवन में जहां तंत्र की सर्वोच्चता प्राप्त की है, वहीं दूसरी ओर मंत्र के क्षेत्र में भी सर्वोपरिता प्राप्त करने में सफल हो सके हैं, वाम मार्गी साधना के वे सर्वश्रेष्ठ साधक हैं, चौंसठ कृत्याओं को उन्होंने पूर्णतः सिद्ध किया है, और उन्होंने ऐसी कई साधनाएं सिद्ध की हैं जो दूसरों के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती हैं, अघोर साधना के क्षेत्र में उनकी अग्रगण्यता आज भी सभी लोग मानते हैं।

परन्तु इतना होते हुए भी वे जरूरत से ज्यादा नम्र हैं और कभी भी चमत्कार प्रदर्शन या अपने अहं का प्रदर्शन करने में विश्वास नहीं रखते, उनका पूरा जीवन सरल, सात्विक और गौरवपूर्ण रहा है।

इससे भी आश्चर्यजनक वात मुझे यह सुनने को मिली कि श्रीमाली जी इन विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ होने के साथ-साथ एक सफल गृहस्थी भी हैं, पूर्णतः भारतीय वातावरण में ढली हुई उनकी पत्नी है, पुत्र है, पुत्रियां हैं और अपने गृहस्थ को ठीक उसी प्रकार से निभाते हैं जिस प्रकार से साधारण गृहस्थ अपने गृहस्थ जीवन को निभाता है।

इतना होने पर भी उनकी साधना पर कभी भी गृहस्थ हावी नहीं हो सका है और न गृहस्थ पर उनकी साधना हावी रहती है। दोनों में उचित समन्वय उनके जीवन की विशेषता है और दोनों ही क्षेत्रों में उन्होंने पूर्णता प्राप्त की है।

जिस समय वे अपनी साधना में रत होते हैं तो उनका रूप ही बदल जाता है, उस समय वे पूर्णतः साधक दिखाई देते हैं, गृहस्थ का किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव उस समय उन पर नहीं रहता। इसके विपरीत जब हम उनको गृहस्थ रूप में देखते हैं तो यह विश्वास ही नहीं होता कि यह व्यक्ति साधक है या इस व्यक्ति ने साधना के क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त की है।

जितना ही मैं श्रीमाली जी के बारे में सुनता जा रहा था उतनी ही ज्यादा मेरी उत्सुकता उनसे मिलने की हो रही थी। ऐसा अवसर मुझे सम्मेलन प्रारम्भ होने के पांचवे दिन मिला जबकि वे दोपहर में विश्राम कर रहे थे। उस शिष्य के माध्यम से मैंने श्रीमाली जी से निवेदन किया था कि मैं एक साधारण साधक हूं और इस क्षेत्र

में पिछले १५ वर्षों से भटक रहा हूं, यद्यपि मुझे कुछ प्राप्त हुआ है परन्तु वह समुद्र में बूंद के समान है। मैं पिछले चार दिनों से आपसे मिलने के लिये प्रयत्न कर रहा हूं परन्तु चौबीसों घंटे आप इस प्रकार से व्यस्त हैं कि मैं एक क्षण भी आपका ले नहीं पाया हूं। मैं कुछ क्षण आपसे लेना चाहता हूं, जिससे कि मैं आपसे कुछ मार्ग दर्शन पा सकूं और अपने जीवन की साध को सफल बना सकूं।

तब दोपहर के विश्राम के समय श्रीमाली जी ने कुछ समय मुझे एकान्त भेंट के लिए दिया। यह भेंट मेरे लिए आज भी स्मरणीय है जबकि मैं पहली बार इस महा-पुरुष के सामने बैठकर अपनी बात को उनके सामने रख सका था और मार्गदर्शन पा सका था।

मैंने यह पाया कि निश्चय ही श्रीमाली जी अपने क्षेत्र में सार्वोपार हैं और उनके पास जो सिद्धियां हैं वे अपने आप में अन्यतम हैं, उनको चुनौती देने वाला या उनसे स्पर्धा करने वाला आज कोई भी अन्य नहीं है, फिर भी यह व्यक्ति अत्यधिक नम्र है और अपनी प्रशंसा सुन कर इसको जरूरत से ज्यादा संकोच अनुभव होता है, ज्योंही प्रशंसा की चर्चा छिड़ती है, तो वे विषय को बदल देते हैं, उनके मन में सभी तांत्रिक, मांत्रिक, भैरवियों, अघोरियों आदि के बारे में स्नेह है, और सभी को वे मार्गदर्शन देने में सफल हैं।

मैंने उनसे बातचीत में निवेदन किया कि मैं जीवन में कानून का सफल विद्यार्थी और न्यायपालिका का श्रेष्ठ सदस्य रहा हूं, इसके बाद मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त की थी, परन्तु इस क्षेत्र में मेरी रुचि नहीं रही और मैंने अपने शेष जीवन को तांत्रिक साधना सीखने में ही व्यतीत करने का निश्चय किया है।

मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से इस क्षेत्र में सीखने का प्रयत्न कर रहा हू, पर इस सम्मेलन में आने के बाद मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरा अस्तित्व तो नहीं के बराबर है। यदि मैं सौ वर्ष भी जीवित रह जाऊं फिर भी मैं कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाऊंगा जितना कि चारों तरफ ज्ञान फैला हुआ है।

मैंने उनसे तंत्र के बारे में मंत्र और वाम मार्गी साधना के बारे में कई प्रश्न किये और उन्होंने जितने स्नेह और प्रामाणिकता के साथ मुझे समझाया वह आज भी स्मरणीय है, जितना मैं सुन रहा था उतना ही ज्यादा मुझे उनकी गहराई का एहसास हो रहा था। मैं देख रहा था कि यह व्यक्ति अपने आप में कितना महान है, परन्तु साथ-ही-साथ कितना नम्र भी। ऐसा ही व्यक्ति आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग-दर्शक बन सकता है।

मेरी आत्मा मुझे कह रही थी कि तू जिस मंजिल को पाना चाहता है जो गुरु की धारणा तेरे मन मस्तिष्क में है, वह सामने है, तेरी जिज्ञासाओं का समाधान इसी व्यक्ति से हो सकता है, क्योंकि इस व्यक्ति में देने की क्षमता जरूरत से ज्यादा है।

डरते-डरते मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं कुछ समय आपके साथ रहना चाहता हूं और यदि मुझ में पात्रता हो और आप उचित समझें तो मैं शिष्य रूप में आपके चरणों

में जीवन बिताना चाहता हूं ।

श्रीमाली जी ने उत्तर दिया कि इतनी जल्दी शिष्य बनना संभव नहीं है क्योंकि केवल होठों से ही गुरु या शिष्य शब्द उच्चारित करना ही सब कुछ नहीं है, जब तक पूर्ण मानसिक और हार्दिक रूप से समर्पण की भावना उजागर नहीं होती तब तक शिष्यत्त्व की पूर्ण भावना जागृत नहीं हो पाती, और जब तक ऐसी भावना जागृत नहीं होती तब तक शिष्य बनना व्यर्थ है, क्योंकि 'गुरु' शब्द एक सामान्य शब्द नहीं है इसके पीछे बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, और जब तक वह गुरु उस शिष्य के प्रति पूर्ण क्षमता के साथ उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सके तब तक उसका गुरु बनना या गुरु बनने की प्रक्रिया अपनाना व्यर्थ है ।

मैं गुरुवाद में विश्वास नहीं करता । मैं नहीं चाहता कि मेरे पीछे शिष्यों की लम्बी कतार या उनकी फौज हो । मैं तो जीवन में संकुचितता इस रूप में चाहता हूं कि चाहे कम ही शिष्य हों परन्तु वे अपने आप में पूर्ण हों । मुझे शिष्य रूप में तुम्हें स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है, पर तुम्हारे होठों की अपेक्षा जब तुम्हारा हृदय इस बात की याचना करेगा तो मैं तुम्हें अवश्य शिष्य बना लूंगा ।

होठों के शब्दों की अपेक्षा हृदय से जो शब्द उच्चरित होते हैं वे ज्यादा सही, प्रामाणिक और पवित्र होते हैं । मैं होठों से निकले हुए शब्दों की अपेक्षा हृदय से निकलने वाले शब्दों पर ज्यादा विश्वास करता हूं । जब भी तुम्हारी ऐसी स्थिति हो जाय तब मेरा द्वार तुम्हें खुला मिलेगा और तुम मेरे पास आ सकोगे ।

उनकी बात अपने स्थान पर सही थी, अभी तक मैं अपने आप को पूर्ण क्षमता के साथ शिष्य का रूप नहीं दे सका था, शिष्य का मूल समर्पण होता है और जब तक व्यक्ति में समर्पण की पूर्ण भावना स्पष्ट नहीं होती, तब तक 'शिष्य' शब्द सार्थक नहीं हो पाता । मैं अपने आपको पूर्णता के साथ शिष्य स्पष्ट करना चाहता था, और मैंने उसी क्षण निश्चय कर लिया था कि मैं एक दिन अवश्य ही श्रीमाली जी का शिष्य बनने का गौरव प्राप्त कर सकूंगा ।

मैंने उनसे याचना की कि निश्चय ही मैं अभी आपका शिष्य बनने के योग्य नहीं हूं । अभी मुझ में उस पात्रता का अभाव है जो आपका शिष्य बनने के लिये आवश्यक है, परन्तु फिर भी इस सम्मेलन के बाद कुछ समय आपके साथ रहना चाहता हूं, और मुझे विश्वास है, आप मेरे इस अनुरोध को ठुकरायेंगे नहीं, अपितु स्वीकृति देंगे जिससे कि मैं अपने आपको धन्य समझूंगा ।

श्रीमाली जी ने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी आंखों में झांका और एक ही क्षण में उन्होंने मुझे अपनी कसौटी पर तोल लिया । मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे कि वे मेरे पूर्ण अन्तर को देख चुके हैं और मेरे अन्तर में गहराई के साथ प्रवेश कर वह सब-कुछ जान चुके हैं, जिनको मैं गोपनीय रख रहा था । एक क्षण के लिये में पीपल के पत्ते की तरह कांप गया । वह क्षण आशंका और प्रतिशंका के बीच इसलिये झूल रहा था कि श्रीमाली जी स्वीकृति देंगे या नहीं । यदि उन्होंने मना कर दिया तो आगे के सारे

रास्ते मेरे लिये अवरुद्ध हो जायेंगे। यदि उनकी स्वीकृति मिल गई तो मैं कुछ दिन उनके साथ रह सकूंगा और उसके जीवन की सुवास से अपने आपको सुवासित कर सकूंगा, और अपने कार्यों से यह स्थापित करने का सफल-असफल प्रयास कर सकूंगा कि मैं शिष्य बनने की योग्यता रखता हूं, और आने वाले समय में मैं इस कसौटी पर खरा उतर सकूंगा।

श्रीमाली जी मेरे चेहरे पर नजर डालते हुए मुस्कराये और कुछ दिन साथ रहने की स्वीकृति दे दी। यह स्वीकृति मेरे लिये किसी श्रेष्ठ साधना की सफलता से कम नहीं थी। मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे मैं कुछ-कुछ पा गया हूं, मुझे अपनी मंजिल मिल गई हो, मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जिस कार्य के लिये मैं भटक रहा था उस की पूर्णता अब निकट भविष्य में हो सकेगी, हो सकता है मैं अपने जीवन में पूर्णता पा सकूं। मैंने अपने मन में जो लक्ष्य निश्चित किया था वह लक्ष्य अब मुझे निकट आता अनुभव हो रहा था।

सम्मेलन में जाने का समय हो गया था। मैं उनसे विदा लेकर बाहर आया। उस समय मैं अपने आपको संसार का सबसे अधिक सौभाग्यशाली अनुभव कर रहा था, मेरा हृदय प्रसन्नता के कारण जोरों से धड़क रहा था। खुशी के मारे मेरे पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे, पूरा शरीर रोमांचित हो गया था, और मेरी आंखों में प्रसन्नता के आंसू छलछला रहे थे।

आज पहली बार मैंने अनुभव किया था कि सिद्धि पुरुष के समीप बैठने से ही कितना कुछ लाभ हो जाता है। उनके शरीर से निसृत गंध से जो मादक वातावरण बनता है वह कितना अनुपम होता है।

सम्मेलन के दस दिन हंगामापूर्ण ही रहे, परन्तु ये दस दिन अपने आप में अन्यतम थे, क्योंकि इन दस दिनों मे श्रेष्ठतम साधकों ने श्रेष्ठतम प्रक्रिया से अपनी साधनाओं को स्पष्ट किया और उन साधनाओं में नवीनतम रहस्यों की ओज को भी सबके सामने स्पष्ट किया।

अभी तक 'श्यामा-साधना' अपने आप में अत्यन्त जटिल और कठोर समझी जाती थी, परन्तु वैचाक्षी बाबा ने इस प्रक्रिया को एक नवीन पद्धति से सिद्ध किया और उन्होंने उसके परिणाम भी सबके सामने रक्खे। इसी प्रकार ऊर्ध्वगमन प्रक्रिया की सरलतम विधि भी जिज्ञासुओं के सामने स्पष्ट हुई, त्रिजटा अघोरी ने व्यावहारिक रूप में 'संजीवनी-विद्या' को सबके सामने स्पष्ट किया। रामायण में मैंने पढ़ा था कि जब राम-रावण का युद्ध समाप्त हुआ तो राम ने इन्द्र से प्रार्थना की कि आप मेरी सेना के जितने भी मृत वानर हैं या इस युद्ध में मारे गए हैं उन्हें आप संजीवनी विद्या से जीवित कर दें,। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन सभी वानरों को पुनः जीवित कर दिया था, साथ ही वे रोग मुक्त भी हो गये थे।

इन्द्र ने यह विद्या वृहस्पति से सीखी थी और मैंने यह पढ़ा था कि वृहस्पति और शुक्र दोनों ही इस विद्या के पारंगत ऋषि थे। मैंने इसको पढकर केवल अनुमान

लगाया था कि किसी समय हमारे देश में यह विद्या जीवित रही होगी, परन्तु काल-व्यवधान के कारण यह विद्या इस देश से लुप्त हो गई होगी, परन्तु त्रिजटा ने सबके सामने इस प्रक्रिया को सिद्ध करके दिखाया। उन्होंने मृत व्यक्ति को जोकि पास के गांव में एक दिन पहले ही मरा था उसे प्राप्त कर सम्मेलन में सबके सामने उसे जीवित कर दिखाया, यह मेरे लिए और अन्य साधकों के लिये आश्चर्यजनक था, परन्तु जो कुछ था हमारे सामने था और प्रत्यक्ष था। वास्तव में अभी तक भारत इस प्रकार की विद्याओं से सम्पन्न है। त्रिजटा ने वाम मार्गी साधना से 'संजीवनी प्रक्रिया' सम्पन्न की थी, बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि इसकी एक और विधि मांत्रिक भी है और उसके माध्यम से भी यह क्रिया सम्पन्न की जाती है। त्रिजटा से ही मुझे ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी को दोनों ही प्रकार की विधियां ज्ञात हैं और उन्होंने इसका प्रयोग कई बार किया भी है।

'आकाश-गमन-प्रक्रिया' भी मैंने पहली बार इस सम्मेलन में देखी, जबकि साधक इस प्रक्रिया के माध्यम से हवा से भी हल्का होकर आकाश में विचरण कर सकता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर सहज में ही आ जा सकता है। भूर्भुआ बाबा ने इस प्रक्रिया को सबके सामने करके बताया और उन्होंने उन प्रश्नों के उत्तर भी दिये जो कि इस प्रक्रिया के पेचीदा अंग हैं। इस साधना के माध्यम से साधक हवा में पक्षी की तरह उड़ सकता है और उसका वेग वायुयान से भी कई गुना तेज होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये और अगम्य पर्वतों को पार करने के लिये यह विधि सर्वाधिक उपयुक्त है।

पुराणों में नारद के बारे में विख्यात है, कि वे निरन्तर घूमते रहते थे और कुछ ही क्षणों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन कर सकते थे। उन्हें यही विधि ज्ञात थी, जिसके माध्यम से वे ब्रह्माण्ड के किसी भी स्थान पर सशरीर कुछ ही क्षणों में पहुंच जाते थे। यह मांत्रिक प्रक्रिया है और इसकी एक वाम मार्गी तांत्रिक प्रक्रिया भी है जिसे मच्छिन्दरनाथ ने विकसित किया था, वे सशरीर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सक्षम थे, भूर्भुआ बाबा ने मांत्रिक प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट किया और प्राणायाम प्रक्रिया से अपने शरीर को वायु से भी हल्का कर पृथ्वी से १० फीट तक ऊपर उठ कर सब को बताया, साथ ही उन्होंने आकाश में विचरण करके भी इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया। मां कृपाली भैरवी इस प्रक्रिया के वाम मार्गी साधना की निष्णात साधिका हैं, उन्होंने भी कृपा कर इसकी तांत्रिक प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट किया और सशरीर उन्होंने भूर्भुआ बाबा के समक्ष वायु और आकाश में विचरण कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने इस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से समझा करके भी स्पष्ट किया। मूलतः श्मशान साधना है और इसके माध्यम से यह तुरन्त सिद्ध होती है। मां कृपाली भैरवी को मनोनुकूल विचरण प्रक्रिया भी ज्ञात है और उन्होंने इस प्रकार की प्रक्रिया को सबके सामने स्पष्ट करके भी दिखाया था।

शाम को मैं मां कृपाली भैरवी के साथ काफी समय तक रहा और उन्हें इन

रहस्यों को जानने के लिये साधुवाद दिया। बातचीत में उन्होंने बताया कि वे बचपन से ही संन्यासी हो गई थीं और तांत्रिक क्षेत्र में उन्होंने अपने जीवन को व्यतीत करने की भावना मन में धारण कर ली थी। कुछ समय तक वे हिमालय के 'सिद्धाश्रम' में भी रही थीं जो कि अपने आप में श्रेष्ठतम उपलब्धि मानी जाती है।

बातचीत में मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि जब श्रीमाली जी निखलेश्वरानन्द जी के रूप में हिमालय स्थित थे तब मां कृपाली भैरवी उनके साथ काफी समय तक रही थीं और इस प्रकार की साधनाएं उनसे ही प्राप्त की थीं। आज भी जब वे गुरु का नाम लेती हैं तो उनकी आंखें छलछला आती हैं। मां कृपाली भैरवी से ही मैंने अनुभव किया कि शिष्य का मुख्य गुण समर्पण होता है और उसके रोम-रोम से गुरु की ही ध्वनि निकलती है।

इस सम्मेलन की एक और उपलब्धि 'परकाय-प्रवेश' का दिग्दर्शन था। मैंने इस संबंध में कई स्थानों पर पढ़ा था कि साधक अपने शरीर को छोड़कर दूसरे मृत शरीर में प्रवेश कर लेता है और उस दूसरे शरीर से भी जीवन के क्रिया-कलाप सम्पन्न कर लेता है, यह साधना भारत की सर्वश्रेष्ठ साधनाओं में से एक रही है, कुछ समय पूर्व शंकराचार्य इस विद्या के निष्णात साधक थे।

जब मण्डन मिश्र और शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ तो निश्चय यह हुआ कि इन दोनों में से जो हारेगा वह जीते हुए व्यक्ति का शिष्य बन जायेगा। मण्डन मिश्र भारत के विख्यात विद्वान् और गृहस्थ थे। उनकी विदुषी पत्नी सरस्वती भी साक्षात सरस्वती का अवतार थी और दोनों पति-पत्नी भारत के श्रेष्ठतम विद्वान् थे।

शंकराचार्य मूलतः संन्यासी थे और उन्होंने शास्त्रार्थ के माध्यम से भारत विजय करने के उद्देश्य से यात्राएं की थीं। मगर वे सर्वश्रेष्ठ तभी माने जा सकते थे जबकि वे मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित कर सकते।

इन दोनों के शास्त्रार्थ का निर्णय कौन करे यह एक पेचीदा प्रश्न था, क्योंकि कोई सामान्य विद्वान् तो निर्णय करने में सक्षम था नहीं, अतः शंकराचार्य जी के अनुरोध से इस शास्त्रार्थ के निर्णायक के रूप में मण्डन मिश्र की पत्नी का चयन किया गया। शास्त्रार्थ इक्कीस दिन चला और आखिर में मण्डन मिश्र शंकराचार्य से हार गये। यह देखकर मण्डन मिश्र की पत्नी ने निर्णय दिया कि मण्डन मिश्र हार गये हैं, अतः वे शंकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करें और संन्यास दीक्षा लें।

यह कहकर वह विदुषी पत्नी निर्णायक पद से नीचे उतरी, और शंकराचार्य से कहा कि मैं मण्डन मिश्र की अर्द्धांगिनी हूं अतः अभी तक आधा अंग ही पराजित हुआ है, जब आप मुझे भी पराजित करेंगे तभी मण्डन मिश्र पराजित माने जायेंगे, युक्ति के अनुसार बात सही थी। मण्डन मिश्र निर्णायक बने और सरस्वती तथा शंकराचार्य में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ।

इक्कीस वें दिन जब मण्डन मिश्र की पत्नी ने यह भली भांति अनुभव कर लिया कि मेरा पराजित होना निश्चित है तब उसने शंकराचार्य से कहा कि मैं एक

अन्तिम प्रश्न पूछती हूं, और यदि इस प्रश्न का भी उत्तर आपने भली प्रकार से दे दिया तो हम दोनों अपने आपको पराजित अनुभव करेंगे और आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लेंगे।

शंकराचार्य की स्वीकृति प्राप्त होने पर सरस्वती ने प्रश्न किया कि सम्भोग क्या है ? यह कैसे किया जाता है ? और इससे सन्तान का निर्माण किस प्रकार से हो जाता है ?

प्रश्न सुनते ही उसकी गहराई शंकराचार्य समझ गये। यदि वे इसका उत्तर देते हैं तो उनका सन्यास धर्म खण्डित होता है, क्योंकि सन्यासी को सम्भोग का ज्ञान संभव ही नहीं है और जिसका ज्ञान व्यावहारिक रूप में ज्ञात नहीं है, उसका उत्तर देना कैसे संभव है ? अतः संन्यास धर्म की रक्षा के लिए उत्तर देना संभव नहीं था और यदि उत्तर नहीं देते हैं तो पराजित माने जाते हैं, दोनों ही दृष्टियों से वे पराजित होते हैं।

शंकराचार्य ने प्रश्न किया कि क्या इस प्रश्न का उत्तर पढ़े हुए ज्ञान के आधार पर दे सकता हूं या इसका उत्तर तभी आप प्रामाणिक मानेंगी जबकि उत्तर-कर्त्ता इस प्रक्रिया से गुजर चुका हो।

सरस्वती ने उत्तर दिया कि व्यावहारिक ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है, यदि आपने इसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया है तो आप उत्तर देने में स्वतंत्र हैं।

शंकराचार्य जन्म से ही संन्यासी रहे थे अतः उनके जीवन में सम्भोग का व्यावहारिक ज्ञान धर्म और संन्यास के सर्वथा विपरीत था, अतः उन्होंने पराजय स्वीकार करते हुए कहा कि मैं इसका उत्तर छः महीने बाद दूंगा।

इसके बाद शंकराचार्य किसी अज्ञात स्थान पर चले गये। संयोगवश उस शहर के राजा की मृत्यु हो गई, तब शंकराचार्य अपने शरीर को छोड़ राजा के शरीर में प्रवेश कर गये, फलस्वरूप राजा कुछ समय बाद ही पुनः जीवित हो गया, संबंधियों ने राजा को पुनः जीवित देख हर्ष ध्वनि की। राजा के माध्यम से रानियों के साथ जो सम्भोग हुआ, उसका व्यावहारिक ज्ञान शंकराचार्य लेकर पुनः अपनी काया में प्रवेश कर गये, इस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया और जिस शरीर से संन्यास धर्म स्वीकार किया था उसको भी खण्डित नहीं होने दिया।

इसके बाद वे पुनः मण्डन मिश्र की पत्नी को उसके प्रश्न का व्यावहारिक ज्ञान देकर विजय प्राप्त की और उन दोनों पति-पत्नी को शिष्यता प्रदान की, इस प्रकार उन्होंने अपने आपको भारत का शास्त्रार्थ विजेता सिद्ध किया।

मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि यह विद्या हमारे भारत में शंकराचार्य के समय तक रही है पर उसके बाद यह विद्या धीरे-धीरे लुप्त होती गई। मेरे जैसे अधिकांश साधकों को यह विश्वास था कि इस साधना पर भी सम्मेलन में चर्चा होगी और संभवतः इस साधना को व्यावहारिक रूप में देख सकेंगे।

सम्मेलन के आठवें दिन श्रीमाली जी ने इस साधना को सबके सामने व्याव-

हारिक रूप में करके दिखाया। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समय भारत में मात्र चार या छः साधकों को ही इस विधि का ज्ञान है, और इनमें से भी अधिकांश सिद्धाश्रम के स्थायी साधक हैं जो कि वहां से नीचे आते ही नहीं, सैकड़ों साधकों के प्रबल अनुरोध और आग्रह को रखने के उद्देश्य से बड़ी ही अनिच्छा से श्रीमाली जी ने इस साधना को सबके सामने व्यावहारिक रूप में करके दिखाया। यह अनुभव मेरे लिये आश्चर्यजनक था, सुखदायक था और मन संतुष्टिदायक था।

सम्मेलन में इसके अलावा कई साधनाएं सबके सामने स्पष्ट की गई। इन साधनाओं में जो बाधाएं आती हैं उनको भी सबके सामने रखा गया, साथ ही इन बाधाओं का निराकरण किस प्रकार से हो सकता है या क्या कोई अन्य सरल विधि है जिसके माध्यम से इस प्रकार की विधियां प्राप्त की जाएं, इस पर भी विचार-विमर्श हुआ।

सम्मेलन के अन्त में भूर्मुआ बावा के अनुरोध से श्रीमाली जी ने 'कात्यायनी-प्रयोग' करके बताया। यह प्रयोग अत्याधिक जटिल और कठिन माना जाता है। इसके द्वारा एक ही क्षण में कई व्यक्तियों से अलग-अलग रूपों में एक साथ मिलना हो सकता है, अर्थात् जो साधक इस साधना में निष्णात होता है, वह किसी एक निश्चित समय में दस अलग-अलग स्थानों में दस अलग-अलग व्यक्तियों से सशरीर भेंट कर सकता है अर्थात् वह अपने शरीर के कई शरीर बना सकता है। मैंने सुना था कि स्वामी विशुद्धानन्दजी और उड़िया बावा को यह साधना ज्ञात थी, जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में रहे हैं उन्होंने इसका अनुभव भी किया है।

यह विद्या पूर्णतः 'लोप-विद्या' मानी जाती थी और सभी का लगभग ऐसा अनुमान था कि यह विद्या भारत से अब लुप्त हो चुकी है क्योंकि पिछले १०० वर्षों में इस प्रकार की विद्या जानने वाले के बारे में ज्ञात नहीं हो सका था, परन्तु जब इस सम्मेलन में सभापति के द्वारा इस प्रकार की साधना को सफलतापूर्वक सम्पन्न करके दिखाया गया तो पूरी सभा में आश्चर्यमिश्रित हर्ष ध्वनि की गई।

दस दिन का यह सम्मेलन अपने आप में अन्यतम था। जहां तक मेरी धारणा है पिछले पांच हजार वर्षों में भी इस प्रकार का सम्मेलन नहीं हो सका था।

यह सभापति की प्रबन्धदक्षता का एक ज्वलन्त उदाहरण था कि उन्होंने अपने ज्ञान से, अपनी प्रतिभा से, और अपने व्यक्तित्व से इन सभी साधकों को बांधे रखा, अन्यथा विभिन्न साधनाओं से सम्पन्न साधक एक स्थान पर एकत्र हों और परस्पर मतभेद और समस्याएं पैदा न हों यह आश्चर्यजनक बात थी, इसकी ध्वनि भूर्भुआ बावा के समापन भाषण में भी सुनाई दी, उन्होंने कहा कि मैं अत्याधिक परेशान था कि यह सम्मेलन किस प्रकार से सम्पन्न हो सकेगा जब कि सभी साधक एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हैं और सभी साधक एक दूसरे पर हावी होने की प्रक्रिया में रत हैं। इसलिये भी चिन्तित था कि कहीं कोई किसी पर मारक प्रयोग न कर दे और समस्या पैदा न हो जाय, पर इस सम्मेलन का पूर्ण श्रेय साधक श्रीमाली जी की प्रबन्धदक्षता

को है जिनके प्रबन्ध से यह सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका ।

इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि हम एक दूसरे के सम्पर्क में आ सके हैं, एक दूसरे के बारे में भली प्रकार से जान सके हैं और एक-दूसरे के विचारों से, उनकी साधनाओं से उनके ज्ञान और उनकी भावनाओं से परिचित हो सके हैं, यह आदान-प्रदान इस सम्मेलन के द्वारा ही सम्भव हो सका, जो कि अपने आप में अन्यतम उपलब्धि है ।

इसके साथ-ही-साथ हन उन सर्वश्रेष्ठ साधनाओं के सम्पर्क में आ सके हैं, जो लुप्त साधनाएं कही जाती हैं, उन साधनाओं का हमने व्यावहारिक पक्ष इस मंत्र पर देखा और आज हम यह कहने में समर्थ हैं कि हमारी प्राचीन धरोहर आज भी योग्य साधकों के हाथों में सुरक्षित है, आज भी हम उतने ही सम्पन्न हैं जितने कि प्राचीन समय में थे, हम कई वर्षों तक विश्व को ज्ञान देने में समर्थ हैं, हम इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं और हमारे पास जो कुछ भी पूर्वजों का ज्ञान है, वह आज भी सुरक्षित रूप में है ।

श्रीमाली जी ने समापन भाषण में सभी साधकों के प्रति आभार प्रकट किया, जिनकी वजह से यह सम्मेलन पूर्णतः सफल हो सका, विशेष रूप से सिद्धाश्रम से आने वाले साधकों के प्रति उन्होंने विशेष आभार प्रकट किया ।

उन्होंने भाषण के अन्त में चेतावनी भी दी कि हम अपने ही घेरे में आबद्ध न रहें, हमारे पास जो ज्ञान है उस पर सभी का अधिकार है इस ज्ञान को ज्यादा-से-ज्यादा वितरित किया जाए तभी हमारे जीवन की सार्थकता है ।

उन्होंने साधकों का आह्वान किया कि उन्हें अपना जीवन साधना में समर्पित भाव से लगा देना चाहिए, उनको चाहिए कि वे योग्य शिष्यों की खोज करें और उन्हें अपना सम्पूर्ण ज्ञान साधना दें, जिससे कि यह विद्या आगे के जीवन में बनी रह सके और गतिशील बनी रहे ।

उन्होंने उच्चतम साधकों से भी प्रार्थना की कि समय गतिशील है और यदि इसी गति के साथ अपने आपको परिवर्तित नहीं कर सके तो हम सामाजिक धारा से कट जाएंगे और हमारी सारी साधना एक प्रकार से निष्फल हो जाएगी ।

उन्होंने बताया कि प्राचीन काल में जंगलों में जो गुरुकल होते थे उनके संचालक जंगलों में रहते हुए भी समाज से पूरी तरह संबंधित रहते थे, अतः उनके ज्ञान की गंगा समाज में प्रवाहशील रहती थी, परन्तु धीरे-धीरे साधकों ने अपने आपको समाज से परे कर दिया और जंगलों में रहने को ही साधना की पूर्णता मान ली, जबकि यह अनुचित है, क्योंकि इससे हम समाज से कट गए हैं, समाज विश्वास नहीं करता कि साधना अपने आप में इतनी उच्च होती है जो कि आज के इस वैज्ञानिक युग में भी अपनी श्रेष्ठता और उच्चता सिद्ध कर सकती है । जिन स्थानों पर विज्ञान निष्फल है निरूपाय है, पराजित है वहां पर साधना सफलता दे सकती है, इसीलिए विज्ञान से कई गुना ज्यादा बढ़ चढ़ कर यह साधना का महत्त्व है ।

हमको चाहिए कि हम इस प्रकार के साधक तैयार करें जो समाज से जुड़े हुए हों। उन साधकों को हम अपने ज्ञान की गंगा से आप्लावित करें जिससे कि उसकी सुखद फुहार से जनमानस आनन्द प्राप्त कर सकें। यदि रामकृष्ण अपने शिष्य विवेकानन्द को तैयार नहीं करता तो संसार एक बहुत बड़े ज्ञान से वंचित रह जाता, अतः आज इस प्रकार के कई विवेकानन्दों की जरूरत है, जो अपने आपको समाज से जोड़ सकें।

अन्त में उन्होंने कहा, मेरी यह धारणा है कि आपमें से अधिकांश मेरी भावनाओं को समझेंगे और आपके पास जो साधनाएं है जो सिद्धियां हैं, उन्हें जनमानस से जोड़ेंगे, जिससे कि समाज इससे लाभ उठा सके।

श्रीमाली जी ने कहा कि मेरा द्वार प्रत्येक साधक के लिए खुला है फिर वह चाहे संन्यासी हों, या गृहस्थी, मेरा प्रत्येक क्षण उनके लिए समर्पित है। वे जिस रूप में भी मुझसे साधना का ज्ञान जानना चाहें, मैं उनके लिए तैयार हूं। मैं चाहता हूं कि इस प्रकार जीवट वाले युवक आगे आयें, जिनके हृदय में कुछ सीखने की प्रबल चाह हो, जिनकी आंखों में लपट हो, जिनके हृदय में कुछ कर गुजरने की क्षमता हो, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अपने आपको सन्तुलित और संयमित रख सकें, उनका स्वागत है। उनके लिए मेरा प्रत्येक क्षण और यह जीवन समर्पित है।

समापन दिवस अपने आप में ऐतिहासिक था, जबकि प्रत्येक साधक एक-दूसरे से मिल रहा था, एक-दूसरे को ज्ञान का आदान-प्रदान कर रहा था। पहले दिन जो फूट या अहं का दिग्दर्शन हुआ था वह समाप्त हो गया था और इन १० दिनों में सभी साधक एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ चुके थे। प्रत्येक की आंखों में आंसू छलछला रहे थे, प्रत्येक की आंखें नम थीं और प्रत्येक बिछुड़ते समय ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे उनके शरीर से प्राण बिछुड़ रहे हों।

इन दस दिनों में श्रीमाली जी ने जितना अथक श्रम किया, वह मेरे लिए आश्चर्यचकित था। मैंने उन्हें एक क्षण भी सोते हुए नहीं देखा, चौबीसों घण्टे निरन्तर कार्य में व्यस्त होते हुए भी उनके चेहरे पर थकावट की कोई रेखा नहीं देखी, उनका चेहरा प्रत्येक क्षण प्रफुल्लित था, उनकी आंखें हर क्षण मार्ग दर्शन देती थी, उनके मन में ऐसा कोई अहं नहीं था कि छोटे साधक से बातचीत न की जाए या व्यस्तता का लबादा ओढ़े रहे, जो भी उनसे मिलता वह अपने आपको धन्य समझता और अपने मन में पूर्णतः तुष्टि अनुभव करता।

अन्तिम दिन सभी साधक, योगी, तांत्रिक, हठ योगी, अघोरी, मांत्रिक, और भैरवी—साधिकाएं श्रीमाली जी से मिलने के लिए व्यग्र थीं। सभी उनसे मिल रहे थे और सभी उनसे विदा लेते समय सिसक रहे थे, ऐसा लग रहा था जैसे वे अपने प्राणो को छोड़ रहे हों। सबसे ज्यादा आंसू कपाली बाबा की आंखों में थे, पश्चात्ताप से उनका सारा शरीर थरथरा रहा था और जब श्रीमाली जी विदा हुए तो वह बृद्ध-साधक भीड़ को चीरता हुआ आकर श्रीमाली जी के चरणों में गिर पड़ा, उसकी आंखों से

आंसू की अजश्र धारा बह रही थी और सारा शरीर थरथरा रहा था। श्रीमाली जी ने उसे उठाकर अपने सीने से लगाया, उनकी आंखों में भी आंसू छलछला आये थे।

यह सारा दृश्य अपने आप में अद्भुत था, इस प्रकार के दृश्य को शब्दों में कैद किया ही नहीं जा सकता। वास्तव में ही एक ऐसा वातावरण बन गया था कि कोई आंख बिना भीगे न रही थी। कोई भी चेहरा बिना गमगीन हुए नहीं रहा था, सभी अश्रुपूरित थे, सभी सिसक रहे थे, सभी के चेहरे उदास थे और सभी ऐसा अनुभव कर रहे थे जैसे वे अपने प्राणों को देह से जाते हुए देख रहे हों।

यह मेरा सौभाग्य था कि श्रीमाली जी ने मुझे साथ चलने की स्वीकृति दे दी थी, हम उन बिलखते हुए साधकों से आगे बढ़े परन्तु जितना ही हम आगे बढ़ते उतने ही साधक आ-आकर वापिस घेर लेते। आगे बढ़ना दुष्कर-सा हो गया था।

मैं सोच रहा था साधकों के बारे में तो यह प्रचलित है कि वे बड़े निर्मम होते हैं, असामाजिक होते हैं, उनके हृदय पर कोई प्रभाव ही नहीं होता, उनका हृदय मांस-पिण्ड न रह कर पत्थर हो जाता है, परन्तु आज मेरी धारणा खण्डित हो रही थी। मैं उन साधकों को सिसकते हुए, बिलखते हुए, रोते हुए और सिसकारियां भरते हुए देख रहा था।

राक्षस की तरह विशालकाय त्रिजटा अघोरी बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था, भूर्भुआ बाबा की आंखों में आंसू छलछला रहे थे, देवहुर बाबा आसुओं के वेग को रोक नहीं पा रहे थे और पूरा वातावरण ऐसा हो गया था कि सभी श्रीमाली जी से बिछुड़ते हुए अपने आपको निरूपाय अनुभव कर रहे थे।

मैंने पहली बार श्रीमाली जी की आंखों में आंसू देखे। वे स्वयं गमगीन थे, परन्तु फिर भी उनकी आंखों में सान्त्वना थी, स्नेह था, अपनत्व और प्रेम था, और इसी भीगे हुए वातावरण से श्रीमाली जी आगे बढ़ गए।

श्रीमाली जी के साथ दो शिष्य और थे जो सम्मेलन से ही उनके साथ हो गए थे। ये दोनों ही शिष्य उच्च कोटि की साधना से सम्पन्न थे और किसी समय श्रीमाली जी के चरणों में बैठकर उन्होंने उच्च मांत्रिक और तांत्रिक साधनाएं सम्पन्न की थीं, उनके साथ तीसरा मैं था जिन्हें कुछ दिन साथ रहने की स्वीकृति मिली थी। इस यात्रा में मैंने अनुभव किया कि महापुरुष के साथ यात्रा करने में यात्रा का अर्थ ही बदल जाता है, जो यात्रा हमें नीरस और निष्फल लगती है वही यात्रा किसी साधक के सानिध्य में प्राणवन्त और जीवन्त हो जाती है, यह यात्रा मेरे लिए अन्यतम थीं, अद्भुत थी।

मार्ग में कई स्थानों पर श्रीमाली जी रुके थे और संभवतः ग्यारहवें रोज वे जोधपुर पहुंचे थे।

जोधपुर में उनके साथ मुझे लगभग तीन महीने रहने का सौभाग्य मिला। जोधपुर आकर मैंने उनके एक अलग रूप में ही दर्शन किए। यहां आकर वे पुनः एक सामान्य गृहस्थ व्यक्ति बन गए थे और ऐसा प्रतीत ही नहीं हो रहा था कि यह

वही व्यक्तित्व है जिसने विश्व के सर्वश्रेष्ठ साधकों के सम्मेलन का सभापतित्व किया था ।

जिन्होंने श्रीमाली जी का वह रूप देखा है, उन्हें इस रूप में श्रीमालीजी को देख कर विश्वास ही नहीं होगा कि यह व्यक्ति साधना के क्षेत्र में सर्वोपरि है, विशिष्ट सिद्धियों का स्वामी है । जिसने श्रीमाली जी के गृहस्थ रूप को देखा है, वह उस रूप की कल्पना ही नहीं कर सकता, इन दोनों ही रूमों में जमीन आसमान का अन्तर है और दोनों ही रूप अपने आप में सर्वथा अलग हैं ।

गृहस्थ रूप में श्रीमाली जी पूर्णतः सामान्य गृहस्थ के रूप में मुझे दिखाई दिए जो प्रसन्नता की बात सुनकर खिलखिला पड़ते हैं, किसी के कष्ट और दुःख की बात सुनकर उदास हो जाते हैं, वे सामान्य आगन्तुक को भी उतना ही महत्त्व देते हैं जितना एक विशिष्टि व्यक्ति को दिया जाता है । उनके साथ बिना किसी औपचारिकता के बैठ जाते हैं, उनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, उनकी समस्याओं का समाधान करते हैं और वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं जैसे पूर्णतः सामान्य गृहस्थ व्यक्ति हों ।

मैं उनके इस रूप को देख कर आश्चर्यचकित रह गया था और आज भी आश्चर्यचकित हूं कि अगर इतनी सिद्धियों की अपेक्षा एक आध सिद्धि भी किसी के पास होती तो वह जमीन पर पांव तक नहीं रखता, घमण्ड से वह साधारण जन की ओर देखता तक नहीं और अपने अहं में चौबीसों घण्टे डूबा रहता, जबकि इसके सर्वथा विपरीत श्रीमाली जी अत्यन्त साधारण रूप में सबके सामने प्रस्तुत होते हैं, उनसे बातचीत करते हैं और जहां तक हो सकता है, अपने विचारों से उन्हें सन्तुष्ट करते हैं। मेरा ऐसा अनुभव है कि उनके द्वार से कभी कोई खाली नहीं लौटता, जो भी व्यक्ति जिस भावना से आता है, उसी भावना से सन्तुष्ट होकर लौटता है ।

मैंने श्रीमाली जी के कई रूप देखे हैं, उनका ज्योतिष रूप अलग है, साठ से ज्यादा ग्रन्थों के वे रचयिता हैं और पूरे भारत में ज्योतिष को लोकप्रिय और जन-साधारण के लिए उपलब्ध बनाने में उनका सार्वधिक योगदान रहा है । आज भी वे निरन्तर ज्योतिष से संबंधित शोध करते रहते हैं और अपने ज्ञान को पुस्तकों के माध्यम से समाज को भेंट करते रहते हैं ।

मुझे लगभग तीन महीने श्रीमाली जी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैं तो अपना पूरा जीवन उनके चरणों में बिता देना चाहता था । यह मेरे जीवन का सौभाग्य ही होता कि मेरा आगे का पूरा जीवन उनके चरणों में बीतता परन्तु कुछ विशेष कारणों से और उनकी आज्ञा से मुझे नए कार्य क्षेत्र को सम्भालना पड़ा । पर आज भी मैं मानसिक रूप से श्रीमाली जी से अपने आपको जुड़ा हुआ अनुभव करता हूं ।

मैं उन तीन महीनों का जब स्मरण करता हूं तो कई घटनाएं मेरी आंखों के सामने घूम जाती हैं, एक प्रकार से देखा जाए तो उनके साथ रह कर जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

मैंने उन्हें निरन्तर श्रम करते हुए देखा है । यदि इस आयु का कोई दूसरा

व्यक्ति होता तो निश्चय ही वह थक कर चूर हो जाता। परन्तु मैंने उन्हें बीस-बीस घण्टे निरन्तर श्रम करते हुए देखा है, और जब तक मैं वहां रहा हूं उनको इसी रूप में काम करते देखा है।

प्रातः चार बजे ही उनका शैया-त्याग हो जाता है और लगभग पांच बजे वे पूजा कक्ष में चले जाते हैं, सात बजे से ग्यारह बजे तक वे आगन्तुकों से घिरे रहते हैं, इन आगन्तुकों में साधारण जन से लेकर उच्च कोटि के नेता और अभिनेता होते हैं, वे न तो किसी से प्रभावित होते हैं और न किसी के प्रति उनके मन में दुर्भावना होती है, सभी को समान रूप से आतिथ्य देना और उनकी समस्याओं का समाधान करना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझ रखा है, जहां तक मैं समझता हूं उनके द्वार से आज तक कोई खाली हाथ नहीं लौटा। लोग अपनी समस्याओं से ग्रस्त होकर उनके पास जाते हैं और प्रसन्नता के साथ हँसते हुए वापिस लौटते हैं, उस समय उनके चेहरे पर सन्तोष की पूर्ण छाप होती है, क्योंकि उनको जो समाधान मिलता है वह अपने आप में पूर्ण होता है।

ग्यारह बजे से दो बजे तक वे भारतीय ज्योतिष अध्ययन अनुसंधान केन्द्र का कार्य देखते हैं, इस संबंध में निर्देश देते हैं तथा व्यक्तिगत पत्रों के जवाब मिजवाते हैं, इसके बाद उनकी मध्यान्ह-संध्या होती है फिर भोजन होता है, इस समय उनके घर में जो मेहमान होते हैं उनसे बातचीत होती है और उनकी समस्या का समाधान इसी समय होता है।

इसके बाद वे मध्यान्ह साधना के लिए भूगर्भ गृह में चले जाते हैं, शाम को पांच बजे से आठ बजे तक पुनः आगन्तुकों से भेंट करते हैं और उनकी इच्छाओं की पूर्ति इसी समय होती है, संध्या में अधिकतर बाहर से आने वाले उनके शिष्य, सन्यासी साधु और साधक होते हैं, जो उनसे प्रेरणा ग्रहण करने आते हैं या उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यह पूरा समय उनका प्रेरणा रूप ही रहता है, उनके द्वार प्रत्येक साधक, साधु और संन्यासी के लिए खुले हैं, बिना हिचकिचाहट के साधक अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखते हैं और बिना हिचकिचाहट के उनको समाधान मिलता है, इस समय उनका गुरु का रूप न होकर एक मित्र का सा रूप बन जाता है।

आठ बजे से ग्यारह बजे तक वे दिन भर की डाक देखते हैं जो कि उनकी व्यक्तिगत डाक होती है, यों तो केन्द्र में नित्य सैंकड़ों पत्र आते हैं परन्तु नीति संबंधी पत्र या उनके व्यक्तिगत पत्र इसी समय वे पढ़ते हैं और सचिव को निर्देश देते रहते हैं।

साढ़े ग्यारह बजे के लगभग पुनः भोजन होता है और इस समय घर के सारे सदस्य और आगन्तुक मेहमान एक स्थान पर बैठ कर भोजन करते हैं, इस समय किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता है, वास्तव में ही इस समय का वातावरण और माहौल एक अलग-सा हो जाता है, क्योंकि इस समय घर के सदस्य होते हैं और भोजन में केवल वे आगन्तुक मेहमान होते हैं जो कि उनके परिवार से संबंधित होते हैं या उनके प्रिय अथवा शिष्य या कोई महात्मा आदि होते हैं, इस समय का वर्णन अपने आपमें

अन्यतम है, यह सौभाग्य वहुत ही कम लोगों को प्राप्त होता है और जिसने भी इस वातावरण में इनके साथ भोजन किया होगा वह कभी भी उन क्षणों को भुला नहीं पायेगा।

भोजन के बाद वे सीधे साधना कक्ष में चले जाते हैं और अपनी साधना में रत हो जाते हैं, सुवह चार बजे उनके मुंह से निसृत वेद ध्वनि पुनः सुनाई देती है जब वे उठ जाते हैं, इस अवधि में अर्थात् साढ़े ग्यारह से चार बजे तक उन्हें साधना कक्ष में ही देखा जा सकता है, पता नहीं वे कब सोते हैं, कब नींद लेते हैं, कब वापस उठ जाते हैं इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, वास्तव में ही योगियों की माया योगी ही जान सकते हैं।

परन्तु इतने श्रेष्ठ योगी होते हुए भी वे घर में अत्यन्त सामान्य गृहस्थ दिखाई देते हैं, धोती और कुरता उनका परिधान है, वे हर क्षण व्यस्त रहते हैं दिन भर सैंकड़ों लोगों से मिलना, उनका आतिथ्य सत्कार करना, उनका मार्गदर्शन करना, ज्योतिष से संबंधित कार्य करना, अपनी साधना में और पूजा में रत रहना, तथा शिष्यों को बराबर मार्गदर्शन देते रहना आदि कार्यों के साथ वे अपने गृहस्थ स्वरूप को भी बराबर बनाए रखते हैं। उनको गृहस्थ रूप में देखकर विश्वास ही नहीं किया जा सकता कि यह व्यक्ति तंत्र और मंत्र के क्षेत्र में अद्वितीय है इस व्यक्तित्व के पास जो सिद्धियां हैं वे अन्यतम हैं या यह भारत के श्रेष्ठतम मांत्रिकों और तांत्रिकों में से एक है।

उनकी वाणी में पूर्णतः नम्रता रहती है। मैंने तीन महीने की अवधि में एक बार भी उन्हें उदास या चिन्तित नहीं देखा, हर समय उनका चेहरा प्रफुल्लित रहता है और सामने बाले व्यक्ति को भी अपने आनन्द में भागीदार वनाए रखता है, सामने वाला व्यक्ति अपनी परेशानियों को बढ़ा-चढ़ा कर कहता है पर श्रीमाली जी ऊबते नहीं, अपितु धैर्यपूर्वक उसकी बात सुनते हैं, सुनने के वाद वे अपनी सामर्थ्य से जो कुछ भी सहायता कर सकते हैं करते हैं, साथ ही उसे मार्गदर्शन भी देते हैं जिससे कि उसकी समस्या का निराकरण हो सके और वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सके।

इसके अतिरिक्त मैंने उन्हें इन तीन महीनों में एक क्षण के लिए भी विश्राम करते हुए नहीं देखा। हर समय वे अपने रचनात्मक कार्यों में संलग्न रहते हैं, उनके जीवन के प्रत्येक क्षण का महत्त्व है और वे उस महत्त्व को भली भांति पहिचानते हैं।

मैंने सुना था कि उनके गुरु स्वामी सच्चिदानन्द जी ने जब उन्हें पुनः गृहस्थ जीवन में भेजा तो उन्होंने आग्रह किया कि मैं पुनः गृहस्थ जीवन में जाने का इच्छुक नहीं हूं, मेरा विवाह हो चुका है पर मैं अपनी धर्मपत्नी के स्वभाव से परिचित हूं और वह भी मेरी ही तरह साधना पथ अपना सकेगी, अतः गृहस्थ जीवन में जाने से कोई लाभ नहीं है, मैं आपके ही चरणों में बैठकर जीवन के उन रहस्यों को खोजना चाहता हूं जो कि अगम्य और अप्रत्यक्ष है।

परन्तु सच्चिदानन्द जी के सामने एक अलग ध्येय था, उनका चिन्तन यह था

कि इस साधना को और ज्योतिष को पुनः विश्व में स्थापित करना है और भारत की खोई हुई इस सम्पदा से पुनः भारतीय जनजीवन को अवगत कराना है। अतः इसी कार्य की पूर्णता के लिए उनका आग्रह वापिस उन्हें गृहस्थ जीवन में भेजना था।

परन्तु उन्होंने एक अवधि दे दी थी कि इस अवधि तक ही तुम्हें गृहस्थ जीवन में रहना है और तब तक जो कार्य तुम्हें सौंपा गया है, उसे पूर्णता प्रदान करना है, इसके बाद तुम्हें पुनः गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यास जीवन धारण कर लेना है और शेष जीवन 'सिद्धाश्रम' में ही व्यतीत करना है।

सिद्धाश्रम एक अगम्य और दुर्गम स्थान है जो कि हिमालय में कहीं अत्यन्त ऊंचे स्थान पर स्थित है जहां पर सामान्य मानव का पहुंचना संभव नहीं है, सिद्धाश्रम के बारे में कई भारतीय योगियों ने विवरण दिया है और अंग्रेज लेखकों ने भी इस बारे में काफी कुछ लिखा है, तिब्बत के लामा ग्रन्थों में भी इस बारे में काफी कुछ पढ़ने को मिलता है।

कहा जाता है कि साधना की उच्चतम स्थिति आने के बाद ही वह साधक सिद्धाश्रम में जाने के लिये योग्य माना जाता है जिसका सहस्रार कमल खुल चुका होता है और जो तंत्र या मंत्र अथवा अध्यात्म के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थिति को पहुंच चुका होता है, इसके साथ ही कुण्डलिनी जागरण का वह पूर्ण अध्येता होता है, इसके बाद उसके संबंध में ज्ञात किया जाता है और फिर उसे सिद्धाश्रम में प्रवेश की अनुमति मिलती है। बहुत ही कम साधक ऐसे होते हैं जो सिद्धाश्रम में जाने के बाद पुनः जनजीवन में आ पाते हैं।

सिद्धाश्रम में अत्यन्त उच्चकोटि के योगी और साधक अपनी साधना में रत हैं और यह सुना गया है कि कुछ योगी तो २००० वर्षों से निरन्तर साधना में रत हैं, कुछ योगियों की उम्र ५००० वर्ष से भी ज्यादा बताई जाती है।

उन योगियों के लिये भूत, भविष्य कुछ भी अगम्य नहीं, वे आकाश गमन प्रक्रिया के सिद्धहस्त साधक होते हैं और मन के वेग से वे किसी भी स्थान पर आ-जा सकते हैं, उच्च कोटि की साधना उनके जीवन का अभिष्ट होती है, परन्तु इस सिद्धाश्रम में प्रवेश की कसौटी अत्यन्त कठोर और कठिन होती है। वह साधक निश्चय ही संसार के सौभाग्यशाली साधकों में गिना जाता है, जिनको सिद्धाश्रम में प्रवेश की अनुमति मिल जाती है।

ऐसे तो विरले ही साधक होते हैं जिन्हें सिद्धाश्रम में जाकर पुनः जनजीवन में आने की अनुमति मिलती है। त्रिजटा अघोरी और भूर्भुआ बाबा से मुझे ज्ञात हुआ था कि श्रीमाली कई बार वहां जा चुके हैं और अब भी रात्रिकालीन साधना में वे वहां जाते रहते हैं।

मैंने जब यह जिज्ञासा श्रीमाली जी के सामने रखी तो वे हंसकर टाल गये। उनकी यह प्रवृत्ति है कि जिस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते उस प्रश्न को सुनकर सहज में ही टाल देते हैं और बातचीत को किसी और मोड़ पर बदल देते हैं, पर

जिन्होंने श्रीमाली जी के प्रातःकालीन दर्शन किये हों तो वह उस समय उनके चेहरे की दिव्यता देखकर प्रभावित हो जाते हैं और मन यह मानने के लिये बाध्य होता है कि निश्चय ही श्रीमाली जी रात्रि साधना में किसी ऐसे स्थान पर सशरीर रूप से अवश्य जाते हैं जो कि दिव्य होता है और उसी दिव्यता की छाप उनके प्रातःकालीन क्षणों में देखी जा सकती है।

एक बार मैंने उनसे यह प्रश्न किया था कि आप अद्वितीय साधनाओं के सफल साधक हैं फिर भी आप अत्यन्त सामान्य तरीके से रहते हैं, साधारण गृहस्थी के रूप में आचरण और व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। आपके इस रूप को देखकर आभास ही नहीं होता कि आप इतनी सिद्धियों के स्वामी हैं, इससे कई बार साधारण आगन्तुक भ्रम में पड़ जाता है वह पुस्तकों के माध्यम से आपके बारे में जब पढ़ता है तो उसके मानस में एक अलग ही बिम्ब उभरता है, वह बिम्ब एक असाधारण व्यक्ति का होता है—लम्बा चौड़ा शरीर, गौर वर्ण, लम्बी सफेद दाढ़ी, उम्र लगभग ८०-९० के आस-पास, और एक अद्वितीय व्यक्तित्व, इस बिम्ब को लेकर साधारण मानव आपसे मिलने के लिये इतनी दूर की यात्रा करके आता है तो वह मन-ही-मन आशंकित रहता है कि श्रीमालीजी के दर्शन होंगे भी या नहीं ? उनसे मिलना संभव हो सकेगा या नहीं ? वे बातचीत करेंगे भी या नहीं ? या कई दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी तब जाकर उनके दर्शन हो सकेंगे ? आदि कई कल्पनाएं उनके मानस में इस प्रकार की रहती हैं।

परन्तु जब वह आपके द्वार पर आता है, तो उसे भीड़-भाड़ दिखाई नहीं देती, आडम्बर और छल अनुभव नहीं होता, कोई नौकर द्वार नहीं खोलता, दरवाजे पर कोई पहरेदार नहीं मिलता और सीधे आपसे ही भेंट हो जाती है, द्वार आप स्वयं खोलते हैं और आपका व्यक्तित्व एक सामान्य गृहस्थ व्यक्ति के समान दिखाई देता है, तब वह आगन्तुक हतप्रभ हो जाता है, उसका बिम्ब खण्ड-खण्ड हो जाता है, वह सहज ही विश्वास नहीं कर पाता कि जो कल्पना श्रीमाली जी के बारे में उसके मानस में थी उसके स्थान पर जो साधारण व्यक्ति उसके सामने खड़ा है, वही आज के युग का सर्व-श्रेष्ठ साधक और ज्योतिर्विद श्रीमाली हैं।

प्रश्न सुनकर श्रीमाली जी जोरों से हंस पड़े, उन्होंने कहा तो क्या मैं आडम्बर से रहना प्रारंभ कर दूं ? अपने चारों ओर एक ऐसी दीवार खड़ी कर दूं जो कि मेरे और जनमानस के बीच में हो। मैं ऐसा नहीं कर सकता, लोगों का बिम्ब यदि खण्डित होता है तो होने दिया जाय, मेरे स्वरूप या मेरी आकृति से व्यक्ति प्रभावित होता है या नहीं इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, जो व्यक्ति मेरे कपड़ों और मेरे शरीर को देखने के लिये आयेगा उसको अवश्य ही निराशा मिल सकती है परन्तु जो मूल रूप से श्रीमाली जी से मिलने के लिये आयेगा वह मेरे कपड़ों की तरफ नहीं झांकेगा अपितु वह मेरे मानस से साक्षात्कार करेगा। तब अवश्य ही उसको वह सब कुछ प्राप्त हो सकेगा जिसके लिये वह आया है।

एक अन्य चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि मैं चमत्कार में विश्वास नहीं

करता। चमत्कार वे बताते हैं जो अ .र से खोखले होते हैं जो समाज में अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं जो इस प्रकार का चमत्कार दिखाकर धनवान बनना चाहते हैं या अपना सम्मान चाहते हैं क्योंकि उनके पास चमत्कार के अलावा ठोस रूप में और कुछ नहीं होता, जो घड़ा भ' हुआ होता है, वह छलकता नहीं, वही घड़ा छलकता है, जो पूरी तरह से भरा हुआ नहीं होता।

मुझे न तो सम्मान की भूख है, और न मैं अपना सम्मान चाहता हूं, मैं मानव हूं और केवल मानव बना रहना चाहता हूं। न मुझे धन सम्पदा की लालसा है, और न मैं धनवान कहलाना चाहता हूं, इसलिये न तो मैं चमत्कार दिखाता हूं और न चमत्कार दिखाना पसन्द करता हूं।

यह अवश्य है कि लोग जब मेरे सामने आते हैं तो उनके दिमाग में कल्पना सृजित कुछ और बिम्ब रहता होगा और उसकी हार्दिक इच्छा यही रहती होगी कि श्रीमाली जी के सामने जाते ही कुछ अद्‌भुत अलौकिक चमत्कार देखने को मिलेगा, परन्तु बातचीत के दौरान जब उन्हें ऐसा कुछ भी चमत्कार देखने को नहीं मिलता तो वे अवश्य ही निराश हो जाते होंगे। इतना होने पर भी मैं अपने असूलों से हटना नहीं चाहता। मेरे जीवन का यह निश्चित ध्येय है कि मुझे न तो चमत्कार दिखाना है और न मैं इस प्रकार के कार्य को पसन्द करता हूं फिर भले ही सामने वाला व्यक्ति मुझमें आस्था रखे या न रखे, मुझ पर विश्वास करे या न करे, मैं इस बात की कतई चिन्ता नहीं करता।

उनका जीवन दर्शन अपने आप में विशिष्ट है, और मैं समझता हूं कि इसी विशिष्टता के कारण वे आज उस स्तर तक पहुंच सके हैं जो कि अपने आप में अन्यतम है, यदि वे प्रारंभ से ही चमत्कार दिखाने के फेर में पड़ जाते तो उनका अधिकांश समय इसी प्रकार के कार्यों में व्यतीत हो जाता और जो कुछ वे ठोस रूप में कार्य कर सके हैं वे नहीं कर पाते, आज उन्होंने साधना के क्षेत्र में जो उपलब्धियां प्राप्त की हैं; वे तभी संभव हो सकी हैं जब उन्होंने सस्ती लोकप्रियता नहीं चाही और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को ठोस कार्य में परिणत करने में बिश्वास रखा।

यह अवश्य है कि यदि वे चमत्कार दिखाते तो आज बहुत अधिक सम्पन्न और धनी हो सकते थे, उनके पीछे हजारों शिष्यों की फौज हो सकती थी और अखबारों के माध्यम से बिज्ञापित कर अपने आपको दूसरा भगवान सिद्ध कर सकते थे, परन्तु यह उनके जीवन की मान्यता नहीं है। वे इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत हैं, उनका जीवन दर्शन मानव बने रहना है और मानवता को ही उन्होंने अपने जीवन में सबसे अधिक स्थान दिया है।

सामान्यतः, सहजता, सुगमता, सरलता आदि मानवता के गुण हैं और इन गुणों से श्रीमाली जी पूर्ण हैं, उनके द्वार पर कोई भी व्यक्ति किसी भी समय आ सकता है और अपनी जिज्ञासा को शान्त कर सकता है, उनके मन में न तो किसी के प्रति प्रशंसा का भाव है, और न नफरत, वे विरोधी को भी उतने ही प्रेम के साथ अपने

साथ बिठाकर वात करते हैं, जितनी अपने परम प्रिय शिष्य से करते हैं, यह उनकी महानता है, और मैं जितना ही गहराई में जाता हूं उतना ही उनके प्रति मेरा सिर नमन हो जाता है ।

उनके सानिध्य में कई शिष्य साधना रत हैं, सुना है कि जोधपुर के पास किसी पहाड़ी में कई गुफाएं बनी हुई हैं जो कि श्रीमाली जी की व्यक्तिगत हैं और उन गुफाओं में साधक, साधना रत हैं, उन साधकों में कुछ साधक तो अत्यन्त उच्च साधना से भी सम्पन्न हो सके हैं और आज उनका नाम श्रेष्ठ साधकों में गिना जाने लगा है, मैंने एक दो बार उन गुफाओं को खोजने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु मैं उसमें सफल नहीं हो सका, साथ ही मैं यह काम चोरी से कर रहा था क्योंकि श्रीमाली जी से यदि मैं इस प्रकार की अनुमति लेता भी, तो वे संभवतः अनुमति नहीं देते, उन गुफाओं में वही साधक प्रवेश करने का अधिकारी होता है जो श्रीमाली जी का शिष्य होता है और शिष्यता के मापदण्ड पर खरा उतरता है ।

जहां तक शिष्यता का प्रश्न है, श्रीमाली जी इस मामले में अत्यन्त कठोर हैं, वे तो स्पष्ट कहते हैं कि मुझे शिष्यों की फौज खड़ी नहीं करनी है, मैं चुनकर शिष्य बनाता हूं और शिष्य बनाने से पूर्व उनकी कड़ी परीक्षा लेता हूं । हल्का-फुल्का व्यक्ति सहज में ही उड़ जाता है, आधे मन का व्यक्ति महीने दो महीने में भाग खड़ा होता है, कुछ ही ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं जो उनकी कसौटी पर खरे उतरते हैं, और जो शिष्य उनकी कसौटी पर खरा उतर जाता है वह अपने आप में अद्वितीय हो जाता है क्योंकि उसके आगे के सारे रास्ते खुल जाते हैं और वह अपने पथ पर तीव्रता से बढ़ने में सक्षम हो जाता है ।

मैंने इन तीन महीनों में देखा कि बाहर से जितने व्यक्ति मिलने के लिए आते हैं उनमें से कई व्यक्ति या नवयुवक उनके शिष्य बनने के लिए आते हैं, उनके मन में एक ही भाव होता है कि उसे श्रीमाली जी तुरन्त शिष्य बना लेंगे और कुछ ही दिनों में वह सिद्धियों का स्वामी हो सकेगा । आते ही उनके मुंह से यही भाव निकलता है कि मैं तो पिछले पांच या सात या दस वर्षों से मन-ही-मन आपका शिष्य रहा हूं और एकलव्य की तरह आपको गुरु मानकर साधना के लिए प्रयत्न करता हूं, परन्तु मुझे सफलता नहीं मिल पाई है इसीलिये आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूं ।

श्रीमाली जी उसकी बात सुनकर हंस पड़ते हैं और साधना के बारे में कुछ ऐसा डरावना माहौल उसके सामने उपस्थित करते हैं कि वह अज्ञात भय से घबरा जाता है, साधना का जो भूत उसके सिर पर होता है, वह उतर जाता है और अपने घर के लिए प्रस्थान कर लेता है । इस प्रकार के नवयुवकों को वे एक ही नजर में परख लेते हैं कि यह युवक ज्यादा समय तक संघर्ष नहीं कर पायेगा, यह केवल दिवा-स्वप्न लेकर आया है, अतः उसे समझा-बुझाकर वापस घर भेज देते हैं और उसे यही सलाह दी जाती है कि तुम दो या तीन वर्ष बाद वापस आना । यदि उस समय भी

तुम्हारे मन में साधना की आग सुलगती हुई देखी तो मैं अवश्य ही तुम्हें इस पथ पर बढ़ा दूंगा।

कुछ ही नवयुवक या साधक जीवट वाले होते हैं जो हर प्रकार की परीक्षा और कठिनाई झेलने के लिए तैयार होते हैं। उनकी आंखों में एक विशेष प्रकार की चमक होती है, उनके हृदय में एक कठोर और दृढ़ निश्चय होता है और वे किसी भी प्रकार की बाधाओं का सामना करने के लिए तैयार दिखाई देते हैं। ऐसे साधकों को देखते ही श्रीमाली जी पहचान लेते हैं कि यह हीरा बन सकता है अभी इस पर काफी गर्द जमी हई है, यदि यह गर्द दूर की गई और पालिश की गई तो आगे चल-कर यह अमूल्य हीरा बन सकता है।

पर इतना होते ही उसको शिष्य नहीं बना लिया जाता, अपितु उसे घर के काम-काज के लिए रख लिया जाता है, यदि वह युवक होता है, तो उसे यह आज्ञा होती है कि वह अपने माता-पिता की स्वीकृति लेकर आवे।

इसके बाद उसे आज्ञा होती है कि तुम यहीं पर कहीं ठहरने का प्रबन्ध करो और कुछ ऐसा भी प्रबन्ध करो जिससे कि तुम्हारे भोजन का निर्वाह हो सके, इसके बाद जो समय बचे वह समय मेरे साथ व्यतीत कर सकते हो, यदि तुम बिना किसी से याचना किए इस शहर में रहने और अपने भोजन की व्यवस्था कर लोगे तो आगे रास्ता तुम्हें मिल जाएगा।

बहुत ही कम ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं जिनको श्रीमाली जी के घर में रहने का सौभाग्य मिलता है, पर उसे पहले ही दिन काफी बढ़ा-चढ़ा कर परेशानियों और कष्टों का जिक्र किया जाता है कि यदि तुझे मेरे घर में रहना है तो घर का बहुत सा काम करना होगा और कभी-कभी तो बीस-बीस घण्टे भी काम करना पड़ेगा, इस प्रकार के कामों में घर का फूस निकालने से लेकर बाथरूम साफ करने तक का काम भी हो सकता है, इस प्रकार के कामों में थकावट या निराशा मैं नहीं देखना चाहूंगा। सालभर तक न तो मैं तुम्हें किसी प्रकार की साधना सिखाऊंगा और न किसी प्रकार की धनराशि काम के बदले में दे सकूंगा।

पर, जो जीवट के धनी होते हैं, वे इस प्रकार की शर्तों से घबरात नहीं हैं अपितु सहर्ष इस प्रकार की चुनौती स्वीकार कर लेते हैं, जान-बूझकर पण्डितजी उनकी परीक्षा लेने के लिए प्रारम्भ में जरूरत से ज्यादा काम सौंप देते हैं या जान-बूझकर बातचीत नहीं करते या जान-बूझकर जरूरत से ज्यादा उसे फटकार देते हैं जिससे कि वह यदि कमजोर होता है, तो भाग खड़ा होता है। परन्तु मैंने देखा कि जो एक बार उनके घर में प्रवेश पा लेता है, वह न घबराता है, न परेशान होता है और न किसी प्रकार की तकलीफ उसके सामने आती है।

क्योंकि उस घर में मात्र पण्डित जी ही नहीं हैं, अपितु एक वात्सल्यमयी मां भी है, जो कि पण्डितजी की पत्नी हैं, उनका स्वरूप पूर्ण गृहस्थ रूप है। सुबह चार बजे से रात बारह बजे तक वे निरन्तर घर के कार्यों में लगी रहती हैं, घर में मेह-

मानों का तांता लगा ही रहता है, उन सबका स्वागत-सत्कार करना, उनके लिए भोजन-पेय आदि की व्यवस्था करना आदि सारा कार्य उनके जिम्मे रहता है और किसी को भी आज तक किसी प्रकार की शिकायत करने का मौका नहीं मिल पाया है।

उनका स्नेह-अमृत-वर्षण बराबर शिष्यों पर बना रहता है, उनकी छत्रच्छाया में न तो किसी प्रकार का अभाव महसूस होता है और न किसी प्रकार की कठिनाई आती है, वे स्वयं अधिक काम होने पर शिष्य से काम न लेकर खुद कर लेती हैं, समय पर उसके भोजन की व्यवस्था करती हैं और ठीक उसी प्रकार से भोजन कराती हैं जिस प्रकार से एक मां अपने अबोध बच्चे को कराती है, जबर्दस्ती से ज्यादा भोजन कराना था उसे सौगन्ध दिलाकर ज्यादा ही खाने के लिए प्रेरित करना उनका स्वभाव है। उनको यह आशंका बराबर बनी रहती है कि कहीं यह बच्चा संकोच के मारे भूखा न रह जाए या किसी प्रकार की इसको तकलीफ न हो जाय।

थोड़ी-सी भी लापरवाही श्रीमाली जी को सहन नहीं होती और यदि कभी लापरवाही बरतने पर किसी को डांट मिल जाती है तो तुरन्त दूसरे ही क्षण उसको मां का स्नेह मिल जाता है, वह उसको पुचकारती हैं और उसके लिए खुद श्रीमाली जी को उपालम्भ दे देती हैं, कि इस बालक पर इतना कुछ करना कहां तक उचित है।

उनके घर में जो शिष्य रहते हैं वे उस वात्सल्यमयी मां का स्नेह निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं और उन्हें कुछ ऐसा अनुभव होता है जैसे वे स्वर्ग में हों और जीवन के मधुरतम क्षण वहीं पर उनको प्राप्त होते हैं।

मैंने इस ममतामयी मां का स्नेह देखा है, उनके प्रेम से मैं आप्लावित रहा हूं और आज जब मैं उनसे काफी दूर हूं फिर भी जब उस मां का स्मरण होता है तो मेरी आंखों में आंसू छलछला आते हैं। काश ! मुझे एक बार फिर उनके घर में रहने का अवसर मिले और मैं उस मां का स्नेह प्राप्त कर सकूं। काश ! मैं इस मां की कोख से पैदा हुआ होता।

श्रीमाली जी का एक गृहस्थ रूप भी है जिसे बहुत ही कम लोगों ने देखा होगा, वे अपने आप में पूर्ण गृहस्थ हैं और शास्त्रों में सद्गृहस्थ की जो व्याख्या है उस कसौटी पर वे खरे उतरते हैं। लोगों ने इनके योगी रूप या ज्योतिषी का रूप देखा होगा परन्तु जिस किसी ने भी इनके गृहस्थ रूप को देखा है वह आश्चर्यचकित रह जाता है क्योंकि इस रूप में वे उन सारी समस्याओं को और कठिनाइयों को ध्यान पूर्वक सुनते हैं जिस प्रकार से एक गृहस्थ अपनी पारिवारिक समस्याओं को सुनता है।

छोटे बच्चों के साथ बात करते समय ऐसा लगता ही नहीं कि यह व्यक्ति प्रौढ़ है या इसने जिन्दगी के बहुत अधिक उतार चढ़ाव देखे हैं। उस समय उनका स्वभाव बिल्कुल छोटे शिशु की तरह हो जाता है, उनके साथ वे खेलते हैं और खेल-खेल में स्वयं हार जाते हैं। ऐसा वातावरण बन जाता है कि बच्चे उनको एक क्षण के लिए भी छोड़ना पसन्द नहीं करते, पर पूरे चौबीस घण्टों में ऐसा समय आधा घंटा

ही होता होगा जब वे उन बालकों के बीच खो जाते हैं, मैंने उन्हें इस रूप में देखा है और मैं सोचता हूं कि यह कितना सरल और सात्विक हृदय है जो बच्चों के बीच ठीक उसी प्रकार से बच्चा बन जाता है जैसे कि कोई अन्य बालक हो। उस समय उनके पास पौत्र आकर अपनी मां की शिकायत करता है, बड़े भाई की शिकायत की जाती है और वे उन सारी शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उसी समय सम्बन्धित व्यक्ति को बुलाकर फटकार भी दे दी जाती है और ऐसा होते समय उस बालक का सीना फूल जाता है कि मैंने बाबा से फटकार दिला दी है, बालकों की सुप्रीम अदालत यही है और यहां पर वे पूर्णतः सन्तुष्ट होते हैं, दिनभर का जो कुछ गुबार होता है वह इस समय निकलता है और वे हमेशा बालकों का ही पक्ष लेते हैं।

ज्योतिष के क्षेत्र में इस अकेले व्यक्तित्व ने इतना अधिक कार्य किया है जितना एक पूरी संस्था भी नहीं कर पाती। जिस समय इन्होंने निश्चय किया था उस समय भारत में ज्योतिष मात्र पण्डितों की धरोहर बन गई थी और वे जो कुछ भी उलटा-सीधा कह देते थे वही आंख मूंदकर मान लिया जाता था, परन्तु उन पण्डितों की ज्योतिष में गहराई न होने के कारण फलादेश अप्रामाणिक होता था, फलस्वरूप लोगों की आस्था ज्योतिष से हटने लग गई थी, एक प्रकार से ज्योतिष जन-समाज से कट गई थी, ऐसी स्थिति में श्रीमाली जी ने ज्योतिष को जन-साधारण में सुलभ करने के लिए अल्पमोली पुस्तकें लिखीं और समाज में वितरित कीं, कम मूल्य की होने के कारण आम आदमी इस प्रकार की पुस्तकों में रुचि ले सका, पुस्तकों की भाषा इतनी सरल है कि वे ज्योतिष में कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें, इस वजह से देश में पुनः ज्योतिष की धारणा और इसके प्रति चेतना बनी और आज भारत में जिस प्रकार से ज्योतिष पुनः लोकप्रिय हो रही है, उसका बहुत बड़ा श्रेय इस व्यक्तित्व को जाता है।

छोटी-छोटी पुस्तकों के अलावा इन्होंने ग्रन्थों की भी रचना की है और उसमें ज्योतिष के मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है उन खोई हुई कड़ियों को पुनः इन पुस्तकों के माध्यम से पंडितों को सुलभ किया है जिससे कि ज्योतिष अपने आप में पूर्णतः प्रामाणिक बन सके, आज पूरे भारत में ज्योतिष को पुनः वही स्थान प्राप्त हो सका है जो कि प्राचीन समय में था।

ज्योतिषियों और विद्वानों ने श्रीमाली जी को आधुनिक 'वराह मिहिर' की संज्ञा से विभूषित किया है, वास्तव में ही आधुनिक ज्योतिष—को जिस प्रकार से इन्होंने लोकप्रिय बनाया है, और ज्योतिष के लुप्त रहस्यों को उजागर किया है, उस दृष्टि से यदि इन्हें 'वराह मिहिर' कहा जाता है तो वह उचित ही है।

पण्डितजी को मैंने कई रूपों में देखा है और प्रत्येक रूप अपने आप में बढ़-चढ़कर है। ज्योतिष के क्षेत्र में उन्होंने अद्वितीय कार्य किया है और जो कुछ ठोस कार्य हुआ है, उससे आने वाली पीढ़ियां मार्गदर्शन प्राप्त कर सकेंगी, इसके अलावा ज्योतिष के गणित और फलित विषयों में समन्वय स्थापित किया है, पंचांगों में जो विविधता और त्रुटियां थीं उन्हें संशोधित कर सही ग्रह पथ को स्पष्ट किया है, तांत्रिक क्षेत्र में

यह व्यक्तित्व अद्वितीय है, मंत्र शास्त्र के क्षेत्र में इन्होंने उसकी मूल ध्वनि को स्पष्ट किया है क्योंकि मंत्र का मुख्य आधार उसकी ध्वनि और संबंधित आरोह-अवरोह है, जब तक मंत्र के इस मूल रहस्य को प्राप्त नहीं किया जाता तब तक मंत्र का प्रभाव नहीं हो पाता। इन्होंने मंत्र की मूल आत्मा, उसका कीलन, उत्कीलन तथा उसकी मूल ध्वनि को स्पष्ट किया है, जिससे कि मंत्र मूल रूप से पुनः साधकों को प्राप्त हो सके। मंत्र के क्षेत्र में जो कुछ योगदान श्रीमाली जी का रहा है, वह अपने आप में अद्वितीय है और इसका मूल्यांकन मंत्र शास्त्री तथा तंत्र मर्मज्ञ ही कर सकते हैं। आज भी मंत्र अध्येता श्रीमालीजी को मंत्र के संबंध में पूर्णता मानते हैं और उनकी राय में श्रीमालीजी का कथन अन्तिम निर्णित होता है।

वाम मार्गी साधना अत्यन्त दुष्कर और कठिन होती है, क्योंकि इसका अधिकांश भाग 'श्मशान-साधना' से प्रभावित होता है, इस साधना में भी इन्होंने सर्वोच्चता प्राप्त की है जो कि वहुत ही कम साधक प्राप्त कर सकते हैं। 'अघोर-सिद्धान्त' में जो उन्होंने नवीनता दी है वह अपने आप में अन्यतम है क्योंकि इसके माध्यम से यह साधना सहज और सुगम हो सकी है।

पण्डितजी का एक और रूप मैंने आयुर्वेद विज्ञान में देखा है, बहुत ही कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि आयुर्वेद के क्षेत्र में भी इन्होंने वहुत कुछ प्राप्त किया है जो कि अन्यतम है। किसी पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि सीताराम स्वामी जो कि आयुर्वेद के क्षेत्र में पूरे विश्व में सम्मान के साथ स्मरण किये जाते हैं, उनसे इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था और कुछ विशेष बीमारियों की चिकित्सा में तो ये सिद्धहस्त माने जाते हैं। दमा, क्षय, आदि रोग और उनकी चिकित्सा के बारे में इन्हें अन्यतम ज्ञान है, कई साधुओं, सन्यासियों, नागाओं और अघोरियों के साथ रहने और उनके साथ काफी समय व्यतीत करने के कारण उनसे इस संबंध में जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हो सका वह अद्भुत और आश्चर्यचकित है, क्योंकि कई जड़ी बूंटियां ऐसी हैं जिनका प्रभाव तुरन्त और निश्चित होता है, इन जड़ी बूंटियों का श्रीमाली जी को पूर्ण ज्ञान है, और इनके माध्यम से इन्होंने कई दुष्कर रोगों का निदान किया है तथा उसमें उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है।

परन्तु इन्होंने अपने आयुर्वेद रूप को कभी भी ज्यादा प्रकट नहीं किया, जिन लोगों को ज्ञात है वे जानते हैं कि ऐसे कई रोगी निरन्तर आते रहते हैं जो सभी वैद्यों और डाक्टरों से थक जाते हैं। इस प्रकार के रोगियों को स्वस्थ करने में इन्हें विशेप आनन्द प्राप्त होता है, इतना होने पर भी उनसे किसी भी प्रकार का व्यय नहीं लिया जाता है, अपितु कई वार तो अपने पास से व्यय करके भी उन्हें स्वस्थ होता देख आनन्द अनुभव करते हैं।

मैंने श्रीमाली जी के बारे में जो कुछ लिखा है, वह किसी भावना के वशीभूत होकर नहीं लिखा है, अपितु जो कुछ मैंने देखा है, जो कुछ मैंने अनुभव किया है, उसे ही कागजों पर उतारा है, मैं मूलतः पत्रकार हूं और आलोचना मेरा प्रथम धर्म है,

थोड़ी-सी भी त्रुटि या कमजोरी को बढ़ा-चढ़ाकर उजागर करने का प्रवृत्ति पत्रकार में सबसे पहले होती है, मैंने श्रीमाली जी के व्यक्तित्व को आलोचक की दृष्टि से देखा है उसमें न्यूनता और कमजोरी ढूंढने का प्रयत्न किया है, परन्तु मैंने जो कुछ देखा है वह अपने आप में पूर्ण रूप में अनुभव हुआ है, उसमें कहीं पर भी छिद्र या न्यूनता दिखाई नहीं दी ।

इतना होने पर भी श्रीमाली जी में आज के युग को देखते हुए कई कमियां हैं—वे भावुक प्रकृति के हैं और किसी के भी दुख को देख कर वे तुरन्त दयार्द्र हो जाते हैं और प्रत्येक प्रकार से उनकी सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं, इस भावुकता के कारण कई लोग अपना झूठा दुख व्यक्त करके मांग कर धन आदि ले जाते हैं और वापस उनसे प्राप्त होने का तो प्रश्न ही नहीं है । आज के इस स्वार्थमय युग में उनकी इस प्रवृत्ति से कुछ कुटिल लोग लाभ उठा लेते हैं, झूठी सहानुभूति प्राप्त कर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं और उनको दुखमय देखकर श्रीमाली जी प्रत्येक प्रकार से प्रत्येक समय सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं ।

माताजी ने एक दो बार संकेत भी किया कि इस प्रकार लोग झूठी बातें कह कर के या काल्पनिक दुख की कहानी सुनाकर आपसे लाभ उठा ले जाते हैं, यह तो आपके साथ एक प्रकार से धोखा ही है तो श्रीमाली जी सुनकर मुस्करा दिये और कहा, वह झूठ बोलता है तो मैं सब कुछ समझ जाता हूं परन्तु फिर भी मैं सोचता हूं कि यह जो कुछ कर रहा है, इसका फल यह भविष्य में भुगतेगा ही, मैं अपनी मानवता क्यों छोड़ूं ? और इस प्रकार यदि वह मुझ से कुछ प्राप्त कर लेता है उसके मन को शान्ति मिलती है तो अच्छी बात है ।

श्रीमाली जी में दूसरी कमी यह है कि वे सहज ही दूसरों पर विश्वास कर लेते हैं । इसके कारण कई बार उनके साथ विश्वासघात भी होता है, वे ठगे भी जाते हैं परन्तु ठगे जाने पर भी वे प्रसन्न होते हैं, जब उनको यह बताया जाता है कि उसने आपके साथ विश्वासघात किया है तो वह कहते हैं कि यह उसकी धारणा है वह जिस प्रकृति का होगा वैसा ही तो वह आचरण करेगा, पर उसकी वजह से मैं अपने आचरण को क्यों बदल दूं ? एक बार मेरे द्वारा इस प्रकार का प्रश्न करने पर उन्होंने एक लघु घटना सुनाई थी ।

एक साधु नदी में स्नान कर रहा था, उसने देखा कि एक बिच्छू डूब रहा है । उस साधु ने उस बिच्छू को हाथ में ले लिया जिससे कि वह डूबने से बच जाये, परन्तु बिच्छू ज्यों ही हथेली पर आया उसने डंक मार दिया, जोरों से वेदना होते ही साधु के हाथ से बिच्छू छिटक कर पुनः पानी में गिर गया, उसे पुनः डूबते देखकर साधु को फिर दया आ गई और उसे फिर अपनी हथेली में ले लिया, बिच्छू ने दूसरी बार भी हथेली में डंक मार दिया, इस प्रकार पांच-छः बार साधु ने बिच्छू को डूबने से बचाने का प्रयत्न किया और हर बार बिच्छू डंक मारता रहा ।

पास खड़े उनके शिष्य ने कहा स्वामीजी ! इससे तो आपके शरीर में जहर

फैल जायेगा, आप यह क्या कर रहे हैं? साधु ने हंसते हुए उत्तर दिया कि वह अपने धर्म का और मैं अपने धर्म का पालन कर रहा हूं। उसका धर्म डंक मारना है, और मेरा धर्म उसे डूबने से बचाना है, उसकी दुर्जनता से अपने धर्म को मैं क्यों छोड़ दू।

घटना का तात्पर्य यह, कि सामने वाला विश्वासघात करता है, झूठ बोलता है या धोखा देने का प्रयास करता है, तो यह उसका धर्म होगा, पर उसकी वजह से अपना धर्म या मानवता क्यों छोड़ दूं?

श्रीमाली जी की तीसरी कमी उनकी उदारता है, उनके शरीर पर कीमती शाल होगी और यदि उन्होंने किसी साधु को ठिठुरते हुए देख लिया तो वह शाल उसे ओढ़ा देंगे और स्वयं खाली हाथ घर लौट आयेंगे, इस प्रकार उनके द्वारा कई बार आवश्यक वस्तुएं दे दी जाती हैं और ऐसा करके उन्हें प्रसन्नता ही अनुभव होती है।

आज के छल-प्रपंचमय युग में इतना सरल और सात्विक होना भी अपने आप में कठिन है और इतना संघर्ष होने के बावजूद भी इन्होंने अपने मानवीय मूल्यों को नहीं छोड़ा है, क्योंकि दुखी आदमी का दुख वही पहचान सकता है जिसने अपने जीवन में कष्ट उठाये हों।

उनका एक कठोर रूप गुरु रूप है, मैं समझता हूं अन्य रूपों में वे कितने ही उदार और नम्र हों, अपने शिष्यों के प्रति वे उतने ही निर्मम और कठोर भी हैं, थोड़ी-भी कमजोरी या असावधानी उन्हें सह्य नहीं होती। उनकी धारणा यह है कि सोना मूल्यवान तभी होता है जबकि उसे बार-बार आंच में जलाया जाता है, एक बार चर्चा के दौरान उन्होंने बताया था कि ये शिष्य मेरे पुत्रवत् हैं एक प्रकार से ये मेरे हृदय के टुकड़े हैं, इन पर कठोरता करने से मुझे अन्दर-ही-अन्दर जरूरत से ज्यादा दुख होता है और बुरा भला कहने पर हृदय में वेदना भी, परन्तु मैं उस वेदना को दबा कर ऊपर से कठोर और निर्मम रहता हूं जिससे कि वे जिस पथ पर खड़े हुए हैं उस पथ पर आगे बढ़ सकें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

किसी और का शिष्य मात्र शिष्य कहलाएगा, परन्तु यदि कोई मेरा शिष्य होगा तो उसके पीछे मेरा पूरा व्यक्तित्व जुड़ा हुआ होगा, यदि उसमें न्यूनता होगी तो वह उसकी न होकर मेरी ही कहलायेगी, मैं इस प्रकार का कलंक या धब्बा अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहता।

पिता को उस समय प्रसन्नता होती है जब वह जीवन के क्षेत्र में अपने पुत्र से पीछे रह जाता है या हार जाता है, यदि व्यापार में पुत्र, पिता से भी बढ़-चढ़ कर होता है तो यह अप्रत्यक्ष रूप से पिता को ही गौरव मिलता है, इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य से हारने में ज्यादा खुशी अनुभव करता है, यदि गुरू से ही शिष्य आगे बढ़ जाता है या उनसे ज्यादा सफलता अथवा लोकप्रियता अर्जित करता है तो यह अप्रत्यक्ष रूप से उस गुरु का ही सम्मान और गौरव होता है।

इसीलिये मैं अपने शिष्यों के प्रति कठोर रहता हूं जिससे कि वे अपने जीवन को संयमित रख सकें, नैतिक मूल्यों में उनकी आस्था बनी रह सके और मानवता के

गुणों से वे परिपूर्ण हो सकें। ऐसा होने पर ही वे आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्योतिस्तम्भ का कार्य कर सकेंगे।

मैं अपूर्णता में विश्वास नहीं करता, मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरा शिष्य अपूर्ण हो, अपितु मैं उसमें पूर्णता चाहता हूं और इसीलिये कम-से-कम समय में उसको ज्यादा-से-ज्यादा ज्ञान और साधना देने में तत्पर रहता हूं, ऐसी स्थिति में उसको ज्यादा परिश्रम करना ही पड़ता है। जो परिश्रम से घबरा जायगा वह मेरा शिष्य वनने के योग्य ही नहीं है।

कठोर होते हुए भी उनके हृदय में स्नेह की गंगा बहती रहती है और शिष्य इस गंगा से आप्लावित रहते हैं, उन्हें गुरु की कठोरता में भी आनन्द आता है, क्योंकि वे यह समझते हैं कि हम सामान्य योगी या साधक के शिष्य नहीं हैं अपितु श्रीमाली जी के शिष्य हैं और ऐसी स्थिति में जरूरत से ज्यादा श्रम करना स्वाभाविक है।

मैं उनके कई शिष्यों से मिला और मैंने पाया कि उनके मन में श्रीमाली जी के प्रति अत्यधिक उच्च आदर की भावना है। जब भी श्रीमाली जी की चर्चा छिड़ती है, तौ सकी आंखों में प्रेम के आंसू छलछला पड़ते हैं, उनके मन की साध यही होती है कि ादा-से-ज्यादा-गुरु-चरणों में रह सकें और उनसे ज्ञान प्राप्त कर सकें, मैंने यह देखा है कि न तो गुरु देने में संकोच कर रहा है और न शिष्य प्राप्त करने में न्यूनता अनुभव कर रहा है।

श्रीमाली जी का साधक रूप अपने आप में विलक्षण है, उनके भूगर्भ गृह में एक अलग ही साधना कक्ष है जिसमें अन्य किसी का भी प्रवेश पूर्णतः वर्जित है, मुझे केवल दो मिनट के लिए श्रीमाली जी के साथ उस साधना कक्ष में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और मैंने एक विचित्र विद्युत-तरंगें उस कक्ष में अनुभव की थीं, उनके तेजस्वी रूप से या मंत्रात्मक ध्वनि रूप के कारण वह कक्ष अपने आप में विद्युतमय है और सामान्य मानव तो अन्दर जा ही नहीं सकता, क्योंकि अन्दर कदम रखते ही उसे ऐसा झटका लगता है जैसे कि उसने विजली के नंगे तार को छू लिया हो।

विशिष्ट साधना से सम्पन्न व्यक्ति ही उस कक्ष में जाने का अधिकारी माना जाता है, या उनके वे शिष्य जो विशिष्ट साधना में प्रवेश करते हैं, वह कक्ष अपने आप में पूर्णतः मंत्रमय, चेतन्य और विद्युत ऊर्जा से स्फुलिंगित है। वास्तव में ही वह साधक धन्य है, जिसने उस कक्ष में प्रवेश किया है, या वहां पर बैठकर कुछ प्राप्त किया है, मैंने यह देखा है कि कोई भी साधक जव उस कक्ष में वैठता है तो स्वतः ही उसकी कुण्डलिनी जागृत हो जाती है और पूर्ण समाधि लग जाती है जो कि अपने आप में अनिवर्चनीय होती है।

मुझे लगभग तीन महीने पण्डितजी के घर में रहने का सौभाग्य मिला और वे तीन महीने मेरे पूरे जीवन की निधि हैं जिसमें मैंने व्यावहारिक रूप से बहुत कुछ सीखा है, उस घर में मैंने पण्डितजी से श्रेष्ठ साधना का अभ्यास किया है, उनके गुरु रूप को और स्नेह को अनुभव किया है, मां का वात्सल्यमय स्नेह मेरी झोली में है,

बच्चों की सरलता और सहजता मेरे जीवन में अनुप्राणित रही है और घर के शान्त और स्वर्गिक वातावरण से मेरा जीवन आप्लावित हुआ है, वास्तव मे ही वे तीन महीने मेरे जीवन की सर्वोच्च साधना और उपलब्धि है।

श्रीमाली जी के मकान के भूगर्भ गृह में एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें कई हस्तलिखित ग्रन्थ हैं जो कि तंत्र, मंत्र और आयुर्वेद से सम्बन्धित हैं, ज्योतिष से सम्बन्धित और साधना से सम्वन्धित भी सैकड़ों पुस्तकें हैं, इतना बड़ा पुस्तकालय मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा। वास्तव में ही साधना से उम्वन्धित ग्रन्थों का जो खजाना इस गर्भगृह में है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मैंने श्रीमाली जी से विशेष अनुरोध कर इन पुस्तकों को क्रम से जमाने की प्रार्थना की थी और उनसे निवेदन किया था कि वे आज्ञा दें जिससे कि इन ग्रन्थों की सूची बनाई जा सके और प्रत्येक विषय से सम्वन्धित ग्रन्थ अलग-अलग आलमारियों में रखे जा सकें, जिससे कि सम्बन्धित साधक उसका लाभ उठा सके।

मेरे अनुरोध को स्वीकार करते हुए उन्होंने इस सम्वन्ध में आज्ञा दे दी थी और पूरे महीने भर मैं इस कार्य में लगभग उन सारी पुस्तकों को क्रमवद्ध कर सका था।

इस दौरान में मुझे कुछ फाइलें मिलीं जिनमें प्राचीन पत्रों का संग्रह था। इन पत्रों में कुछ संस्कृत में थे, कुछ हिन्दी और कुछ बंगला भाषा में, सौभाग्य से मुझे इन तीनों भाषाओं की जानकारी है और तीनों ही भाषाओं में भली प्रकार बोल-पढ़ लिख सकता हूं। अत: मैंने उन पत्रों को पढ़ा तो मुझे ज्ञात हुआ कि वास्तव में ही ये पत्र अपने आप में दुर्लभ हैं।

इसमें से वे पत्र भी मुझे पढ़ने को मिले जो कि श्रीमाली जी ने अपने साधना-काल में माताजी को लिखे थे। माताजी ने वे पत्र सहेज कर रख दिये थे, जो कि फाइल में बन्द थे, वे पत्र वास्तव में ही अन्यतम और दुर्लभ हैं क्योंकि इन पत्रों से श्रीमाली जी के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है और उस समय उनकी मन:-स्थिति का ज्ञान इन पत्रों के माध्यम से होता है।

कुछ पत्र श्रीमाली जी के गुरु योगीराज श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी के भी थे, जो कि वास्तव में ही अन्यतम और दुर्लभ हैं, कुछ पत्र श्रीमाली जी के शिष्यों के भी थे जो उन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए भेजे थे।

मैंने अनुभव किया कि ये पत्र हमारे साधना जीवन के अमूल्य रत्न हैं और यदि ये प्रकाश में नहीं आये या ये पत्र समाप्त हो गए तो यह साहित्य एक अमूल्य निधि से वंचित हो जायगा, यदि किसी कुटिल व्यक्ति की नजर में ये पड़ गये तो वह इसका मूल्य समझ कर ले जायेगा।

मैंने इन पत्रों की महत्ता और दुर्लभता अनुभव की और इस सम्वन्ध में एक दिन श्रीमाली जी को प्रसन्न चित्त देखकर याचना की कि इस प्रकार के पत्रों का सम्पादन कर यदि प्रकाशित किया जाये तो यह अपने आप में अन्यतम कार्य होगा

और हम जैसे युवकों को इससे प्रेरणा और मार्गदर्शन मिल सकेगा।

प्रश्न सुनते ही श्रीमाली जी ने तुरन्त मना कर दिया, उन्होंने कहा, मैं इस प्रकार के पत्रों का प्रकाशन उचित नहीं समझता हूं, क्योंकि इनमें मेरी प्रशंसा हो सकती है और मैं ऐसा नहीं चाहता। वे पत्र कहां पड़े हैं, मेरी राय में इन पत्रों को नष्ट कर देना ही उचित है।

मैं हतप्रभ रह गया कि यह व्यक्तित्व अपनी प्रशंसा से कितना अधिक कतराता है। मेरे मन ने कहा कि पण्डितजी अपनी प्रशंसा को प्रकाशित करना नहीं चाहेंगे और यदि उन्हें ज्ञात हो गया तो अवश्य इन पत्रों को वे फाड़ देंगे और इस प्रकार तांत्रिक समुदाय एक बहुत बड़ी निधि से वंचित हो जायेगा। मैंने उस समय तो श्रीमाली जी को कुछ नहीं कहा और उसी समय माताजी के आ जाने से विषय परिवर्तित हो गया और बात आई-गई हो गई।

परन्तु मैंने पुस्तकों को क्रमबद्ध करने के साथ-साथ उन पत्रों की प्रतिलिपियां भी तैयार कर लीं और उन प्रतिलिपियों को अपने पास रख लिया, कई पत्र थे, उनमें से वे पत्र जो वास्तव में ही मुझे अमूल्य लगे, उनकी प्रतिलिपियां मैंने तैयार कर लीं, मैं चाहता था कि ये पत्र प्रकाश में आवें जिससे कि हम जैसे युवकों का इससे मार्गदर्शन हो सके और हम इनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

तीन महीनों में मैंने श्रीमाली जी से जो कुछ सीखा वह मेरे जीवन की श्रेष्ठतम निधि है, उसके बाद समय आने पर उन्होंने मुझे शिष्य रूप में भी स्वीकार किया और दीक्षा दी, मैं उनका चिर ऋणी हूं और यह पूरा जीवन उनका ऋणी रहेगा।

मैं ये पत्र प्रकाशित करवा रहा हूं, मेरा उद्देश्य मात्र हम शिष्यों को इन पत्रों से प्रेरणा प्राप्त करना है, श्री सच्चिदानन्द जी के पत्र अन्यतम हैं, यह श्रीमाली जी का ही गौरव है कि उन्हें उनके हाथ के लिखे पत्र प्राप्त हो सके, श्रीमालीजी ने भी कुछ पत्र लिखे थे उनकी प्रतिलिपियां भी मुझे कुछ शिष्यों से प्राप्त हुईं। उन शिष्यों ने मुझे वे पत्र तो नहीं दिए क्योंकि गुरुजी के हाथ के लिखे वे पत्र उनके लिए सौभाग्यदायक हैं परन्तु उन्होंने मुझे प्रतिलिपि करने की स्वीकृति अवश्य दे दी।

इस प्रकार मैं कुछ पत्र प्रकाशित कर रहा हूं जो कि अन्यतम और दुर्लभ हैं, यद्यपि मैंने गुरुजी से स्वीकृति प्राप्त नहीं की है और अनजाने ही उन मूल पत्रों की प्रतिलिपियां प्राप्त की हैं यह एक प्रकार का चौर्य कार्य है, परन्तु यह चोरी भी मेरे लिए गौरव की बात है, मैं गुरुजी के प्रति इस कार्य के लिए अपराधी हूं और इस चोरी के लिए वे जीवन में मुझे जो भी सजा देंगे मैं सहर्ष उसको भोगूंगा। मुझे उनकी उदारता पर भरोसा है और उस महान व्यक्तित्व के प्रति मेरा सिर श्रद्धा से नत है।

इस पुस्तक में जो पत्र प्रकाशित हो रहे हैं वे मूल पत्र भले ही मेरे पास नहीं हैं, हो सकता है कि इस पुस्तक को देखने के बाद श्रीमाली जी मूल पत्रों को फाड़ दें या समाप्त कर दें, परन्तु मेरे पास जो भी प्रतिलिपियां हैं वे मेरे स्वयं के द्वारा तैयार

हैं, मैंने उन मूल पत्रों को देखा है, पढ़ा है वे प्रामाणिक हैं और उनकी प्रामाणिकता पर मुझे विश्वास है।

आज मैं उन पत्रों को प्रकाशित कर गौरव अनुभव कर रहा हूं कि ये पत्र हम जैसे साधकों के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करेंगे।

मैं इस संक्षिप्त भूमिका के माध्यम से गुरुजी से क्षमा प्रार्थी हूं। मेरा उद्देश्य जन-कल्याण है, हम साधकों का मार्गदर्शन है और इसीलिए इस अपराध को करने की हिम्मत जुटा पाया हूं। इसके लिए मैं अपने आपको गुरुजी के प्रति अपराधी और उत्तरदायी अनुभव कर रहा हूं।

मुझे विश्वास है कि इन पत्रों से जन-साधारण लाभ उठा सकेंगे और वे उस महान व्यक्तित्व के कुछ अंशों से साक्षात्कार कर सकेंगे। यदि जन-साधारण इससे और उस महान व्यक्तित्व के जीवन और उनके कार्यों से प्रेरणा प्राप्त कर सका तो मैं अपना यह प्रयास सफल समझूंगा।

वशिष्ठ आश्रम, योगी ज्ञानानन्द
उत्तर काशी, उ० प्र०

डॉ० श्रीमाली के पत्र
अपनी पत्नी के नाम

प्रेषक—डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान—लूनी

प्राप्तकर्त्ता—भगवती श्रीमाली

आलोक—डॉ० श्रीमाली जी ने यह पत्र उस समय अपनी पत्नी को लिखा था जब वे साधना के लिये घर से जाना चाहते थे, परन्तु पारिवारिक बन्धन उन्हें वहां पर रहने के लिये विवश कर रहे थे, यह पत्र उस समय की मानसिक स्थिति को स्पष्ट कर रहा है कि कितनी अधिक मानसिक चिन्ता और मनोव्यथा उनके मानस में थी और उन्हें अपने आपको साधना के लिये तैयार करने में कितना अधिक मानसिक संघर्ष करना पड़ा था।

प्रियतमे !

जिसके साथ तुम्हारे भाग्य की डोर जुड़ी है वह एक विचित्र विचारों और अनोखी भावनाओं का व्यक्ति है। उसके विचार अपने आप में अलग ही हैं, वह दूसरों के विचारों के साथ अपने आपका तादात्म्य नहीं कर पाता, क्योंकि वह इस बात को अब अनुभव करने लगा है कि उसका जीवन जन्म लेकर साधारण रूप में समाप्त होना ही नहीं है, अपितु उसे अपने जीवन में कुछ ऐसे कार्य करने हैं, जो अपने आप में विलक्षण हों, अपने आप में अलग हटकर हों और जो कार्य साधारण व्यक्तियों से सम्पन्न होना संभव न हो।

विवाह से पूर्व मैंने कई रातें इस चिन्तन में बिता दी थीं कि मुझे विवाह करना चाहिए या नहीं, और धीरे-धीरे मेरी यह धारणा बद्धमूल होती जा रही थी कि मेरा जीवन विवाह के लिये नहीं बना है, क्योंकि विवाह एक ऐसा बन्धन है जिसमें बंध करके व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र नहीं रह पाता, यद्यपि यह बात सही है कि यह भी जीवन का एक आवश्यक धर्म है, और इस धर्म को मानना व्यक्ति का कर्त्तव्य है, परन्तु जैसा कि

मैंने तुम्हें बताया कि मैं अपने आपको साधारण स्थिति में नहीं रख पाता, और मेरे मन में एक ऐसी छटपटाहट है, एक ऐसी आग है जिसमें मैं चाह करके भी तुम्हारे सामने व्यक्त नहीं कर पाता।



श्रीमती भगवती श्रीमाली

शायद तुम्हें ज्ञात नहीं होगा कि जब मेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा गया तो उस समय सबसे अधिक प्रतिवाद मैंने ही किया था, और अपने माता-पिता के सामने यह बात भली प्रकार से स्पष्ट कर दी थी कि शायद मेरा जीवन गृहस्थ बनने के लिये नहीं बना है, संभवतः मैं इस गृहस्थ के दायित्वों को भली प्रकार से वहन नहीं कर सकूंगा, मेरी उदासीनता से एक प्राणी की सारी इच्छाएं जड़ हो जायेंगी, क्योंकि मेरा चिन्तन, मेरी भावनाएं और मेरे विचार अपने आप में एक अलग धारणा को लिये हुए हैं।

मुझे स्वयं कुछ-कुछ ऐसा लगने लगा था जैसे कि मैं अपने आप से खोया हुआ रहता हूं और आसपास के विचारों को न तो ग्रहण कर पा रहा हूं और न उनसे सम्पर्कित ही हो पाता हूं।

शायद मेरे इस प्रकार के विचारों को, मेरे घर वालों ने भांप लिया होगा और उन्होंने ऐसा महसूस किया होगा कि यह लड़का यदि इसी प्रकार अपने खयालों में खोया रहा तो, या तो पागल हो जायगा या संन्यासी हो जायगा, दोनों ही स्थितियों में उन्हें नुकसान था और वे नहीं चाहते थे कि उनके घर का सबसे बड़ा लड़का संन्यासी हो जाय या विबाह के नाम पर अपने आपको तटस्थ बना ले।

इसीलिये मेरी इस प्रकार की मनःस्थिति को अनुभव कर उन्होंने विवाह के लिये जरूरत से ज्यादा प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। यह बात तुम स्वयं समझ सकती हो कि मेरी यह उम्र विवाह करने की नहीं थी, परन्तु शायद इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने जल्दी-से-जल्दी विवाह करने की योजना बना ली और मुझे बिना बताये काफी कुछ तैयारियां कर लीं। उनके सारे प्रयास, सारी योजनायें केवल इसी बात को लेकर के थीं कि उनके घर का यह चिराग जलता रहे और आगे यह वंश-परम्परा बनी रहे।

मैं मानता हूं कि उनके विचार अपनी जगह सही थे। हर माता-पिता की यह आकांक्षा होती है कि उसका पुत्र गृहस्थ बने और आगे की पीढ़ियों के निर्माण में योगदान दे।

परन्तु मैं इस बात को जान रहा था कि यह ठीक नहीं हो रहा है। मेरा विवाह एक प्रकार से मेरे लिये बन्धन ही साबित होगा। मैं अपने जीवन में जो कुछ करना चाहता हूं शायद वह नहीं कर पाऊंगा, क्योंकि उस समय एक ऐसी बेड़ी मेरे पांवों में जड़ दी गई होगी, जिसे मैं चाहकर के भी छुड़ा नहीं पाऊंगा। पर—पर मेरे विचारों को माता-पिता ने हवा में उड़ा दिया और मेरा विवाह तुम्हारे साथ हो गया।

इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुमने विवाह किया है, तुम इस घर की बहू बन करके आई हो, तुम्हारी अपनी भावनाएं हैं, अपनी इच्छाएं हैं, अपने विचार हैं और तुम उन विचारों में बराबर खोई हुई रही हो।

मेरे घर में आने के बाद तुमने जहां मेरे माता-पिता से प्यार पाया होगा, देवर से चुहल अनुभव की होगी, पर साथ ही तुमने अग्नि को साक्षी बनाकर फेरे खाये हैं उसकी तरफ से तो किसी प्रकार का कोई स्नेह तुम्हें प्राप्त ही नहीं हो रहा है। यह उदासीनता तुम्हारे लिये एक पहेली की तरह दिमाग को उलझा रही होगी। हो सकता है मेरे बारे में तुम्हारे मन में कई प्रकार की भावनाएं आई होंगी और तुमने कई प्रकार से अपनी उन भावनाओं को शान्त किया होगा।

मैं पिछले काफी समय से तुम्हें खोई-खोई देख रहा हूं और मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि आते समय तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी और प्रफुल्लता थी, उस पर हल्की-

सी स्याही झांई पड़ती जा रही हैं, इसका कारण जहां तक मैं समझ रहा हूं मेरी उदासीनता है।

वास्तव में ही तुम अपने आपमें पूर्ण नारी हो, और विवाह के उपरान्त सहेलियों के द्वारा तुम्हारे मन में कई प्रकार के विचार भरे होंगे, कई प्रकार के सपने तुम्हारी आंखों में तैर रहे होंगे, कई प्रकार की बातें तुम अपने होंठों से कहने के लिये आतुर हो रही होगी, परन्तु इतना समय बीतने के बाद भी जब मेरी तरफ से तुम्हें उदासीनता मिली होगी तो वे सपने धीरे-धीरे टूट रहे होंगे, वे कल्पनाएं जो कि पूरे जीवन को गुदगुदी देती हैं बिखर रही होंगी और एक प्रकार का झीना आवरण उस पर पड़ रहा होगा।

मैं जानता हूं कि तुम विवाह करके आई हो, तुमने मुझसे बहुत अधिक उम्मीदें लगाई होंगी, परन्तु संभवतः मैं तुम्हारी उम्मीदों को पूरा नहीं कर सकूंगा। यद्यपि यह बात कहते समय मैं अपने आपको भली प्रकार से पहचान रहा हूं। मैं अपने उत्तरदायित्वों से भाग नहीं रहा हूं। अपनी जिम्मेवारियों से विमुख नहीं हो रहा हूं अपितु मैं पूर्णता के साथ तुम्हारे साथ समझौता कर लेना चाहता हूं, जिससे कि तुम आने वाले जीवन में परेशानियां अनुभव न करो।

हो सकता है मैं तुम्हें वर्तमान जीवन में उतना अधिक प्यार न दे सकूं जितना कि विवाह के तुरन्त बाद एक पति अपनी पत्नी को देता है, हो सकता है मैं इस प्रकार के इन्द्र धनुषी ख्वाब तुम्हारे सामने नहीं लहरा सकूं, जो कि इस उम्र में लहराने स्वाभाविक हैं। यह भी हो सकता है कि मैं रसिक और मधुर बातें, गुपचुप संभाषण, चुहल, हंसी-मजाक, तुम्हारे सामने नहीं कर सकूं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं तुमसे उदासीन हूं या तुम्हारी उपेक्षा कर रहा हूं।

जब मैंने विवाह कर ही लिया है तो भली प्रकार से सोच-विचार लिया है। मेरा एक कर्त्तव्य जहां अपनी आत्मा की उन्नति करना है वहीं दूसरी ओर अपने माता-पिता की इच्छाओं की पूर्ति करना भी है। जिस कार्य से उन्हें सुख मिलता है वह कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है। एक पुत्र का यह धर्म है कि वह अपने पिता के विचारों को मान्यता दे, माता के कथन का आदर करे और उनको अप्रसन्न करके जीवित न रहे। मैंने ऐसा ही अनुभव किया था कि उन्हें मेरा विवाह होने से ज्यादा प्रसन्नता होगी, उन्होंने भी इस बात को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया था और एक दिन तो बातचीत में उन्होंने यहां तक कह दिया था कि यदि तुम माता-पिता का ऋण उतारने को कह रहे हो तो वह ऋण तभी उतर सकता है जब तुम हमारे कहने को मान्यता दो और विवाह कर लो। मैंने उसी दिन विवाह की स्वीकृति दे दी थी, जिसकी परिणति तुम्हारें साथ विवाह है।

इतना होने पर भी मैं तुम्हारी भावनाओं को समझ रहा हूं, तुम्हारी इच्छाओं को चकनाचूर कर देने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, तुम्हारी मान्यताओं को खण्डित

करना मेरा धर्म नहीं है, मैं नहीं ाहता हूं कि तुम अपने जीवन में उदासीनता के साथ जीवन के क्षण व्यतीत करो, मैं तु-हें उतना ही सम्मान देता हूं जितना मैं अपने आपको सम्मान दे रहा हूं।

मेरी उपेक्षा को तुम किसी और रंग में न ले लो, इसीलिये आज मैं अपने मन की बात साफ-साफ कह देना उचित समझता हूं। मैंने कई बार अपने मन को दृढ़ किया जिससे कि मैं तुम्हारे सामने सारी बात खोलकर रख दूं, परन्तु जब भी मैं कुछ कहने के लिये उद्यत होता हूं तो तुम्हारा मासूम चेहरा देखकर मैं कुछ भी कह नहीं पाता और चुपचाप लेट जाता हूं। मैंने कई बार अपनी भावनाओं को स्पष्टता के साथ कहने के लिये प्रयत्न किया, पर हर बार तुम्हारे चेहरे का भोलापन मुझे कहने से रोके रहा। तुमने स्वयं यह देखा होगा कि मेरी सारी रात जागते हुए बीत जाती है, मैं करवटें बदलता रहता हूं और उस समय मेरा पूरा दिमाग परस्पर संघर्ष कर रहा होता है, मैं विभिन्न विचारधाराओं के झंझावातों में उलझ जाता हूं, इस प्रकार धीरे-धीरे अपने सीने पर एक बोझ-सा अनुभव करने लगा हूं। जब तक मैं अपनी सारी बातें तुम्हारे सामने खोलकर नहीं रख दूंगा तव तक मैं इस बोझ को अलग नहीं कर पाऊंगा और शायद तव तक मैं शान्ति से कुछ भी नहीं कर पाऊंगा।

जैसा कि मैंने तुम्हें बताया कि मेरा जन्म सामान्य रूप से जीवन बिताने के लिये नहीं है, मैं सामान्य रूप से रहना भी नहीं चाहता, मैं नहीं चाहता कि अपनी सुख-सुविधाओं के लिये प्रयत्न करूं, जीवन में अर्थ को ही सबसे अधिक मान्यता दूं और अपनी पत्नी के साथ हंसी-मजाक, राग-रंग, के साथ अपने ये कीमती वर्ष बिता दूं।

शायद मेरा जन्म इस प्रकार के कार्यों के लिये हुआ ही नहीं है। मैं प्रारंभ से ही अन्तर्मुखी व्यक्तित्व लिये हुए रहा हूं, बहुत ही कम बोलकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता रहा हूं, क्योंकि मेरे मन में छटपटाहट है, मेरे दिल में एक ऐसी आग है जिसे दूसरा सही प्रकार से समझ नहीं पाता है। मैं इस आग को, इस छटपटाहट को जितना ही ज्यादा दबाने का प्रयत्न करता हूं यह आग उतनी ही ज्यादा भड़कती जाती है, यह छटपटाहट उतनी ही ज्यादा बढ़ती जाती है और पिछले चार महीने में इसी आग को दबाये हुए तुम्हारे पास आता रहा हूं, परन्तु मैं अपने होठों से एक शब्द भी नहीं कह पाया हूं, इसीलिये आज मुझे इस पत्र का सहारा लेना पड़ा है जिससे कि मैं अपनी बात को पूर्णता के साथ तुम्हारे सामने रख सकूं और जीवन के इन प्रारम्भिक क्षणों में एक समझौता कर सकूं जिससे कि मेरे मन में किसी प्रकार का मलाल न रहे, तुम्हारे मन में किसी प्रकार की विपरीत भावना न बने।

मैं ब्राह्मण युवक हूं और मेरे मन में यह भावना है कि जब तक मैं इस भारत की खोई हुई विद्या को प्राप्त नहीं कर लूंगा तब तक मेरा जीना व्यर्थ है। मेरे पूर्वज संसार के सर्वश्रेष्ठ विचारवान व्यक्ति रहे हैं, उन्होंने हमारे समाज को जो मान्यताएं दी हैं, जो विचारसूत्र प्रदान किये हैं वे अपने आप में अप्रतिम हैं, उन्हीं सूत्रों के सहारे उनका

नाम आज तक भी हमारा समाज आदर के साथ ले रहा है। गौतम, कणाद, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि वे विचारवान युगपुरुष थे जिन्होंने अपने जीवन को तिल-तिल करके जलाया होगा, जीवन का अधिकांश भाग अपनी साधना में लगा दिया होगा और संसार के सारे सुखों से अपने आपको अलग हटाकर जो कुछ उपलब्धियां प्राप्त कीं, उन अमृत कणों से आज तक हमारा समाज जीवन-रस प्राप्त करता रहा है।

परन्तु अब मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूं कि उनका यह जीवन स्रोत सूख रहा है। यह बात नहीं है कि उनके स्रोत में किसी प्रकार की न्यूनता आ गई है, अपितु आज हमारा समाज एक प्रकार से पथभ्रष्ट हो गया है, उसकी विचारधारा बदल गई है, गुलामी की जंजीरों में जकड़ कर वे अपने आपको भुला बैठे हैं। हमारा उच्चतम ज्योतिष ज्ञान आज विदेशियों द्वारा पैरों तले रोंदा जा रहा है। हमारे मंत्री की खिल्ली उड़ाई जा रही है, हमारे तंत्र-यंत्र और हमारी साधना एक उपहास का पात्र बन गई है, और यदि इसी प्रकार की स्थिति बनी रही तो एक दिन हम इन अमूल्य विद्याओं से हाथ धो बैठेंगे। हमारे पूर्वजों ने, हमारे ऋषियों ने, जो कुछ ज्ञान, जो कुछ विद्याएं अपने शरीर को जलाकर प्राप्त की थीं वे धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। एक प्रकार से हम कृतघ्न होते जा रहे हैं और यह एक दुखद स्थिति है, जब-जब भी मैं यह सोचता हूं तब मेरे हृदय में एक सिहरन-सी पैंदा हो जाती है कि हम कितने पथभ्रष्ट हो गये हैं, हमारा समाज किस प्रकार से ऐसे रास्ते पर चलने लग गया है जिसका अन्त अन्धकार की काल-कोठरी है। मैं जान-बूझकर इस प्रकार के अंधेरे पथ का राही नहीं हो सकता। मेरे मन में यही एक आग है जो तिल-तिल करके मुझे जला रही है और चाहते हुए भी मैं आनन्द अनुभव नहीं कर पा रहा हूं, चाहते हुए भी में राग-रंग में अपने आपको लिप्त नहीं कर पा रहा हूं।

इस उम्र में जब व्यक्ति चांद से बातें करता है, दूधिया चांदनी में अपनी प्रियतमा से संभाषण कर आनन्द अनुभव करता है, उस समय मैं अपनी ही आग से भीतर-ही-भीतर दहकता जाता हूं और तिल-तिल कर अपने आपको जलता हुआ अनुभव करता रहता हूं।

मेरी एक ही इच्छा है कि मैं साधारण व्यक्ति की तरह नहीं मरूं, साधारण रूप से धन कमाकर पेट भरना मेरा अभीष्ट नहीं है, राग-रंग में मस्त होकर अपने जीवन को बिता देना मेरा उद्देश्य नहीं है, मेरा लक्ष्य, मेरा उद्देश्य केवल मात्र यही है कि मैं ज्योतिष को अत्यन्त ही उच्च स्थान पर स्थापित कर सकूं और पूरे संसार को यह दिखा सकूं कि भारतवर्ष की यह विद्या अपने आपमें अन्यतम है, इस विद्या के माध्यम से ही हम इस विश्व में अग्रणी रहे हैं। इसके अलावा तंत्र-मंत्र आदि हमारे सामाजिक जीवन के आधार रहे हैं, भारत की चेतना या उसका स्पन्दन इस प्रकार की साधनाएं ही हैं, जिसकी वजह से भारत भारत बन सका है और पूरे संसार का गौरवमय शिरमौर बन सका है।

परन्तु मैं देख रहा हूं कि मेरा भारत विदेशियों के द्वारा रोंदा जा रहा है। हम प्राणयुक्त होते हुए भी चेतनाशून्य हैं। हम अपनी भाषा को भुला बैठे हैं, अपने पूर्वजों के गौरव को विस्मरण कर बैठे हैं और अपने आपको पहचानने से इन्कार करने में गौरव अनुभव करने लगे हैं।

इसके हल के लिये दो ही उपाय हैं एक है राजनीति के माध्यम से इस कार्य को किया जाय और दूसरा साधना के द्वारा अपने पूर्वजों की थाती, जो लुप्त होती जा रही है उसे पुनः सहेज कर प्राप्त किया जाय।

पहला रास्ता मेरे लिये उपयुक्त नहीं है, और मैं उस रास्ते पर नहीं बढ़ सकता, इसकी बजाय दूसरे रास्ते को अपनाना मैं श्रेयस्कर समझता हूं।

जीवन में जिनकी अलग विचारधाराएं होती हैं जो लकीर से हट कर कुछ करना चाहते हैं लोग उसे पागल कहते हैं, और एक पागल की पत्नी बनना कितना दुखदायक होता है, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो, परन्तु मैं इस बिन्दु पर तुमसे समझौता करने के लिये ही पंक्तियां लिख रहा हूं। मैं चाहता हूं कि तुम मेरे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनो। मुझे मेरे जीवन के लक्ष्य तक पहुंचाने में मदद करो, और मैं जो कुछ बनना चाहता हूं, जो कुछ करना चाहता हूं उसमें तुम भागीदार बनो, यही मेरी आकांक्षा है।

हो सकता है मेरे विचार तुम्हारे लिये अनुकूल न हों। इस समय तुम्हारे मन में इस प्रकार की बातें अनुकूलता पैदा कर ही नहीं सकतीं। तुम्हारे जीवन का यह यौवनकाल है और इस काल की अलग ही फिलोसोफी होती है, जो समय तुम्हारे लिये राग-रंग, मस्ती और मौज का है उस समय मैं तुम्हारे सामने अलगाव की बातें कर रहा हूं, तुम्हारे लिए मस्ती और प्यार के जो दिन होने चाहिए उन दिनों में मैं दूसरी विचारधारा तुम्हारे सामने रख रहा हूं, परन्तु मैं यह सब कहने के लिये मजबूर हूं और मैं चाहता हूं कि तुम मेरी इन भावनाओं को भली प्रकार से समझो, तब तुम्हें यह महसूस होगा कि मैंने जो रास्ता चुना है वह असामान्य रास्ता चुनने वाले लाखों में दो-चार ही होते हैं। जो फूलों की राह छोड़कर कांटों की पगडंडी पर बढ़ जाते हैं, आनन्द का रास्ता छोड़कर अभाव के रास्ते पर चल पड़ते हैं, भोग विलास और ऐश-आराम का परित्याग कर वे अपने लिये परेशानियां और कष्टों को निमंत्रण दे देते हैं, परन्तु इस बात में भी सत्यता है कि इस प्रकार का रास्ता चुनने वाले बहुत ही कम होते हैं और ऐसे व्यक्ति ही आगे चलकर समाज को नेतृत्व दे सकते हैं, देश को नई राह दिखा सकते हैं और उनके द्वारा कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न होते हैं जिनका लाभ आने वाली पीढ़ियां उठाती हैं, उनके बताये हुए या उनके किये गये कार्यों से वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करने लगती हैं।

मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं इस समाज में रहकर कुछ भी नहीं कर पाऊंगा, इस घर में रहकर मैं अपने लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर सकूंगा, आनन्द और सुख

भोग के द्वारा उस रास्ते पर या उस बिन्दु पर नहीं पहुंच सकूंगा जो मेरा ध्येय है, अतः उस ध्येय को प्राप्त करने के लिये मुझे इस घर को छोड़ना पड़ेगा, इस समाज से अपने आपको अलग करना पड़ेगा, तभी मैं कुछ विशिष्ट प्राप्त कर सकूंगा और उस विशिष्टता की प्राप्ति के बाद ही मैं अपने आपको पूर्णता दे सकूंगा।

क्योंकि मेरा एकमात्र ध्येय लुप्त विद्या को प्रकाशित करना है, ज्योतिष की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना है, और इसके साथ-ही-साथ मंत्र शास्त्र आदि के द्वारा जो आश्चर्यजनक सिद्धियां हमारे पूर्वजों के पास थीं उनको वापस जन-साधारण के लिये सुलभ बनाना है। इसकी पूर्ति घर में बैठकर नहीं हो सकती, समाज के बीच उदर पूर्ति करने में इन विद्याओं को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि जो थोड़े बहुत साधक इस संसार में बच गये हैं और जिनके पास इस प्रकार की अलौकिक सिद्धियां हैं, वे भीड़-भाड़ वाले इलाके में नहीं हैं। वे मखमली गद्दों पर नहीं बैठे हैं, वे आराम से जीवन यापन करने वालों के बीच नहीं हैं, अपितु वे उन कन्दराओं में हैं जहां भौतिक सुखों का पूर्णतः अभाव है, वे उन जंगलों में हैं जहां पग-पग पर संकट है, वे उन स्थानों पर हैं जहां स्वार्थ नहीं है, छल और कपट नहीं है, धोखा और अत्याचार नहीं है, क्योंकि उन्हें इन बातों से कोई सरोकार नहीं है।

मैं उन लोगों के पास पहुंचना चाहता हूं जो वास्तव में ही सिद्ध पुरुष हैं, जो वास्तव में ही इन विद्याओं के विशिष्ट जानकार हैं, इसके लिये मुझे जंगलों में भटकना पड़ेगा, पहाड़ों की गुफाओं में जीवन को बिताना पड़ेगा, और पग-पग पर कष्टों और अभावों को झेलना पड़ेगा।

इस प्रकार की विद्या तभी प्राप्त हो सकती है जब मैं पूर्णतः वीतरागी बनूं, और सारे सुखों का परित्याग कर दूं, अपने जीवन का मोह छोड़कर उन साधुओं, संन्यासियों और तपस्वियों की खोज करूं जो कि विरले स्थानों पर ही विचरण करते है, उनका पहचानना भी आसान नहीं है, मैं नहीं जानता कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हो सकूंगा या नहीं, परन्तु मेरी आत्मा बार-बार इस बात को कह रही है, कि तुम्हारे लिए वही रास्ता श्रेयस्कर है, उसी रास्ते पर चलकर तुम कुछ प्राप्त कर सकोगे और आने वाली पीढ़ियों के लिये इस प्रकार की विद्या सुरक्षित रख सकोगे।

हो सकता है इस प्रकार की खोज में मैं समाप्त हो जाऊं। यह भी हो सकता है कि मैं किसी हिंसक पशु की भेंट चढ़ जाऊं और यह भी संभव है कि मेरे यौवन के अमूल्य वर्ष व्यर्थ में ही बीत जायं और मैं कुछ भी प्राप्त न कर सकूं, परन्तु इन चिन्ताओं से या इन घटनाओं से विचलित होना मैं नहीं चाहता, इन आशंकाओं को देखते हुए मैं यदि मन मारकर घर में बैठ जाऊंगा तो मेरी आत्मा मुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगी। साधारण जीवन जीने की अपेक्षा मैं हिंसक पशु का भक्ष्य बन जाना ज्यादा श्रेयस्कर समझता हूं, यह मेरा निश्चय है कि या तो मैं कुछ प्राप्त करके ही घर लौटूंगा या अपने आपको समाप्त कर दूंगा, परन्तु यह बात निश्चित है कि मैं खाली हाथ घर नहीं लौटूंगा।

मेरी ये सारी बातें तुम्हारे लिये कष्टदायक हैं, मैं यह भी अनुभव कर रहा हूं कि इस प्रकार तुम्हें कष्ट देना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। जो समय तुम्हारे आनन्द का समय है, उन क्षणों में मैं तुम्हें अभाव दे दूं, यह उचित नहीं है। यह समय तुम्हारे यौवन का है, राग-रंग और मस्ती का है, इन प्रसन्नता के क्षणों को मैं उदासी और लम्बी प्रतीक्षा में बदल दूं यह मेरा धर्म नहीं हैं, परन्तु फिर भी जब दो स्थितियों की तुलना करता हूं तो मुझे वह स्थिति ज्यादा प्रिय है और एक बड़े कार्य के लिये यदि मैं अपने आपको त्याग देता हूं तो एक पत्नी के रूप में तुमसे भी अपेक्षा करता हूं कि तुम मुझे इस कार्य में सहायता दोगी, मेरे लिये बन्धन नहीं बनोगी।

यह निश्चित है कि मुझसे विवाह करके तुम लाभ में नहीं रही हो, यह भी निश्चित है कि मैं तुम्हें सुख के स्थान पर दुख ही दे रहा हूं, आनन्द और प्रसन्नता के क्षणों में अभाव और परेशानियां प्रदान कर रहा हूं, तुम्हारी उमंगों और आशाओं पर मैं एक प्रकार से स्याह आवरण बिछा रहा हूं और इस प्रकार से तुम्हारे जीवन की सारी स्थितियां, सारी उमंगें समाप्त कर रहा हूं।

मैं नहीं कह सकता कि यहां से जाने के बाद मैं वापिस कब लौटूंगा ? मैं यह भी नहीं जानता कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हो भी सकूंगा। आज तुम यौवनवती हो, मैं जब वापिस लौटूंगा तब तक तुम्हारा यौवन अक्षुण्ण रह भी सकेगा या नहीं ? मैं जानता हूं कि मैं जल्दी वापिस नहीं लौट पाऊंगा। हो सकता है कि मुझे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में दस साल या पन्द्रह साल लग जाएं, और ये दस और पन्द्रह वर्ष तुम्हारे लिये कितने कष्टदायक होंगे इसकी मैं कल्पना कर सकता हूं।

मैं जानता हूं कि इन १५ वर्षों में तुम्हारा यौवन चिन्ताओं में घुल जायगा। तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी और प्रफुल्लता है वह दुखों के आवरण से मिट जायगी, तुम्हारा जीवन एक अभिशापित जीवन बन कर रह जायगा, परन्तु इतना होते हुए भी मैं तुमसे इस प्रकार की जीवन की याचना करता हूं, जिस रास्ते पर मैं चल रहा हूं या जिस पथ पर मैंने जाने की तैयारी की है, वह सुगम और सुखदायक रास्ता नहीं है, अपितु इस रास्ते पर पग-पग पर कांटे बिछे हैं, हर क्षण, अभाव के साथ जन्म लेकर परेशानियों के साथ व्यतीत होगा। इस रास्ते पर मेरा सारा यौवन धुल जायगा। मेरे चेहरे की कांति अभावों के कारण धूमिल पड़ जायगी, और एक पूरा जीवन अभावों, कष्टों और परेशानियों का केन्द्र बन जायगा, परन्तु फिर भी यह निश्चित है, कि मैं खाली हाथ नहीं लौटूंगा और अपना तथा तुम्हारे यौवन का बलिदान देकर जो कुछ भी प्राप्त कर सकूंगा वह मेरा नहीं होगा अपितु पूरे समाज का होगा, उस पर केवल तुम्हारा और मेरा ही अधिकार नहीं होगा अपितु पूरे देश का अधिकार होगा, परन्तु फिर भी मेरे लिये वह क्षण अत्यन्त ही सुखदायक होगा जब कि मैं कुछ प्राप्त कर सकूंगा।

यदि मैं अपने जीवन में कुछ बन सका तो इसका सारा श्रेय तुम्हारा होगा,

क्योंकि इसके पीछे तुम्हारा त्याग होगा, तुम्हारा बलिदान होगा और तुम्हारे सुख और आनन्द की आहुति उसके पीछे होगी।

आज तुम्हारे चेहरे पर जो ताजगी, प्रफुल्लता और चमक मैं देख रहा हूं, शायद वापिस आने पर वह मुझे दिखाई न दे। यह भी हो सकता है कि उस समय तुम्हारा शरीर एक लकड़ी की तरह शुष्क और ठूंठ की तरह हो जाय, हो सकता है कि तुम्हारे चेहरे पर जरूरत से ज्यादा झुर्रियां देखूं, परन्तु फिर भी मैं अपने संकल्प पर दृढ़ हूं, हो सकता है मैं वापस तुम्हें नहीं देख सकूं या तुम्हें नहीं मिल सकूं, मेरे आने से पूर्व ही तुम मुझे प्राप्त नहीं हो सको या उस अभियान में मैं ही समाप्त हो जाऊं, इस समय मैं कुछ भी नहीं कह सकता। मेरे चारों तरफ एक झंझावात है और उस झंझावात में मैं कुछ भी नहीं देख पा रहा हूं। इतना होने पर भी मैं तुमसे सहायता की उम्मीद कर रहा हूं, और मुझे विश्वास है तुम मुझे इस पथ पर आगे बढ़ने के लिए रोकोगी नहीं, अपितु जोश के साथ, उत्साह के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करोगी।

शास्त्रों में नारी को सहचरी कहा है, इसका तात्पर्य है कि वह मानव के साथ बराबर कदम-से-कदम मिलाकर चलें, इसका दूसरा तात्पर्य यह है कि वह अपने पति की उन्नति में, उसकी प्रगति में सहायक बने, और उसकी आज्ञा का पूर्णता के साथ पालन करे। मैं तुम से ऐसी ही आकांक्षा रखता हूं। ऋषियों ने नारी को पृथ्वी की तरह सहनशील बताया है, मेरा विश्वास है तुम में ये सारे गुण अवश्य ही होंगे जो कि एक पृथ्वी में होते हैं, वह हर क्षण, हर पल सहन करती रहती है और मैं तुम से एक ही अकांक्षा रखता हूं कि तुम सहनशीलता की प्रतिमूर्ति बन सको।

हो सकता है तुम इस पत्र को पढ़कर मुझे मना कर दोगी, पर मना करने से पूर्व एक बार भली प्रकार से सोच लेना कि क्या यह तुम्हारे लिए उचित होगा ? क्या तुम्हारा सारा जीवन एक सामान्य नारी की तरह व्यतीत हो जाए ? क्या तुम चाहती हो कि तुम इन छोटे मोटे घर के कार्यों को करती हुई पशु की तरह अपनी जिन्दगी व्यतीत कर दो ? क्या बच्चों को पैदा करना ही गृहस्थ का सर्वोच्च लक्ष्य है ? क्या हमारा जीवन कीड़े-मकोड़े की तरह भटक-भटक कर मर जाने के लिए है ? निश्चय ही तुम ऐसा नहीं चाहोगी, प्रत्येक नारी की यह कामना होती है कि उसका पति एक विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न हो। वह सामान्य प्राणी न हो, अपितु लोगों से अलग हटकर हो, उसके नाम से लोग परिचित हों, उसके ज्ञान से आने वाली पीढ़ियां लाभान्वित हों, और वह मानव जाति के लिए एक विशिष्ट योगदान देने में सहायक हो। तुम्हारी कामना भी यह होगी और इसी कामना की पूर्ति के लिए मैं जाना चाहता हूं।

तुम स्वयं सोचो कि यदि मैं कुछ प्राप्त करके वापिस आ सका तो वह हमारे जीवन का कितना सुखमय दिन होगा जबकि मैं कुछ प्राप्त कर सकूंगा, कुछ विशिष्ट बन सकूंगा, कुछ ऐसी उपलब्धियां मेरे पास होंगी जो कि अपने आप में अन्यतम होगी

और उस समय गौरव के साथ तुम मेरा नाम उच्चारण कर सकोगी।

लोग इस बात को अनुभव करेंगे कि मेरे निर्माण के पीछे तुम्हारा बहुत बड़ा सहयोग है, मेरे जीवन के तन्तुओं को अनुकूल बनाने में तुम्हारा बहुत कुछ योगदान रहा है, और तुम्हारे त्याग, तुम्हारे बलिदान की नींव पर ही मैं कुछ बन सकूंगा तथा अपने व्यक्तित्व को, अपने ब्राह्मणत्व को उजागर कर सकूंगा।

यह पत्र मैं बहुत दुखी मन से लिख रहा हूं, क्योंकि इस पत्र के प्रत्येक अक्षर के पीछे मेरा स्वार्थ है और जितना मेरा स्वार्थ है उतना ही तुम्हारा त्याग है, परन्तु फिर भी मैं प्रसन्नता के साथ यह पत्र तुम्हें दे रहा हूं। मैं इस बात को (जो कुछ इस पत्र में लिखा है) अपने होठों से तुम्हें कहना चाहता था, तुम्हें समझाना चाहता था, परन्तु जब भी मैंने इस प्रकार का उत्क्रम किया तब तक मैं रुक गया, क्योंकि मेरे सामने तुम्हारा शान्त और सरल चेहरा आ जाता था। जब-जब भी अपने विचारों को कहने के लिए उद्यत हुआ तब-तब तुम्हारी आयु, तुम्हारी भावनाएं, तुम्हारी उमंगें मेरे होठों को सी देती थीं, और मैं बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ नहीं कह पा रहा था। यह एक प्रकार की मेरी विवशता थी, और इस विवशता के कारण ही मेरा बहुत समय इस उधेड़बुन में बीत गया कि मैं तुम्हें कहूं या नहीं ?

एक बार तो ऐसा भी विचार आया कि मैं अपनी बात तुम्हें नहीं कह सकूंगा, अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए चुपचाप घर से निकल जाऊं, किसी को कानोंकान खबर तक न हो। परन्तु फिर मेरे पैरों ने अपने आपको रोक लिया, मेरे मन ने कहा यह उचित कदम नहीं होगा, जिसके साथ सम्बन्ध बना है, उसको सारी बात कह देना ज्यादा उचित होगा, अन्यथा वह कुछ भी नहीं सोच सकेगी, कुछ भी नहीं समझ सकेगी और उसका मानस दिग्भ्रमित होकर रह जाएगा।

इससे पूर्व मैं कई पत्र लिखकर फाड़ चुका हूं, परन्तु तुम्हारी आंखों की सजलता के सामने रखने की हिम्मत नहीं कर सका हूं, पर आज कड़े मन से अपनी बात लिख दी है और तुम्हारे सामने इस पत्र के द्वारा रख दी है।

मैं इस पत्र के उत्तर में अस्वीकृति नहीं चाहता हूं। मना प्राप्त करने के लिए यह पत्र तुम्हें नहीं लिखा। मैं केवल स्वीकृति चाहता हूं और मुझे विश्वास है तुम प्रसन्नता के साथ उत्साह और उमंग के साथ मुझे स्वीकृति दोगी।

मेरी आत्मा के सारे सुख तुम्हारे पास गिरवी हैं। मैं केवल यहां से भूख, परेशानी, कष्ट, अभाव और कठिनाइयां लेकर जा रहा हूं। आगे का जीवन कांटों से भरा है अंधकार में टटोल-टटोल कर आगे बढ़ना है, किसी प्रकार की कोई किरण मेरे सामने नहीं है, परन्तु फिर भी मेरी आत्मा का प्रकाश मेरे साथ है और वह मुझे सही रास्ता दिखा सकेगा।

इतना विश्वास करो कि यदि मैं लौटा तो खाली हाथ नहीं लौटूंगा, क्योंकि मेरी आत्मा, मेरा विश्वास, मेरे साथ है और इससे भी बढ़कर मेरे साथ है तुम्हारा त्याग, तुम्हारा स्नेह, तुम्हारी कामनाएं और तुम्हारा बलिदान।

मैं तुम्हारी झोली में इस समय खुशियां डालकर नहीं जा रहा हूं, इस समय तो मैं एक लम्वी अन्तहीन उदासी, वेबसी, वेचैनी और इन्तजार ही देकर जा रहा हूं, जिसे तुम्हें पार करना है। फिर भी इतना विश्वास रखना कि मैं अवश्य लौटूंगा, जरूर लौटकर आऊँगा।

मेरी समस्त शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं, मेरे प्राणों का अमृत वर्णन तुम्हारे पथ को सुखदायक वना सकेगा, ऐसी मुझे आशा है।

स्नेह युक्त
(नारायणदत्त श्रीमाली)

प्रेषक : डा० नारायणदत्त श्रीमाली।
स्थान : अज्ञात
प्राप्त कर्त्ता : भगवती श्रीमाली
आलोक : यह पत्र डॉ० श्रीमाली जी ने अपनी पत्नी को घर से जाने के लगभग ३ वर्ष बाद लिखा था और इन तीन वर्षों में उन्होंने कितना अधिक मानसिक और शरीरिक संघर्ष किया था, उसकी एक क्षीण झांकी इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होती है। साधक को कितना अधिक मानसिक संघर्ष करना पड़ता है यह पत्र उसका प्रमाण है और साधकों के लिये प्रकाशस्तम्भ भी।

प्रियतमा भगवती !

घर को छोड़े हुए आज लगभग ३ वर्ष बीत गये हैं, पूरे एक हजार दिन, कुछ इससे ज्यादा ही, पर इस लम्वी अवधि में मैंने एक बार भी घर से सम्पर्क स्थापित नहीं किया, एक बार भी पत्र के द्वारा अपने वारे में मैंने कुछ नहीं लिखा, एक बार भी अपनी व्यथा, अपने दु:ख दर्द को तुम्हारे पास नहीं भेज सका, परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि मैं तुम्हें विस्मरण कर बैठा हूं। घर को पूरी तरह से भुला बैठा हूं, मुझे इस घर की बराबर याद बनी रही है, और प्रत्येक क्षण मैं तुम्हारे दु:ख दर्द के चिन्तन में भागीदार बना रहा हूं।

इतना होते हुए भी मैं नहीं चाहता था कि मेरा और घर का सम्पर्क सूत्र जुड़ा रहे, क्योंकि इससे फिर एक समस्या पैदा हो जाती। मेरा हृदय डांवाडोल हो जाता। संभव है मेरे पांवों में फिर से बेड़ी डालने की कोशिश की जाती, मुझे विचलित करने का प्रयत्न किया जाता और इसीलिये मैं स्वयं अपने स्वयं के डर से भागता रहा…।

मैं जानता हूं कि ये तीन वर्ष कम नहीं हैं। पूरे १००० दिन तुम से अलग होकर मैंने जंगलों में बिता दिये हैं। मुझे वह क्षण याद हैं जब मैं तुमसे अलग हो रहा था। तुम्हारी आंखों में जो झरझर आंसू बह रहे थे उनकी टीस इस समय भी मेरे

हृदय को कुरेद रही है, तब से वे आंखें मेरे हृदय को बराबर बेधती रही हैं। जितना मैं अपने मन को समझाता रहा हूं, वह उतना ही ज्यादा चीत्कार करता रहा है···उफ्!

मैं देख रहा था कि मेरा पत्र पढ़कर तुम बुझ-सी गई हो, चेहरे पर जैसे स्याह रंग पुत गया हो, मेरे पत्र ने तुम्हारे यौवन को एक बारगी बुढ़ापे की ओर फेंक दिया हो—तुम्हारी आंखों की चमक, तुम्हारे यौवन की दीप्ति, तुम्हारे मुखड़े का गुलाबीपन अकेलेपन की काल कोठरी में धकेल दिया हो···।

यद्यपि पत्र को तुम्हें देने के बाद मैं चार दिन उस घर में रहा हूं, परन्तु उन चार दिनों में तुम चाह कर भी खाना नहीं खा सकीं। केवल मुझे दिखाने के लिए थोड़ा बहुत मुंह में डाल लेतीं और उस कोर में भी गर्म आंसुओं का कितना बड़ा भाग मिल रहा था—यह मैं देख रहा था।

पत्र देने से पूर्व तुम्हारे चेहरे पर जो प्रफुल्लता थी वह एक प्रकार से समाप्त हो गई थी, जैसे कि किसी खिले हुए गुलाब पर पाला पड़ गया हो। जिस प्रकार तुषारापात से खिलती हुई कली मुरझा जाती है, ठीक तुम्हारे चेहरे की स्थिति भी वैसी ही हो गई। तुम्हारे चेहरे पर विवाह के बाद मैंने लालिमा देखी थी, परन्तु रवाना होते समय वह लालिमा समाप्त हो गई थी और एक स्याह-सी झांई चेहरे पर छा गई थी। तुमने उन चार दिनों को कितनी हताशा और निराशा के साथ व्यतीत किया है उसे मैं भली प्रकार से समझ रहा था।

तुम्हारी स्थिति ठीक वैसी ही हो गई थी जैसी कि किसी निर्धन को धन प्राप्त होने के बाद, उससे वह धन पुनः तुरन्त छीन लिया जाय। तुम्हारे होंठ फड़-फड़ाकर बहुत कुछ कहना चाहते थे, परन्तु उन होठों पर आंसुओं की लम्बी लकीर बंध जाती थी। तुम्हारी आंखें दिशा शून्य-सी होकर सफेद हो गई थीं, उनमें एक सूनापन-सा भर गया था और मैं देख रहा था कि तुम्हारा अस्तित्व उस घर में होते हुए भी नहीं के बराबर हो गया था।

यह सही है कि मैं उन चार दिनों को बहुत कठिनाई के साथ झेल पाया। जब भी तुम मेरे सामने होतीं मैं अपने आपको अपराधी महसूस करने लगता, तुम्हें बताऊं कि उन चार दिनों में मैंने अपने आप को कितनी बार धिक्कारा होगा, फटकारा होगा, जलील किया होगा, मुझे कोई अधिकार नहीं था कि मैं किसी की इच्छाओं को समाप्त करने में भागीदार बनूं। किसी मासूम बालिका की भावनाओं को चकनाचूर करूं, उसकी उमंगों पर पानी फेर दूं, परन्तु मैं विवश था। सच कहता हूं मैंने इन विवशता के क्षणों में अपने आपको तिल-तिल करके जलाया है। उन चार दिनों में परस्पर कितने विरोधी विचार मेरे दिमाग में घुमड़े होंगे, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो, विचारों के आलोड़न से मेरा माथा भारी हो गया था। ऐसा लग रहा था कि जैसे मेरे दिमाग की नसें फट जायेंगी, सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और मैं पागल हो जाऊंगा।

मैं एक क्षण के लिए भी तुम्हारा सामना नहीं कर पा रहा था, तुम्हारा चेहरा

बुझ गया था, आंखें भावशून्य हो गई थीं, होंठ फीके और सफेद पड़ गये थे और चेहरे पर चिन्ता की स्याह परत छा गई थी। तुम बहुत कुछ कहना चाहती थीं परन्तु पग-पग पर तुम्हारी लाज ने तुम्हें रोक दिया। एक प्रकार से तुम अपने आपको बेवस अनुभव करने लगी थीं। चिन्ता, वियोग और कष्ट के शोलों में तुम दहक रही थीं और मैं जड़वत तुम्हें देखकर भी नहीं देख रहा था।

उस दिन रात्रि को तुमने आंसुओं से सरावोर होकर जो कुछ कहा था, क्या मैं उसे भूल सकता हूं। तुमने विवाह के बाद पहली बार अपने होंठ खोले थे, पहली बार अपगे मन की भावनाओं को मेरे सामने रखने का प्रयत्न किया था, पहली वार तुम अपने दिमाग के विचारों को वाहर निकालने के लिये प्रयत्नशील हो रही थी। पर क्या तुम कुछ कह सकी थी, होंठों ने तुम्हारा साथ नहीं दिया था, केवल आंखों ने आंसुओं की भाषा में वहुत कुछ—बहुत कुछ कह दिया था—और वह पूरी रात आंसुओं के साथ बीत गई, मुश्किल से तुमने कुछ शव्द कहे होंगे बाकी तुम्हारी व्यथा तुम्हारी वेदना और तुम्हारे कशिश की कहानी तो आंसुओं ने ही कही।

उस दिन मैं समझ पाया था कि आंसुओं में कहने की कितनी जवरदस्त क्षमता होती है। होंठ जो कुछ नहीं कह पाते आंसू उस वात को पूरी प्रामाणिकता के साथ कह देते हैं। सच कहता हूं उस रात की तुम्हारी हिचकियों ने वह सारी बात कह दी थी जो कि तुम हजार वर्षों में भी नहीं कह पाती। लाखों पन्नों के माध्यम से भी नहीं व्यक्त कर पातीं।

यह बात नहीं है कि मैं तुम्हारी भावनाओं को समझ नहीं पा रहा था। मैं तुम्हारे विचारों को, इच्छाओं और भावनाओं को भली प्रकार से समझ रहा था, परन्तु समझते हुए भी अनजान वनने की कोशिश कर रहा था। यह मेरा अपराध था और मैं उस अपराध को आज इस पत्र के माध्यम से स्वीकार करता हूं।

यह ठीक है कि मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सका हूं। मैंने तुम्हें दुख के अलावा कुछ भी नहीं दिया। यदि तुम मेरे स्थान पर किसी और युवक से शादी करतीं, तो निश्चय ही तुम वहां सुखी होतीं। तुम्हें पति का साहचर्य मिलता, उसकी मधुर बातों से आप्लावित होतीं, उसके साथ घूमती, फिरती, खिलखिलाती और अपने जीवन के स्वप्नों को साकार करतीं। तुम्हारा जीवन खुशियों से भर जाता, तुम्हारा प्रत्येक क्षण सरल हो जाता, मुखर और सार्थक हो जाता।

परन्तु इसके स्थान पर मैंने तुम्हें दुख और वेदना दी। खुशियों के स्थान पर एक अन्तहीन प्रतीक्षा, आंखों की चमक के स्थान पर आह और वेदना दी। तुम्हारे होठों पर मैंने भुस्कराहट के स्थान पर मौन दिया, और यह सब कुछ मैंने अपने और केवल अपने स्वार्थ के लिये ही किया। इस बिन्दु पर मैं स्वार्थ के निम्न धरातल पर खड़ा हूं, और तुम त्याग के बहुत ऊंचे बिन्दु पर खड़ी हो···यह सत्य है।

आज मैं अनुभव कर रहा हूं कि मुझे विवाह नहीं करना चाहिये था, क्योंकि मैं स्वयं दुख और परेशानियां देख सकता हूं, परन्तु किसी और को दुख देने का मुझे

क्या अधिकार था ? उसकी उमंगों को समाप्त करने का मुझे क्या हक था ? जब-जब भी मैं इन बातों को सोचता हूं तो मेरी आंखों की नींद उड़ जाती है, और पूरा दिमाग गरम होकर लावे की तरह उबलने लग जाता है।

मैं जानता हूं कि तुम उस माहोल में सुखी नहीं हो, क्योंकि हमारा समाज एक दकियानूसी और संकीर्ण विचारों से ग्रस्त है। जहां पग-पग पर नारी के पावों में बेड़ियां डाली हुई हैं, और उन बेड़ियों को देखकर, उसकी विवशता और छटपटाहट को देखकर पुरुष समाज अपने आप पर, अपने कृत्य और कुशलता पर प्रसन्न है।

पर ये बेड़ियां भी, अभाव दुःख और कठिनाइयां भी वह नारी झेल लेती है, यदि उसे पति का साहचर्य मिल जाय, परन्तु तुम्हें तो वह भी नहीं मिल पाया, जिसके भरोसे तुम इस घर में आई थीं। वह भरोसा ही अपने स्थान से भाग खड़ा हुआ, जिस विश्वास और सम्बल को लेकर तुम यहां आईं थीं। वह आधार ही तुम्हारे नीचे से हट गया, और तुम आधारहीन, बेबस, निरीह सी होकर दिन को शरीर तोड़ परिश्रम करती होगी, और रात के अंधेरे में आंसुओं से तकिये को सिसक-सिसक कर भिगोती होगी।

मैंने तुम्हारे शरीर की कोमलता को अनुभव किया है, और साथ ही अपने घर के कठोर कार्यों के भी निकट सम्पर्क में रहा हूं, जहां प्रातः चार बजे से रात बारह बजे तक काम के अलावा कुछ भी नहीं होता। जिस घर में आराम को अभिशाप समझा जाता है, चक्की चलाना, दूर स्थानों से पानी लाना, गायों को दुहना, भोजन पकाना, गोबर लीपना, और घर के सैकड़ों कार्यों को करने के बाद भी उपेक्षा और ताने सुनना—कितना कठिनाईपूर्ण, कितना दुखदायी होता होगा और तुम उस यंत्रण की चक्की में पिस कर तिल-तिल कर अपने आपको खाककर रही होगी।

अन्य स्त्रियों को तो दिन भर के जी तोड़ परिश्रम के बाद पति का कुछ साहचर्य मिल जाता है परन्तु तुम तो उससे भी बंचित हो। तुम्हारी आंखों में आंसू तैर जाते होंगे परन्तु उनको पोंछने वाला वहां कोई नहीं है, जब परिश्रम से शरीर टूट रहा होगा तब भी तुम्हारा हालचाल पूछने वाला उस परिवार में मुझे कोई नजर नहीं आता, क्योंकि मैंने उस परिवार को भोगा है जहां पर बहू को पैरों की जूती समझा जाता है। जहां पर यह देखा जाता है कि बहू का कार्य केवल पशु की तरह काम करना होता है, आराम की इच्छा करना उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर की बात होती है, वास्तव में ही तुम जितने कष्ट में, जितनी यंत्रणा पूर्ण स्थिति में अपना समय व्यतीत कर रही हो, उसको सोच कर मैं कांप उठता हूं। तुम्हारा दुर्वल शरीर इतने थपेड़ों को किस प्रकार से झेल पाता होगा, क्या इतने थपेड़े झेलने के बाद तुम आज तक बची भी रही हो या नहीं, मैं कुछ भी नहीं कह सकता।

परन्तु इस बात को भली प्रकार से समझ लो, कि जीवन में अलौकिकता तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि उसके पीछे कष्टों का लम्बा इतिहास हो, त्याग की नींव पर ही कुछ विशेष अलौकिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। यदि मैं चाहता तो एक

सामान्य जीवन जी सकता था। मुझे किसी प्रकार की कमी नहीं थी, घर में मां-बाप थे, भाई-बहन थे, सुन्दर पत्नी थी, आनन्ददायक क्षण थे और मैं कहीं पर भी छोटी-मोटी नौकरी कर अपना पेट पाल सकता था।

परन्तु तुम स्वयं यह सोचो कि ऐसे साधारण जीवन को क्या जीवन कहा जा सकता है ? मेरे जैसा पागल शायद ही कोई होगा जिसने खुशियों को छोड़ कर दुखों के साथ समझौता किया हो। आनन्द को त्याग कर अभावों के साथ रहने में प्रसन्नता अनुभव की है। भोग और विलास को छोड़कर परेशानियों, कष्टों और दुखों से नाता जोड़ा है, परन्तु मैंने यह सब अपने सीने पर पत्थर रखकर किया है, क्योंकि मेरी एक ही भावना, लालसा और इच्छा थी कि मैं सामान्य मानव बनकर नहीं रहूं। मेरे ब्राह्मणत्व को धिक्कार है, यदि मैं कुछ विशिष्टता प्राप्त नहीं कर सकूं, ज्योतिष के क्षेत्र में पूर्णता नहीं ला सका, तंत्रों और मंत्रों के अलौकिक रहस्य को उजागर नहीं कर सका, और मेरे देश की जो यह विशिष्ट थाती है उसे पुनः समाज को नहीं सौंप सका।

तुम्हें छोड़ने के बाद मैं एक क्षण भी आराम से नहीं जी सका हूं, इसके पीछे कोई भोग या वासना की बात नहीं है, अपितु मेरे मन की यह विडम्बना है कि मैं जिस रास्ते पर चला हूं क्या वह उचित है ? मैं जो कुछ करने जा रहा हूं, क्या मैं उस कार्य को कर सकूंगा। मेरे सामने जो लक्ष्य है क्या मैं उस लक्ष्य को पा सकूंगा। इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न मेरे मानस में बराबर घुमड़ते रहे हैं और इन विचारों के अंधड़ ने एक क्षण के लिये भी मुझे चैन से सोने नहीं दिया है।

मेरे पत्र को पढ़ते ही तुम्हारे होठों ने बुदबुदाया था कि यह पागलपन है और आज मैं वास्तव में ही अनुभव कर रहा हूं कि मैं पागल हूं। इन तीन वर्षों में मैंने इस शब्द पर कई बार विचार किया है और मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि वास्तव में ही मुझमें इस प्रकार की स्थिति है। पर बिना पागल हुए कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती। विद्यार्थी जब अपनी डिग्री के लिये पागल हो जाता है, रात-रात भर जागता है उसकी भूख और प्यास उड़ जाती है तब जाकर कहीं उसे सफलता मिलती है। भक्त अपने प्रभु के पीछे पागल हो जाता है, उसे न अपने शरीर का होश रहता है और न खानपान का, तब उसे उस प्रभु के दर्शन हो पाते हैं। तुलसी, सूर, मीरा, आदि एक प्रकार से पागल ही थे, उनका पूरा जीवन अपने लक्ष्य के पीछे पागल बन जाता था और इस पागलपन के बाद ही वे अपने लक्ष्य तक पहुंच सके थे। वास्तव में ही बिना पागल हुए कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती, इस दृष्टि से मैं पागल हूं और आज इस बात को अनुभव कर रहा हूं कि मैं भी अपने लक्ष्य के पीछे जब तक पागल नहीं हो जाऊंगा तब तक मुझे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकेगा।

तुम्हारे होठों ने मुझे पागल कहा है तो वास्तव में ही मैं पागल हूं और मैं चाहता हूं कि तुम भी मेरे विचारों का अनुसरण करती हुई पगली बनो। हमारा पूरा धर्मशास्त्र इस बात पर एक मत है कि पत्नी की गति पति के अलावा कुछ भी नहीं।

पति ही उसका गुरु, उसका पथ-प्रदर्शक और उसका सर्वस्व होता है, 'पतिरेको गुरू स्त्रिणाम्' मनु ने कहा है कि पत्नी को अपने आप में उसी प्रकार का आचरण और व्यवहार ढाल लेना चाहिए जिस प्रकार उसका पति हो, इसीलिये धृतराष्ट्र की पत्नी ने जब देखा कि उसका पति अन्धा है तो उसने भी जीवन भर के लिये अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। वेवश्वत की पत्नी ने उसी प्रकार अपने जीवन को ढाल दिया था जिस प्रकार से उसका पति था। दात्रेय एक भिखारी था परन्तु वह उच्चकोटि का विद्वान भी था। यद्यपि उसकी पत्नी राजा की पुत्री थी फिर भी उसने पति के समान ही याचनावृत्ति को अपना लिया था। इसी प्रकार यदि तुम्हारे होंठों ने मुझे पागल कहा है तो मैं भी चाहता हूं कि तुम पगली बन सको और अपने जीवन के त्याग से, मुझे बदल सको जिससे कि मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच सकूं।

मेरा प्रथम पागलपन यह है कि मैं सुख-सुविधापूर्ण जीवन को सही जीवन नहीं मानता। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरे देश के साठ करोड़ नर-नारी पराधीनता के जुए से बंधे हैं उनमें से कुछ मुट्ठी भर लोग सम्पन्न हैं, बाकी पूरा देश अभावों की चक्की में पिस रहा है, उनके पास खाने के लिये भोजन, पहनने के लिये पूरा वस्त्र तथा सोने के लिये छत तक नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि मैं आराम का जीवन व्यतीत करता हूं तो यह मेरे लिये अनुकूल नहीं है, मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं भरपेट भोजन करूं, रंग-रेलियां मनाऊं या आनन्द के साथ अपने जीवन को व्यतीत करूं। मैं चाहता हूं कि उन दुःखियों के अभावों को दूर कर सकूं, उनके आंसुओं को पोंछ सकूं, उनके अभावों, बाधाओं और परेशानियों में भागीदार बन सकूं।

मेरा दूसरा पागलपन यह है कि मैं ब्राह्मण हूं और अपने ब्राह्मणत्व को पहचान सका हूं। मेरे पूर्वज उच्चकोटि के ब्राह्मण थे। उनके पास अलौकिक सिद्धियां थीं, ज्ञान का अक्षय भंडार था, ज्योतिष के क्षेत्र में वे अद्वितीय थे। काल को अपने चिन्तन के माध्यम से उन्होंने बांध रखा था, और भविष्य की उन अंधेरी खाइयों में वे सफलतापूर्वक झांकने में सफल हो सके थे, जहां पर सामान्य मानव की दृष्टि नहीं जाती।

पर आज वे विद्याएं कहां हैं, ज्योतिष को सही रूप में जानने वाले इस देश में कितने हैं ? तंत्र और मंत्र की वास्तविकता कहां पर है ? आकाश-गमन तथा परदेश गमन की सिद्धियां कहां हैं ? पर—पर— यह सब कुछ मेरे देश में था। हम ब्राह्मणों के पास इस प्रकार की सिद्धियां थीं कि हम अपने शरीर में से प्राण निकाल कर निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार कर सकते थे। यह बहुत दूर की बात नहीं है, शंकराचार्य ने ऐसा कर दिखाया था—पर आज ये सब कल्पनाएं बन गईं। हमारे ज्ञान का मखौल उड़ाया जा रहा है, हमारी विद्याएं उपहास का पात्र बन गई हैं, हमारे ब्राह्मणत्व पर लांछन लगाया जा रहा है, और इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। हम अपने ही राग-रंग में मस्त हैं, अपने ब्राह्मणत्व को भुला बैठे हैं, अपने पूर्वजों की थाती लोप हो रही है और हम आनन्द से जीवन जी रहे हैं। क्या यह उचित है ? क्या इस प्रकार हम इन विद्याओं से अलग नहीं हो जायेंगे ? क्या कुछ

समय बाद इस प्रकार की अलौकिक सिद्धियों से हमारा देश वंचित नहीं हो जायेगा ? ये और इस प्रकार के सैंकड़ों प्रश्न मेरे मानस में घुमड़ रहे थे और उस दिन मेरे हृदय को सबसे अधिक चोट लगी, जिस दिन एक साधु ने मुझे यह कहा कि ब्राह्मण अपने आप में समाप्त हो गया है। कुछ समय बाद ब्राह्मण उस व्यक्ति को कहा जायगा जो केवल पेट भरने को ही अपना जीवन समझता हो, और अपनी उदरपूर्ति के लिये यजमान को ईश्वर से भी ज्यादा मान्यता देता हो।

और मैंने उसी दिन निश्चय कर लिया था कि मैं इस ब्राह्मणत्व को लोप नहीं होने दूंगा। यदि प्रभु ने मुझे शरीर दिया है तो यह शरीर एक सामान्य जीवन बन कर नहीं रह पायेगा। जब तक यह कुछ विशिष्टता प्राप्त नहीं कर लेगा तब तक मैं अपने जीवन को जीवन नहीं कहूंगा, फिर मेरे और कीड़े-मकोड़ों के जीवन में फर्क ही क्या रह जायगा ?

पर इस प्रकार की आलौकिक सिद्धियां, तंत्र, मंत्र बाजारों में नहीं बिकते। गली-कूचे में फिरने वाले साधुओं के पास इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार के व्यक्ति संसार से उदासीन हैं, समाज से कटे हुये हैं, और प्रकृति की गोद में, उसके साहचर्य में अपने आपको लिप्त किये हुए हैं। मुझे उन लोगों तक, उन साधुओं तक, उन विशिष्ट महर्षियों तक पहुंचना है, जिनके पास इस प्रकार की अलौकिक सिद्धियां हैं।

आज की नई पीढ़ी ने पेंट और कोट पहनना, अंग्रेजी बोलना और विदेशियों की तरह रहन-सहन अपनाना अपने जीवन का धर्म मान लिया है। ब्राह्मण का बेटा क्लर्क बना अपना गौरव समझने लगा है, ऐसी स्थिति में यह विद्या कैसे सुरक्षित रहेगी। मैंने इस बात को अनुभव किया कि जिन विभूतियों के पास यह ज्ञान है वे इने-गिने ही रह गये हैं, और यदि वे समाप्त हो गये तो यह दुर्लभ ज्ञान, यह अलौक्रिक सिद्धियां उनके साथ ही समाप्त हो जाएंगी।

इसीलिये मैं अपने जीवन को सामान्य रूप से नौकरी करके' बिताना पाप समझने लगा था। समाज को आगे बढ़ाने के, उसे जिन्दा रखने के, कई प्रकार हैं। राजनीति के द्वारा भी समाज में चेतना दी जा सकती है। क्रान्ति के द्वारा भी समाज को आगे बढ़ाया जा सकता है, परन्तु इस प्रकार से जो समाज बनता है वह खोखला होता है। क्योंकि वह देह तो सुन्दर बन जाती है परन्तु उसकी आत्मा शून्य होती है। उस आत्मा में स्पन्दन इस प्रकार के ज्ञान की चेतना के द्वारा ही दिया जा सकता है, और इसीलिये मैंने इस रास्ते को अपनाया, यदि यह मेरा पागलपन है तो मैं इस पागलपन पर खुश हूं। मैंने आनन्द का जीवन छोड़कर दुखों का जीवन स्वीकार किया है। खुशियों को त्याग कर अभावों के साथ रहने में प्रसन्नता अनुभव करने लगा हूं। राग-रंग, भोग-विलास आदि को छोड़कर जंगलों में भटकना, भूमि पर सोना तथा कठिनाइयों, परेशानियों, भूख और अभावों को साथ लेकर पहाड़ों में इधर-उधर पागलों की तरह भटकना मैंने स्वीकार किया है— और मैं आज इस बात को मानता हूं कि

मैं जिस रास्ते पर चल रहा हूं वह रास्ता इतना आसान नहीं है, उसमें कांटे-ही-कांटे हैं, फूलों की कल्पना करना ही मूर्खता है।

मेरा तीसरा पागलपन यह है कि मैं किसी भी कीमत पर उन लुप्त विद्याओं को प्राप्त करना चाहता हूं जो कि अलौकिक हैं, और इन तीन वर्षों में मैंने यह अनुभव किया है कि मैं अपने लक्ष्य पर पहुंच सकूंगा। घर पर जब मैं था तब मुझे विश्वास नहीं था कि इस प्रकार की अलौकिक सिद्धियां वास्तव में होती हैं। मंत्रों में इतनी अधिक शक्ति होती है कि वह असंभव को भी संभव कर सकता हो। परन्तु आज जब इस क्षेत्र में घुसा हूं, थोड़ा बहुत जो कुछ प्राप्त किया है उसके आधार पर मैं यह कहने में समर्थ हूं कि आज भी इस प्रकार के साधु जीवित हैं जो अलौकिक हैं, जिनके पास ज्ञान का अक्षय भण्डार है, मैंने उन साधुओं के पास पहुंचने का प्रयत्न किया है और मुझे अपना लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देने लगा है।

घर से निकलने के बाद मैं एक दिन भी आराम से सो नहीं सका हूं। तुम यदि आज मेरी हालत देख लो तो शायद अपने आपको सौभाग्यशाली समझोगी। तुम्हारे पास सिर ढकने के लिये छत है, खाने के लिये रूखी-सूखी बाजरे या मक्के की रोटी तो हैं परन्तु मेरे पास तो यह भी नहीं है। कोई निश्चित नहीं है कि शाम कहां पर बीतेगी, सुबह कहां पर होगी। शाम को भोजन प्राप्त भी हो सकेगा या नहीं। शाम तक जीवित भी रह सकूंगा या नहीं, कुछ भी नहीं कह सकता। सब कुछ अनिश्चित है। परन्तु फिर भी मेरी आंखों की चमक टूटी नहीं है, बल्कि उसमें तीव्रता ही आई है। क्योंकि इसके बावजूद भी मुझे कुछ ऐसे अलौकिक साधु मिले हैं जिनके पास इस प्रकार की विद्याएं हैं और उनके द्वारा मुझे मिला है—बहुत कुछ मिला है।

यह जीवन कितना कष्टदायक है यदि मैं इस पत्र के माध्यम से व्यक्त करूं तो तुम्हारी आंखें भर जायंगी। मेरे पास एक धोती और एक कुर्त्ता है, जिसे मैं स्नान करने के बाद नित्य बदल लेता हूं, इसके अलावा किसी प्रकार का कोई भौतिक साधन न तो मेरे पास है और न अपने पास रखना चाहता हूं।

नंगे पांव चलने से पूरे पांव जगह-जगह से फट गये हैं, और कई स्थानों से तो खून भी रिसने लगा है, क्योंकि एक साधु ने यही शर्त रखी थी कि यदि नंगे पांव आगे के साल भर तक विचरण कर सको तो तुम ज्ञान पाने के अधिकारी हो, और मैंने उस ज्ञान की प्राप्ति के लिये इस शर्त को भी स्वीकार कर लिया है। मेरी यह धारणा है कि मुझे प्रत्येक स्थान का अन्न स्वीकार नहीं करना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए, इसीलिये मैं दिन में एक बार किसी एक ब्राह्मण परिवार से एक समय का आटा स्वीकार कर लेता हूं और अपने हाथों से पकाकर खा लेता हूं। उसके साथ न तो साग होता है और न अन्य साधन। कई बार तो इस प्रकार का परिवार ही नहीं मिलता और ऐसी स्थिति में भूखे रह जाना पड़ता है। हकीकत तो यह है कि अब कुछ स्वभाव ही ऐसा हो गया है कि भूखे रहकर मैं ज्यादा आनन्द अनुभव करने लगता हूं।

पिछले महीने मैं एक ऐसे स्थान पर था जो आबादी से काफी दूर था। उस साधु के पास जो ज्ञान था वह अलौकिक था। क्योंकि वह ओघड़ था और जैसा कि तुम जानती हो ओघड़—ओघड़ ही होता है। उसने एक दिन मेरी छोटी-सी गलती पर इतने जोर से डंडा मेरी पीठ पर मार दिया था कि आज भी उस स्थान पर दर्द करने लगती है। जिस समय वह डंडा लगा था तब तुम्हारा स्मरण हठात् हो आया था। उस दिन की घटना मेरी आंखों के सामने तैर गई जबकि तुम्हारे हाथों से दूध की बाल्टी गिरने पर पिताजी ने क्रोध के आवेश में जलती हुई लकड़ी से तुम्हारी पीठ पर वार कर दिया था, उस घटना को मैं भुला नहीं पाया था, क्योंकि वह चोट तेरी पीठ पर नहीं अपितु मेरे हृदय पर लगी थी, वह आघात तेरी पीठ पर नहीं मेरे समाज की निर्लज्जता और मेरे संकोच पर लगी थी—फफोला पड़ गया था। दो-तीन दिन तक तो तुम मुझसे छुपाती रहीं, परन्तु जब वह घाव बन गया तब मुझे ज्ञात हुआ और आज जब उस डंडे के चोट की कसक अपनी पीठ पर अनुभव करता हूं तब महसूस होता है कि उस चोट का दर्द तुमने कितनी शालीनता के साथ भोगा था। उस शारीरिक चोट से भी ज्यादा गहरी खरोंच तुम्हारे मानस पर पड़ी थी क्योंकि तुम एक अलग वातावरण से आई थीं, और मेरे घर पर एक अलग वातावरण देखने को मिला था। तुम्हारे घर में एक अलग भावना थी, एक अलग विचार पद्धति थी, एक अलग जीवन का रहन-सहन था। जबकि मेरे घर का माहौल उससे बिल्कुल विपरीत था, और इस माहौल में यदि बहू की पीठ पर जलती हुई लकड़ी मार दी जाती है तो यह शिक्षा का एक अध्याय माना जाता है।

इन तीन वर्षों में पता नहीं तुमने और कितनी जलती हुई लकड़ियां खाई होंगी, कितनी गालियों की बौछार अपने ऊपर झेली होगी। कितनी यंत्रणा और कष्ट को तुम दांत भींचकर सह रही होगी—कुछ नहीं कह सकता।

यह पत्र मैं ऐसे स्थान से लिख रहा हूं जहां आस-पास कोई बस्ती नहीं है। इस समय रात के तीन बजे हैं और सारा जंगल सांय-सांय कर रहा है। कभी-कभी जंगली पशुओं की आवाजें जंगल की इस भयानकता को और भयानक बना देती हैं। यहां पर एक छोटी-सी कुटिया है जिसमें साधु सोये हुए हैं, और बाहर इस दालान में बैठकर मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूं। मिट्टी के तेल की एक छोटी-सी ढिबरी जल रही है। पिछले दिनों ही एक गृहस्थ से कुछ कागज और एक कलम मांग ली थी। क्योंकि तुम्हें कई दिनों से पत्र लिखने की सोच रहा था।

इस पत्र लिखने के पीछे कोई वासना या मोह नहीं है जितनी कि यह इच्छा है कि तुम बहुत अधिक मेरे बारे में चिन्तित न हो। कम-से-कम तुम्हें यह तो अहसास हो कि मैं अभी तक जीवित हूं। यदि मैं तुलना करता हूं तो मैं यहां तुम्हारे कष्टों की अपेक्षा ज्यादा सुखी हूं। तुम्हारे प्रति मेरा एक कर्त्तव्य है, तुम्हारे साथ मेरी भावना जुड़ी हुई है। अग्नि को साक्षी रख कर मैंने तुम्हारा वरण किया है—और इसी धर्म के नाते मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं तुम्हें अपने मन की बात कहूं।

जान-बूझकर मैं अपना पत नहीं दे रहा हूं और सही बात तो यह है कि साधुओं का कोई अता-पता नहीं होता 'रमता जोगी और बहता पानी' का कोई ठिकाना नहीं होता कि आज कहां हैं और कल कहां होगा।

यह एक तरफ का पत्र व्यवहार है, तीन वर्षों के बाद यह पहला पत्र लिखा है, और दूसरे पत्र की इच्छा अभी मत करना, हो सकता है मैं दो या तीन या चार वर्षों के बाद पत्र लिख सकूं। परन्तु इतना निश्चित समझना कि मैं जहां भी हूं सुखी हूं, स्वस्थ हूं, मेरे मन में तुम्हारे प्रति जरूरत से ज्यादा अपनत्व है और यह अपनत्व क्षीण नहीं होगा···कभी भी क्षीण नहीं होगा।

यद्यपि मेरे पिता जरूरत से ज्यादा क्रोधी हैं। यद्यपि मेरे माता और पिता का व्यवहार तुम्हारे प्रति बहुत अधिक अनुकूल नहीं होगा। संस्कारों की वजह से वे तुम्हें प्रताड़ित करते होंगे, परन्तु फिर भी तुम्हें धैर्य से काम लेना है। किसी भी हालत में उनके सामने अपनी जबान नहीं खोलनी है। यदि वे जलती हुई लकड़ियों से भी तुम्हें पीट लें तब भी तुम्हें उफ् नहीं कहना है। खाने के लिए जो कुछ भी मिल जाए उसी को भगवान का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लेना है, किसी भी प्रकार की इच्छा या याचना मत करना।

सब कुछ होते हुए भी वे मेरे माता-पिता हैं, मेरे लिए आदरणीय हैं, उन्होंने जन्म दिया है, इस संसार में कुछ करने के लिए मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है, अतः उनके इस ऋण को मैं स्वीकार करता हूं। यद्यपि मैं उनसे दूर हूं इसलिए शरीर से तो मैं उनकी सेवा नहीं कर पा रहा हूं, पर मुझे विश्वास है कि तुम्हारी तरफ से सेवा में कोई कमी नहीं आएगी। यही नहीं अपितु तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम उनकी सेवा जरूरत से ज्यादा करो, क्योंकि मेरे हिस्से की भी सेवा तुम्हें ही करनी है।

सेवा में किसी भी प्रकार का प्रतिदान नहीं होता। सेवा केवल एकांगी होती है उसके माध्यम से किसी प्रकार की प्राप्ति की भावना नहीं होती। तुम्हारे लिए वे सब कुछ हैं, वह परिवार ही तुम्हारा परिवार है और उस परिवार की शरीर से और मन से सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है इसमें तुम्हारी तरफ से किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आएगी।

यह पत्र केवल तुम्हारे लिए है और इस पत्र को गोपनीय रूप से ही तुम्हें रखना है। तुम्हारे मन में उस परिवार के प्रति जरूरत से ज्यादा आदर और सम्मान बना रहे, चाहे किसी भी प्रकार की स्थिति हो, अपने आप को तुम्हें हर हालत में दीपशिखा की तरह जलते रहना है। मैंने तुम्हारी भावनाओं को पढ़ा है तुम्हारे व्यक्तित्व से जितना भी परिचित हुआ हूं उससे मैं आश्वस्त हूं और मुझे तुम्हारे त्याग की रोशनी में अपना पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज भले ही न सही, परन्तु आने वाला समय इस बात को स्वीकार करेगा कि मेरे निर्माण के पीछे सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारा त्याग मेरे त्याग से बहुत बढ़ा

चढ़ा है। तुम्हारे त्याग की रोशनी में ही मैं आगे बढ़ सका हूं। मेरे पीछे तुम्हारा बहुत बड़ा संबल है, तुम्हारी प्रेरणा है और शक्ति है।

तुम्हारा समय ईश्वर चिन्तन में ज्यादा लगना चाहिए, प्रभु के सामने तुम्हारी यही प्रार्थना होनी चाहिए कि स्वामी जिस उद्देश्य के लिए गए हैं उस उद्देश्य की पूर्ति में वे सफल हों और अपने ज्ञान से समाज को, आने वाली पीढ़ियों को रोशनी दे सकें, उनका पथ प्रशस्त कर सकें···

तुम्हारा साथी
(नारायणदत्त श्रीमाली)

प्रेषक : डा० नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान : अज्ञात

प्राप्तकर्त्ता : भगवती श्रीमाली

आलोक—घर से निकलने के कई वर्षों बाद यह पत्र पण्डितजी ने पत्नी के नाम भेजा था, जिसमें उन्होंने उनके कर्त्तव्य को स्पष्ट किया था, वहीं साथ-ही-साथ इस पत्र के माध्यम से उनके मानस चिन्तन की झांकी भी प्राप्त होती है उन्होंने इन वर्षों में कितना मानसिक संघर्ष और जन कल्याण के लिए कितना अधिक त्याग और बलिदान किया था उसका आभास इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होता है जो कि साधकों के लिए एक दीप-स्तम्भ की तरह ज्योतिर्मय है।

प्रिये !

बहुत समय बीत गया है, जबकि मैं तुम्हें आज पत्र लिखने बैठा हूं, मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैंने इससे पूर्व तुम्हें कब पत्र लिखा था, परन्तु इतना याद है कि मैंने जो पत्र लिखा था उसको भेजे हुए चार वर्ष से कुछ ज्यादा ही हो गया है।

इन चार वर्षों में मैंने बहुत कुछ भोगा है, बहुत कुछ सहन किया है और जिस उद्देश्य से मैं घर से निकला था उस उद्देश्य की पूर्ति में अनुकूलता प्राप्त हुई है, जब निकला था तब मेरा मन आशंकाओं से ग्रस्त था, पता नहीं मैं जिस उद्देश्य के लिए जा रहा हूं उस उद्देश्य की प्राप्ति होगी भी या नहीं, मैंने अपने जीवन का जो बहुत बड़ा जुआ खेला है उसमें सफल हो सकूंगा या नहीं ? मैं जान-बूझ कर अपने यौवन को अभावों की भट्टी में घुलने के लिए दे रहा हूं, क्या यह उचित है या नहीं ? इतना हठ करके मैं जा रहा हूं मेरे जाने से पिता, अपने आपको बेसहारा अनुभव करने लगेंगे, जिस समय मुझे घर में रहकर मां की सेवा करनी चाहिए, उसके आंसुओं को पोंछना चाहिए, उस समय मैं इन सबको छोड़कर एक ऐसे रास्ते पर बढ़ रहा हूं

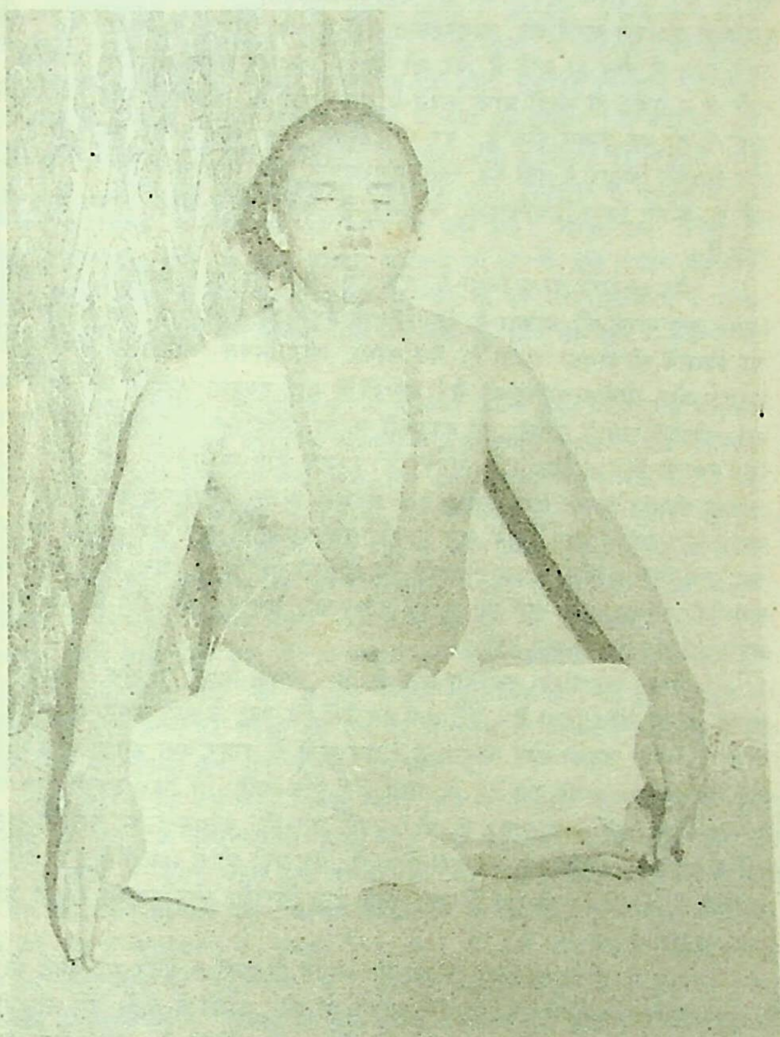
जिसका कोई ओर-छोर दिखाई नहीं दे रहा है, मेरे साथ ऐसा कोई पथ-प्रदर्शक भी नहीं है जिसके सहारे मैं आगे बढ़ सकूं, ऐसी कोई ज्योति भी मेरे हाथ में नहीं हैं जिसके सहारे मैं इस अन्धकार में बढ़ता हुआ लक्ष्य पर पहुंच सकूं। इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न मेरे मन को कुरेद रहे थे, परस्पर विरोधी विचार मेरे मानस को उद्वेलित कर रहे थे और मैं भयंकर तूफानों से घिर कर अपने मस्तिष्क को बढ़ी कठिनाई से संयत रखने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु मेरे सामने कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा था।

ऐसे ही परस्पर विरोधी विचारों के अंधड़ में जब मैं लगभग अपने विचारों से डिगने जा रहा था, जब यह निश्चय करने जा रहा था कि मुझे इस अनजाने रास्ते पर नहीं बढ़ना चाहिए, वर्तमान में जो सुख-सुविधाएं हैं उनको छोड़ कर अभावों के दलदल में नहीं फंसना चाहिए और जो कुछ प्रभु ने दिया है उसी को पाकर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, जो कुछ प्राप्त है उसी में सन्तोष कर लेना चौहिए। सच कह रहा हूं उन दुर्लभ क्षणों में मैं अपने विचारों से फिसल गया था, मित्रों सम्बन्धियों और परिचितों ने जो भयंकर वातावरण मेरे सामने बढ़ा-चढ़ा कर बताया था उससे जाने का निश्चय मैं मन-ही-मन छोड़ चुका था, ऐसे ही क्षणों में तुम दीपशिखा की तरह मेरे सामने प्रकट हुईं। मैंने तुम्हारा कारुणिक रूप भी देखा है और तेजस्वी तथा ओज पूर्ण चेहरा भी। तुम्हारा आंसुओं से भरा हुआ मुख-मण्डल भी मेरे सामने साकार हुआ है और दृढ़ता तथा तेजस्विता से युक्त चेहरा भी। जब मैं लगभग अपने आपमें टूट चुका था, मां की आंखों के बहते आंसुओं से लड़खड़ा चुका था, तब तुमने मेरे शरीर में एक नई विचारधारा पैदा की थी, एक नया रास्ता मेरे सामने स्पष्ट किया था। तुम्हारा वह चेहरा, तुम्हारी वह दृढ़ता और तुम्हारी वह ओजस्विता आज भी मेरे सामने ज्यों-की-त्यों साकार है। सच कहूं तो इन ७-८ वर्षों में तुम्हारी यह दृढ़ता ही मेरा पाथेय बनी है, मेरे लिए वह प्रकाश विन्दु की तरह जगमगाती रही है, जब-जब भी मैं दुर्बल और कमजोर पड़ा हूं, उसने मुझे संवल, साहस और दृढ़ता दी है।

प्रारम्भ में तुम जरूर हताश हो गई थीं, एक प्रकार से अपने जीवन से ही निराशा अनुभव करने लग गई थीं। ऐसा लगने लगा था जैसे तुम्हारे शरीर का पूरा खून निकल गया हो, चेहरा फीका पड़ने लग गया था और तुम में और मृत्यु में बहुत ज्यादा फासला अनुभव नहीं हो रहा था, परन्तु ज्योंही मुझमें कायरता का संचार हुआ, तुम्हारा रूप ही वदल गया, तुम्हारी वह श्रीहीन आंखें ओजस्विता में परिणत हो गईं, और चेहरे पर एक अपूर्व कान्ति, एक अपूर्व चमक आ गई जो कि अपने आप में मेरे लिए अन्यतम थी, आश्चर्यजनक थी।

मैंने इतिहास में राजपूत महिलाओं के जौहर पढ़े थे। मैंने पढ़ा था कि वे महि-लाएं जो असूर्यम्पश्या कहलाती थीं, मुस्कराती हुई, खिलखिलाती हुई अग्नि को समर्पित

हो जाती थीं। आग में कूदते समय भी उनके चेहरे पर एक अपूर्व चमक रहती थी, मृत्यु का वरण करते समय उनके चेहरे की कान्ति और बढ़ जाती थी, और मैंने ऐसा दृश्य पहली बार प्रत्यक्ष रूप में देखा जब तुमने स्पष्ट शब्दों में मुझे बताया कि इस प्रकार हताश और निराश होने की जरूरत नहीं है, जो जीवन में खतरा नहीं ले सकता



डॉ० श्रीमाली

वह कुछ भी नहीं कर सकता। जो मृत्यु से डरता है उसका जीवन स्पन्दित होते हुए भी मृत्यु तुल्य है। जो असफलताओं की आशंकाओं से घबरा जाता है वह कायर है, बुजदिल है।

बातचीत के दौरान तुमने आगे कहा था कि जब आपने इस रास्ते पर बढ़ने का निश्चय कर ही लिया है तो फिर इस प्रकार लड़खड़ाने की जरूरत नहीं है, इस प्रकार बुजदिली प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है, जो समुद्र के किनारे बैठे रहते हैं उनके हाथ में घोंघे ही आते हैं पर जो खतरा उठाकर समुद्र की बीच धार में कूद जाते हैं वे युवक ही मोती प्राप्त करने में सफल होते हैं, जीवन में यदि तुम्हें घोंघे ही चुनने हैं तो यह जीवन ठीक है, पर घोंघे चुनने वाले कायर और बक होते हैं, वीर और साहसी किनारे पे नहीं बैठे रहते, मगरमच्छ और खतरनाक जन्तुओं से घबराते नहीं हैं, अपितु विना हिचकिचाहट के समुद्र में कूद जाते हैं और जीवन में सफल हो जाते हैं।

मैंने तुम्हारा वरण किया है एक ऐसे पति का वरण किया है जो साहसी है, जिसमें कुछ करने की भावना है, जिसमें आगे बढ़ने की लालसा है, जो समाज में कुछ कर दिखाने की क्षमता रखता है, मैंने कायर और निर्बल व्यक्ति से शादी नहीं की, नपुंसक और श्रीहीन व्यक्ति की मेरी नजरों में कोई इज्जत नहीं है, जो अपने आपसे हार जाता है उसकी संसार भी कद्र नहीं करता, यदि एक बार आप मेरी नजरों से गिर गए तो फिर वापिस मेरी नजरों में इज्जत नहीं पा सकेंगे, आप मेरे पति हैं, आपका सम्मान करना मेरा कर्त्तव्य है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना मेरा धर्म है परन्तु मेरा यह भी धर्म है कि जब आपके पांव लड़खड़ाने लगें तब आपको सम्बल दूं, जब आप निराश और हताश हो जाएं तब आपको सहारा दूं, जब आप अपने आपमें कमजोरी अनुभव करने लगें तब आपमें आशा का संचार करूं और मैं यह कह कर अपने धर्म का निर्वाह कर रही हूं।

आपमें कमजोरी इसलिए आई है कि आपके मित्रों ने एक भयानक चित्र आपके सामने खींच दिया है। पर आप यह देखें कि क्या उन्होंने अपने जीवन में कुछ किया है ? क्या उनको कोई जानता है ? इस गली के बाहर क्या उनका कोई अस्तित्व है ? क्या वे समाज को कुछ देने में समर्थ हैं ? यदि नहीं, तो फिर उनकी बात मानने से क्या लाभ ? वे स्वयं कायर हैं और दूसरों को भी कायरता के अलावा कुछ भी नहीं दे सकते। जिसके पास जो कुछ होता है वह वही तो दे सकता हैं। वे कायर हैं, बुजदिल हैं, जीवन से चूके हुए हैं अतः उनके पास निराशा और हताशा देने के अलावा कुछ भी नहीं है।

आप विचलित इसलिए हो गए कि आपने पिताजी के उतरे हुए चेहरे को देखा है, आप निराश इसलिए हो गए कि आपने मां की आंखों में बहते हुए आंसुओं को देखा है, आपने छोटे भाई के उदास चेहरे को अनुभव किया है, आपने ऐसा महसूस किया है जैसे इस घर की रौनक समाप्त हो गई है, आपने ऐसा पाया होगा कि जैसे

इस घर की रोनक समाप्त हो गई है, आपने ऐसा पाया होगा कि जैसे इस घर पर मृत्यु का सन्नाटा छा गया हो और इस वातावरण ने आपके पांवों में कमजोरी ला दी होगी, पर क्या यह उचित है ? जब आपने एक निश्चय कर ही लिया है तो फिर उस निश्चय में न्यूनता लाना उचित नहीं है, जो भी इस प्रकार का निश्चय करेगा उसे तो इन समस्याओं को पहले से ही देखना पड़ेगा। जो इस प्रकार आगे बढ़ना चाहेगा उसके सामने ये परेशानियाँ आएंगी ही। शुभ कार्य में पग-पग पर बाधाएं और कठिनाइयां आती हैं, पर इससे वे निराश नहीं होते, हमारा इतिहास इन तथ्यों से भरा पड़ा है, राम के अपने कर्त्तव्य-निर्वाह में क्या इस प्रकार की बाधाएं नहीं आई थीं, क्या उनके सामने दशरथ का श्रीहीन चेहरा और कौशल्या की अश्रुपूर्ण आंखें नहीं थीं ? क्या गौतम बुद्ध घर से निकलते समय इन सारे विचारों के बवंडर से नहीं उलझे थे ? पर इनसे वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए। अपितु इस प्रकार की बाधाओं ने तो उनके पैरों में और ज्यादा मजबूती ला दी थी, इस प्रकार की कठिनाइयों ने उनके जीवन में और ज्यादा दृढ़ता पैदा कर दी थी और इसीलिए वे जीवन में सफल हो सके हैं। मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सके हैं और उस युग के समाज को बहुत कुछ दे सके हैं।

आप स्वयं सोचिए यदि इस प्रकार राम अपने पथ से अपने निश्चय से लड़खड़ा जाते तो क्या उनमें और एक साधारण राजपूत में कुछ अन्तर रहता ? यदि यशोधरा का मोह बुद्ध को बांध लेता तो क्या आज हम उनका नाम स्मरण रख पाते ? क्या शंकराचार्य अपनी मां की आंखों के आंसुओं से विचलित हुए थे ? हमारा तो पूरा इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है और आज यदि हम उन युग-पुरुषों को स्मरण करते हैं तो इसलिए कि उनके सामने भी इस प्रकार की चुनौतियां थीं, इस प्रकार के विरोधी विचार उनके दिमाग में भी उठे थे, इस प्रकार का विरोधी वातावरण उनके सामने भी था, पर वे कायर नहीं बने, उन्होंने अपने जीवन में हार कर नपुंसकता प्रदर्शित नहीं की, अपितु उन्होंने मुट्ठी बाँध कर खड़े हुए, समाज को चुनौतियां दीं और अपने पूरे जीवन को दाव पर लगा दिया। इसीलिए आज वे जीवित हैं और आगे भी सैंकड़ों वर्षों तक जीवित रह सकेंगे।

यह सही है कि जब मैंने विवाह किया तब मेरे दिमाग में बहुत कुछ सुखद कल्पनाएं थीं, यह उम्र कल्पनाजीवी होती है, मेरी सहेलियों ने भी मुझे बहुत कुछ बताया था और वे मुझसे बहुत कुछ उम्मीदें भी रख रही होंगी, परन्तु जब मैं यहाँ आई तब मैंने अपने आपको एक विचित्र वातावरण में अनुभव किया, यहां का वातावरण मेरे घर के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। मैं बड़ी कठिनाई से अपने आपको संयत कर सकी, मेरे जो दिवास्वप्न थे वे तो एक महीने में ही काफूर हो गए। मेरी जो सुखद कल्पनाएं थीं वे विवाह के कुछ समय के बाद ही हवा में विलीन हो गई, मैंने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि मुझे जब अपना जीवन इसी वातावरण में बिताना है तो मुझे अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाना ही होगा। जब मैं

धरती पर सोई तो कुछ दिनों तक तो नींद ही नहीं आई, जब मैंने पहली बार मक्के की रोटी चन्दलिए के साग के साथ खाई तो उसका स्वाद एक अजीब अटपटा-सा लगा और मैं भूखी ही उठ गई. परन्तु ऐसा कब तक करती ? मैं धीरे-धीरे उसके अनुकूल अपने आपको बनाने का प्रयत्न करती रही, उस वातावरण में अपने आपको ढालने की कोशिश करती रही और अपने जीवन को इस प्रकार से कठोर बनाने का प्रयत्न करती रही जिससे कि इस प्रकार के वातावरण को वह झेल सके।

मैंने काफी कुछ पढ़ रखा था, मैंने पढ़ा था कि जब बहू पहली बार ससुराल जाती है तो उसका बहुत-बहुत स्वागत होता है, उसके आराम का, उसके सुख-सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है, देवर उसे गुदगुदाते हैं, ननदें मजाक करती हैं, हम-जोली बहुएं उससे चुहल करती हैं और उसका वह समय मन्त्र-मुग्ध की तरह बीत जाता है, पता ही नहीं चलता कि कब प्रातः होता है, कब सांझ उतर आती है और कब रात शुरू हो जाती है।

परन्तु मैंने यहां ऐसा कुछ भी नहीं पाया, अपितु इससे बिल्कुल भिन्न वातावरण अनुभव किया, शुरू-शुरू में तो मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे मैं घनघोर जंगल में आ गई हूं, चारों तरफ एक आतंक चतुर्दिक एक डरावना-सा माहौल है और कुछ ऐसा वातावरण है जो कि अत्यन्त ही अटपटा और असंगत है।

घर में दूसरे ही दिन मुझे एक मील दूर से पानी लाने की आज्ञा हुई। मैं अपने घर में सिर पर मटकी रखकर कभी पानी लाई नहीं थी, परन्तु उस दिन संभलते-संभलते भी सिर पर से मटकी गिर गई और गिरते ही जिन गालियों से मेरा स्वागत सत्कार हुआ वह मेरे लिए अप्रत्याशित था, मैं अपने आप में जड़वत् हो गई, मैं समझ नहीं सकी कि इस समय क्या कर सकती हूं, इस सारे कार्य में मेरी क्या गलती है, मैं जब सिर पर संयत ढंग से मटकी रख नहीं सकती तो गिरना स्वाभाविक है और चार आने की एक मटकी के पीछे जो मेरा अपमान हुआ है जिस प्रकार से मेरे ऊपर गालियों की बौछार हुई है, क्या वह उचित है ? क्या बहू का स्वागत इस समाज में इसी प्रकार से होता है और यदि पहला दिन इतने स्वागत के साथ हुआ है तो फिर अभी तो पूरा जीवन आगे पड़ा है और यह सोच-सोचकर मैं पीपल के पत्ते की तरह कांप गई। सच कहती हूं वह सारा दिन मेरा दुःखी मन से बीता, सारी रात मैं अपने आप में सो नहीं सकी। एक प्रकार से मैं अपने आपको असुरक्षित अनुभव करने लग गई थी, मुझे कुछ ऐसा लगने लगा था कि जैसे मैं कसाइयों के बीच घिर गई हूं, आने वाले समय और आने वाली अज्ञात आशंकाओं से मैं थर-थर कांपने लगी।

परन्तु मैंने यह निश्चय कर लिया था कि यथासमय मेरी तरफ से कम-से-कम गलती हो, मुझे ऐसा कोई मौका नहीं देना चाहिए जिससे कि इन लोगों को कुछ कहने का अवसर मिले, अपने लिए कुछ भी नहीं मांगना है। स्वयं के लिए किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा की इच्छा नहीं करनी है, जो कुछ मिल जाए, जिस प्रकार से भी

मिल जाए उसी में सन्तुष्ट रहना है।

और मैंने अपने जीवन को इसी प्रकार से ढालने का प्रयत्न किया, जमीन पर जो भी बिछौना मिल गया उसी को श्रेयस्कर मान लिया, जो भी खाने को मिल गया उसी को सब कुछ समझ लिया, और अपनी तरफ से कुछ ऐसी व्यवस्था की जिससे कि आपके कानों तक मेरी बात न पहुंचे, क्योंकि जब आपको ज्ञात होता कि यह खाना खाना मेरे लिए कष्टप्रद है तो शायद आपको दुःख होता, सुबह चार बजे उठकर चक्की चलाना, पानी लाना, वापस आकर इतने लम्बे-चौड़े घर को साफ करना लीपना, भोजन बनाना, गायों और भैंसों का दूध दुहना, उसे गर्म करना, उनको चारा-पानी देना, उनके गोबर को लीपना और दोपहर को जंगल से घास काटकर लाना, जलाने के लिए लकड़ियां जंगल से लाना, शाम को फिर गायों का काम, भोजन का काम, कपड़े धोना, सबको भोजन करवाना और बरतन मांजते-मांजते रात्रि के ग्यारह-बारह बज जाते। इस हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी उपेक्षा, गालियां और आलोचना सुनना, यह सब कुछ मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित था। मेरे लिए इतना बोझ उठाना सम्भव नहीं था, मैंने कभी अपने जीवन में ऐसा सोचा ही नहीं था कि मुझे इस प्रकार के वातावरण में जाना पड़ेगा, इस प्रकार के कामों में लगना पड़ेगा और इस प्रकार से गालियां और ताने सुनने पड़ेंगे, सब कुछ अप्रत्याशित था, परन्तु फिर भी मैंने अपने होंठ सी लिए थे, अपने होंठों पर चुप्पी की मोहर लगा ली थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि यह शरीर बहुत समय तक मेरा साथ नहीं देगा, परन्तु जब तक भी इस पिंजरे में प्राण हैं तब तक मुझे उफ् नहीं कहना है, सब कुछ सहना है, दांत भींचकर सहना है, जी को मसोस कर रहना है और मैंने यह किया है तथा आज तक करती रही हूं।

शायद आपको स्मरण होगा, विवाह के दो महीने बाद मेरे पिताजी मुझसे मिलने के लिए आये और अपने साथ खाने के लिए सेव लेकर आये थे, उन सेवों को देखकर मेरे होठों पर पहली बार व्यंग्य की मुस्कराहट उभरी थी, मैंने अपने भाग्य पर विचार किया था कि जहां खाने के लिए सब्जी भी ढंग से प्राप्त नहीं होती वहां पर ये सेव प्राप्त होना प्रकृति का और नियति का मेरे ऊपर कितना क्रूर व्यंग्य है।

मेरे पिता ने जब मेरे चेहरे को ध्यान से देखा तो उन्हें जबर्दस्त आघात लगा था। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि केवल दो महीने में बेटी का चेहरा इस प्रकार से फीका पड़ जायेगा, चेहरे की सारी लुनाई और चमक इस प्रकार से बुझ जायेगी, इसकी तो उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी। उन्होंने एक तरफ मुझे ले जाकर पूछा भी था, कि क्या बेटी तुम यहां खुश हो?

और मैंने पहली बार चेहरे पर जबरदस्ती से मुस्कराहट चढ़ाकर स्वाभाविक रूप से उत्तर दिया था कि मैं खुश हूं, बहुत खुश हूं, परन्तु इतना कहते-कहते मेरी आंखें भर आईं, मैं बहुत प्रयत्न करती रही कि आंखें मेरा साथ दें, आंसू मेरा भेद न खोलें, परन्तु उन्होंने सारी बात कह दी और मेरे पिता की अनुभवी आंखों ने वह

सब कुछ जान लिया जो मैं कहना नहीं चाहती थी ।

मैंने अपने जीवन में पहली बार अपने पिता को उदास देखा था । सम्भवतः वे अपने आपको अपराधी समझने लग गये थे, उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि मैंने अपनी बेटी का गला घोंट दिया है, उसकी खुशियां नीलाम कर दी हैं, उसके चेहरे पर जो चमक समाप्त हो गई है उसका जिम्मेवार मैं स्वयं हूं, उसके आंचल में जो दुःख भर दिया है वह मेरी गलती है, उसकी आंखों में जो आंसू तैर रहे हैं उसका जिम्मेवार मैं स्वयं हूं और वे सारे विचार उनके दिमाग में एक साथ ही कौंध गए होंगे और उनका चेहरा बुझ गया । मैंने पहली बार अपने पिता का इतना श्रीहीन चेहरा देखा था, सच कहती हूं कि उनके इस प्रकार के चेहरे को देख कर मैं रुक नहीं सकी, और उनकी गोद में सिर देकर फफक पड़ी, मेरी आंखों में आंसू बांध तोड़कर वह निकले, हिचकियां भर आईं और मैं न चाहते हुए भी उनके सामने थरथरा गई, मेरे साथ ही उनकी आंखों से भी आंसू वह निकले और उनके वे गर्म आंसू जब टप-टप करते हुए मेरे चेहरे पर पड़े तो आप कल्पना कर सकते हैं कि मेरे दिल पर क्या गुजरी होगी और किस प्रकार से उन्होंने इतना जबरदस्त धक्का अपने कमजोर सीने पर झेला होगा ?

शाम को मेरे पिता ने जब मुझे अपने घर ले जाने के लिए आपके पिताजी से पूछा तो उन्हें सीधी गालियों की बौछार मिली । उन्हें बताया गया कि मैं कितनी कामचोर हूं, कितनी मटकियां फोड़ दी हैं,, कितनी रोटियां जला दी हैं और कितनी बार अपनी उंगलियां जलाकर झूठी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की है । उनकी मान्यता यह थी कि जो मेरी उंगलियां जल गई हैं वे मैंने जानबूझकर जलाई हैं, जिससे कि दूसरी बार रसोई करने से छुटकारा मिल सके, यही नहीं अपितु मैंने कितनी बार जंगल से आते समय लकड़ियों की ढेरी या घास के गट्ठर गिराये हैं, इन सबका लेखा-जोखा उनके सामने रख दिया गया, यह भी बताया गया कि मैं निकम्मी हूं, बेकार हूं, बलवान नहीं हूं, कामचोर हूं और मैं उनके घर के लिए किसी भी प्रकार से योग्य नहीं हूं ।

आपके पिताजी, धारा प्रवाह रूप से यह सब कुछ कहते रहे और मेरे पिता अपराधी की तरह इन सब बातों को सुनते रहे । आप उन दिनों किसी कार्यवश एक सप्ताह के लिए बाहर गये हुए थे, यदि आप उस क्षण देखते या गालियों की बौछार सुनते तो शायद आप स्वयं संयत नहीं रह पाते, मैं अपने आप में इतनी दुःखी हो रही थी कि यदि उस समय धरती फट जाती तो निश्चय ही मैं उसमें समा जाने का गौरव अनुभव करती ।

और अन्त में निर्णय सुनाते हुए बताया कि किसी भी हालत में हम बहू को आपके घर नहीं भेजेंगे, इसको यहीं रहना होगा, यह यहां सुखी है, हम इसको जरूरत से ज्यादा प्यार दे रहे हैं, इसको किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं है इसलिए इसको ले जाने की आवश्यकता नहीं है ।

इसके साथ ही आपकी माताजी ने यह भी जोड़ दिया कि भविष्य में इससे मिलने के लिए आने की जरूरत नहीं है और जब हमें भेजनी होगी तब आपको कहलवा देंगे।

मैंने उस दिन पहली बार अनुभव किया कि हमारे समाज में स्त्रियां कितनी पराश्रित और पददलित हैं, मैंने उस दिन यह अनुभव किया कि बेटी का पिता होना कितना दुःखदायक है। मैंने उस दिन यह अनुभव किया कि पुत्री का पिता किस प्रकार से बेबस हो जाता है, मैं अश्रुपूरित आंखों से उन्हें जाते हुए देखती रही, ऐसा लग रहा था जैसे वे एक गाय को कसाइयों के बाड़े में छोड़कर जा रहे हैं। उन्होंने मुड़कर मुझे देखा तक नहीं, या यों कहूं कि उनमें इतनी शक्ति ही शेष नहीं रह गई थी कि वे मुझे मुड़कर देखते। वे जाते रहे और मैं डबडबाई आंखों से उन्हें देखती रही।

इतना होते हुए भी मैंने आपसे कभी शिकायत नहीं की। आप स्वयं अपने विचारों में उलझे हुए थे, आप स्वयं अपनी समस्याओं से घिरे हुए थे। ऐसी स्थिति में मैं अपनी समस्स्याओं से आपको परेशान करना उचित नहीं समझती थी। आपने एक-दो बार पूछा भी था कि तुम सुखी तो हो और मैंने जबरदस्ती की मुस्कराहट ओढ़कर कहा था कि मैं बहुत सुखी हूं, बहुत सन्तुष्ट हूं।

मैं उस दृश्य को नहीं भुला पा रही हूं जब मैं सर्दी में बीमार पड़ गई थी, मैं जमीन पर सोती रही क्योंकि घर में एक ही खाट थी और उस पर आपके पिता जी सोते थे, जमीन पर पूरा बिछौना नहीं था और ओढ़ने के लिए बोरी की जो सिली हुई गुदड़ी थी वह पर्याप्त नहीं थी। आप स्वयं जानते हैं कि आपके गांव में कितनी सर्दी पड़ती है और ऐसी सर्दी में जब पूरे पहनने के लिए कपड़े नहीं थे. ओढ़ने के लिए पूरी गुदड़ी नहीं थी तो सर्दी लगना और बुखार आना स्वाभाविक था। जब सुबह मैं उठने के लिए उद्यत हुई तो मैं उठ नहीं पाई। ऐसा लग रहा था जैसे मेरा सारा शरीर टूट रहा है, दिमाग चक्कर खा रहा था और उस समय १०४° के आसपास में बुखार अनुभव कर रही थी।

परन्तु मैं फिर भी हिम्मत करके उठी और चक्की चलाने लगी। मैं कोशिश कर रही थी फिर भी मैं स्वयं अपने आप में नहीं थी। मुझे कुछ भी पता नहीं था कि चक्की चलाते-चलाते कब मैं संज्ञाशून्य-सी हो गई और मेरा सिर चक्की के हत्थे पर टिक गया।

मुझे होश तब आया जब मेरी कमर पर जोरों की लात लगीऔर इसके साथ-ही-साथ गालियों की बौछार मुझे झेलने को मिली, वह मेरे लिए आश्चर्यजनक थी, मैं अपने आपे में नहीं थी, मुझे यह भी ज्ञात नहीं था कि कमजोरी की वजह से मैं इस बुखार में कब बेहोश हो गई हूं और कब चक्की का चलना बन्द हो गया है।

जब आपकी माताजी ने चक्की चलने की आवाज नहीं सुनी तो वे दबे पाँव यह देखने के लिए आईं कि बहू क्या ढोंग कर रही है? और जब उन्होंने देखा कि

मैं चक्की के हत्थे पर सिर रखकर पड़ी हूं तो उन्होंने सोचा कि यह सो रही है और उन्होंने जितनी तेजी से और जोर से लात मेरी कमर पर लगा सकती थीं लगाई। हो सकता है कि उन्होंने लात धीरे लगाई होगी परन्तु एकबारगी ही मेरा सिर चक्कर खा गया और मैं वहीं पर बेहोश होकर गिर गई, लात के प्रहार से चक्की का हत्था मेरे सिर में घुस गया और खून बह निकला।

परन्तु उन्होंने इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझी कि उस खून को बन्द करने का उपाय भी करना है, या वेहोशी को दूर करने का भी यत्न करना है, पता नहीं मैं कब तक वहां पड़ी रही, खून बह-वहकर सूख गया था और जब मेरी आंख खुली, तब दिन के तीन बजे थे और मैं वहीं चक्की के पास पड़ी हुई थी।

आज भी वह चोट का निशान रह-रह कर साल जाता है और इतना जोरों से दर्द उठता है कि मैं सहन नहीं कर पाती। पिताजी के यह पूछने पर कि खून कैसे निकला तो माताजी ने कहा था कि मर जाती तो अच्छा था, जिन्दा रहकर यह क्या करेगी और इस घर का क्या भला कर सकेगी ?

उफ् ! आज इस जंगल में बैठा हूं, तुम से बहुत दूर, पर—सच कहता हूं कि तुम्हारे साथ जो घटनाएं घटी हैं वे सब रह-रहकर मेरे दिमाग में बराबर चक्कर काटती रहती हैं. मैं जितना ही इन घटनाओं को भुलाने का प्रयत्न करता हूं उतनी ही ज्यादा ये घटनाएं मेरे मानस को उद्वेलित करती रहती हैं, वास्तव में ही मेरा समाज आज के समय में बहुत ही पिछड़ा हुआ है और इस समाज में तूने जो कुछ भोगा है, जिस प्रकार से भोगा है, वे घटनाएं जब स्मरण आती हैं तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और मैं अपने आप में कांपकर रह जाता हूं।

मैंने तो अपने आपको उस समाज से कुछ समय के लिए काट लिया है एक प्रकार से अपने आपको अलग कर लिया है पर तुम उसी समाज में हो, उसी वातावरण में हो, उसी परिवार में हो और उस दमघोटू वातावरण में तुम किस प्रकार से सांस ले रही होंगी, यह सोचकर मैं अपने आपको अपराधी-सा महसूस करने लग जाता हूं।

इस समय मैंने एक पहुंचे हुए साधु से "नखदर्पणादि खण्ड विभूति" ज्ञान प्राप्त किया है, इसके माध्यम से हम अपने अंगूठे के नाखून में वर्तमान जीवन की सारी घटनायें देख लेते हैं, मैंने यह साधना सीखने के बाद सबसे पहले तुम्हें देखने का प्रयत्न किया था, केवल इसी तथ्य से कल्पना कर सकती हो कि मेरे मानस में तुम्हारा बिम्ब तुम्हारा स्मरण कितना अधिक शक्तिशाली है।

और जब मैंने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के नाखून में तुम्हारा चित्र देखा तो मेरा हृदय धक् से रह गया। एक दुबली-पतली लाश की तरह आंगन में एक तरफ बैठी हुई हो, शरीर पर फटी हुई साड़ी पहनी हुई है, आंखें अन्दर धंस गई हैं, शरीर पर मांस का नाम-निशान तक नहीं है और ऐसा लग रहा है जैसे अस्थि-पंजर पर जबरदस्ती की जीवित खाल चढ़ा दी हो।

सच कहता हूं तुम्हारे इस रूप को देखकर मैं अपने आपे में नहीं रह सका था, मैंने अपने आपको पूरी तरह से अपराधी महसूस किया था, उस दिन मैंने अपने आपको कितनी बार धिक्कारा होगा इसकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकता, मैंने स्वयं को धिक्कारते हुए कहा कि यह सब तुम्हारे कारण हुआ है। इसमें केवल तुम्हारा स्वार्थ है, तुमने अपने स्वार्थ के लिए एक पूरे जीवन को बरबाद कर दिया है, उसके यौवन को, उसकी खुशियां और उसकी उमंगों को, दुःख की भट्टी में बेरहमी से फेंक दिया है। तुमने इस बात को सोचा भी नहीं कि जो कुछ तुम कर रहे हो, उसके पीछे कितना कुछ हो जाएगा, उस दिन तो सोच-सोचकर पागल-सा हो गया था और उस रात्रि को हिचकियां भर-भरकर जितना रोया था उतना शायद अपने पूरे जीवन में भी नहीं रोया हूंगा, उस दिन जितना अपने आपको अपराधी महसूस किया था उतना कभी भी महसूस नहीं किया। जिस दिन मेरे पांवों में सांप लिपट गया था और मृत्यु मुझसे एक क्षण के अन्तराल पर थी उस दिन भी मैं इतना विचलित नहीं हुआ था जितना उस दिन तुम्हें नाखून में देखकर हुआ था।

परन्तु मुझे सन्तोष है कि तुम जीवित हो। मुझे उस दिन कम-से-कम इस आशंका से तो मुक्ति मिल गई कि जिसने मेरे लिए त्याग किया है जिसने मेरे लिए अपने आपको बलिदान किया है उसकी सांसें अभी तक कायम हैं, उसके शरीर का मांस भले ही समाप्त हो गया हो, चमड़ी अभी तक जिन्दा है और एक बार फिर मेरे हृदय ने पुलक महसूस की है, आनन्द अनुभव किया है, घर जाने की ललक पैदा की है और यह इच्छा बलवती हुई है कि मुझे जल्दी-से-जल्दी तुमसे मिलना चाहिए, जल्दी से-जल्दी अपनी बांहों में भरकर तुम्हें उठा लेना चाहिये।

इस समय मैं तुमसे बहुत दूर हूं। इतना दूर कि यदि मैं जल्दी-से-जल्दी आना भी चाहूं तब भी मुझे काफी समय लग जायेगा और यह भी कि जिस उद्देश्य के लिए मैंने इतना सब कुछ झेला है वह अब कुछ ही कदम दूर रह गया है। मैंने बहुत कुछ प्राप्त किया है और यदि तुम मेरी उपलब्धियां, मेरी सफलता सुनोगी तो तुम एकबारगी प्रसन्न हो जाओगी, तुम्हारे चेहरे पर आत्म-सन्तोष की झलक उभर आयेगी, तुम्हारी आंखों में विश्वास की ज्योत्सना फैल जायेगी, तुम्हारे होठों पर खुशी का तराना गुनगुना उठेगा और मन को एक बार फिर विश्वास हो जाएगा कि कुछ प्राप्त हुआ है, जिसके लिए इतना सब कुछ किया है।

तुम्हारा कोई पत्र मेरे सामने नहीं है पर तुम्हारा मौन-पत्र अपने आपमें अन्यतम है, घर से रवाना होते समय तुमने जिस साहस के साथ मुझे बिदाई दी थी वह अपने आप में अन्यतम क्षण है। उस समय, जब कि मैं कायर हो रहा था, मेरे पांव कमजोर पड़ रहे थे और जब यात्रा स्थगित करने का निर्णय कर लिया था तब तुमने जिस साहस के साथ, जिस वीरता और धैर्य के साथ मुझे सलाह दी थी, आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा दी थी, कुछ कर गुजरने के लिए साहस दिया था वह आज भी मेरे सामने ज्यों-का-त्यों है। मैं उन आंखों की चमक भुला नहीं पाया हूं, तुम्हारे उन

शब्दों ने मुझे बराबर सहायता दी है और मैं आश्चर्य से उस समय तुम्हें देख रहा था, तुम्हारे परिवर्तित रूप को देख रहा था, भारतीय नारी के आदर्श को परख रहा था कि यह वही नारी है जो मेरा प्रस्ताव सुनकर हतप्रभ हो गई थी, जिसकी आंखें डबडबा आई थीं, जिसका चेहरा फीका पड़ गया था और जिसके शरीर में एक कंपन एक थरथराहट पैदा हो गई थी, पर जब इसी भारतीय नारी ने अपने पति को कमजोर होते हुए देखा है तो इसका रूप ही बदल गया है।

वास्तव में ही उन क्षणों में तुम्हारा धैर्य तुम्हारा साहस अप्रतिम था, तुमने साहस के साथ मुझे जाने के लिए प्रेरित किया। तुमने जो कुछ कहा था वे अक्षर मेरे जीवन के लिए तो स्वर्णिम अक्षर हैं। तुम्हारा वह साहस, वह ओजस्वी रूप मेरे लिए अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक रहा है।

पर······पर जब मैं रवाना होने के लिए तैयार हुआ और जिस दिन मैंने रवाना होने का निश्चय कर लिया सारा सामान बंध गया तब तुम्हारा वही पत्नी रूप पुनः उभर आया। तुम्हारा चेहरा फिर आसुओं से भर गया और तुमने जो कुछ साहस दिखाया था वह एकबारगी ही ढह गया। मैं कितने दुखी मन से, कितने व्यथित हृदय से वहां से रवाना हुआ था, वह मैं ही जानता हूं। परन्तु उससे भी ज्यादा तुम व्यथित थीं, ज्यादा दुखी और उदास थीं। ऐसा लग रहा था जैसे देह से प्राण जा रहे हों और वह देह बेबस खड़ी देख रही है। उस समय मैं जान करके भी अनजान बना रहा, मुझमें इतना साहस ही नहीं रह गया था कि मैं मुड़कर तुम्हें और तुम्हारी उस अवस्था को देखूं।

मुझे विश्वास है तुम सुख से होगी, मेरी तरफ से किसी प्रकार की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मैंने तुम्हें एक से अधिक बार देखा है, यह सब साधना के द्वारा ही सम्भव हो सका है और जब भी तुम्हारा स्मरण आता है मैं अपने आपको रोक नहीं पाता हूं, तुम्हें देख लेता हूं और अपने मन को शान्ति दे देता हूं।

मेरे माता-पिता की सेवा करना···उन्हें कष्ट न हो, इस बात का ध्यान रखना परिवार का मंगल ही तुम्हारा मंगल है, माता-पिता का आशीर्वाद ही हमारे जीवन का पाथेय है।

शीघ्र ही तुम्हें पत्र लिखूंगा, जिसमें विस्तार से अपनी बात को कह पाऊंगा।

स्नेह युक्त,
(नारायणदत्त श्रीमाली)

डा० श्रीमाली का पत्र ऋतु के नाम

प्रषक : डा नारायणदत्त श्रीमाली

स्थान : जोधपुर

प्राप्तकर्त्ता : ऋतु नैनीताल

आलोक—इस पत्र के माध्यम से पण्डितजी के मानस चिन्तन का आभास मिलता है कि किस प्रकार से गृहस्थ में रहते हुए भी अपने आपको वीतरागी-सा बना रखा है और किस प्रकार से एक साधक गृहस्थ में रहते हुए भी वानप्रस्थ वत् जीवन व्यतीत कर सकता है, जीवन का प्रत्येक क्षण कितना अधिक मूल्यवान होता है और उसका किस प्रकार से हिसाब रखा जाता है इसका आभास इस पत्र के माध्यम से साधकों को प्राप्त होता है।

प्रिय ऋतु,
शुभाशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र मिला, जिसमें तुमने आरोप लगाया है कि मैं जान बूझ कर तुम्हारे पत्र का उत्तर नहीं देता या तुम्हें पत्र का उत्तर प्राप्त करने में बहुत अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं पत्र का उत्तर देना नहीं चाहता या तुमसे अथवा तुम्हारे परिवार से उदासीन हूं, अपितु इसका कारण मेरी अत्यधिक व्यस्तता है। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण रचनात्मक कार्यों में ही व्यतीत हो। आगे के जीवन में मेरी जितनी सांसें हैं उनका हिसाब-किताब समाज के पास हो, एक भी क्षण व्यर्थ में नहीं बीत जाए, इस बात का मुझे हमेशा आभास रहता है।

तुमने अपने पत्र में आरोप लगाया है कि मैं उस तरफ पिछले एक वर्ष से नहीं आ सका हूं या मैं नहीं आना चाहता हूं, तुम्हारा ऐसा सोचना व्यर्थ है। मैं स्वयं तुम्हारे परिवार सें मिलने के लिए उत्सुक हूँ, उनकी सेवा मेरे मानस में इस समय भी है, उनकी भावनाओं को मैं भली प्रकार से समझता हूँ और मेरे न आने से आप सब लोगों को कितनी खीझ, कितनी उदासी और कितनी बेचैनी होती होगी, इसकी मैं कल्पना कर सकता हूं।

परन्तु तुम्हारे सामने प्रश्न केवल तुम्हारे परिवार का है, जबकि मेरे सामने इस प्रकार के सैकड़ों, हजारों परिवारों का प्रश्न है, तुम्हारी समस्याओं से तुम चिन्तित हो और चाहती हो कि इस समस्या का निराकरण जल्दी हो जाए। जिस प्रकार से तुम सोच रही हो उसी प्रकार से अन्य परिवार के लोग भी तो सोचते होंगे। भारतवर्ष में कम-से-कम एक करोड़ से ज्यादा लोगों से मेरा व्यक्तिगत परिचय होगा और इनमें से कम-से-कम पांच-दस लाख परिवार ऐसे होंगे जिनका मुझसे निकट का परिचय होगा। वे यह चाहते हैं कि मैं उनके यहां भी जाऊं, उनकी बातें भी सुनूं, उनकी समस्याओं का निराकरण भी करूं, जिस प्रकार से तुम्हें और तुम्हारे परिवार को खीझ या बेचैनी होती है उसी प्रकार से इन दस लाख परिवारों को भी होती होगी, जिस प्रकार से तुम मुझसे मिलने के लिए आतुर हो उसी प्रकार से और लोग भी तो होंगे। काश्मीर से कन्याकुमारी तक मेरा परिवार फैला हुआ है, मैं उन सब परिवारों का एक सदस्य हूं, उनके सुख-दुख का भागी हूं, उनकी समस्याओं के निराकरण में सहयोगी हूं, उनके हर्ष और विषाद, दुख और सुख आदि में मेरा भी योगदान रहा है, इसीलिए इन सबसे मेरा आत्मीय सम्बन्ध है, मेरा अपनत्व है, निकट का सम्पर्क है।

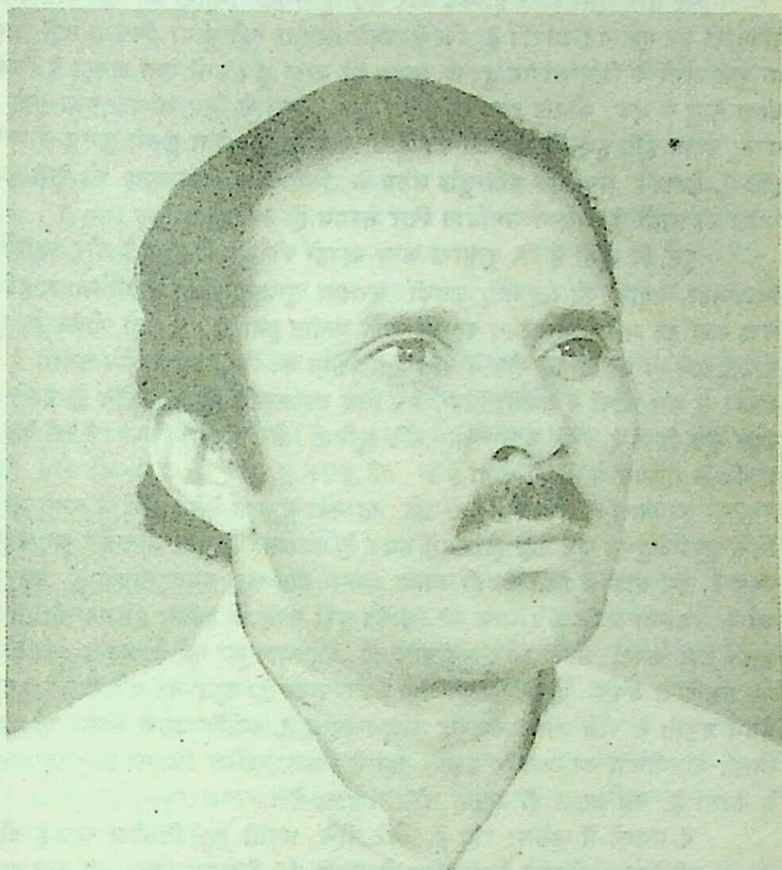
इस सम्बन्ध या सम्पर्क के पीछे किसी प्रकार का कोई स्वार्थ नहीं है, उन परिवारों से मुझे कुछ लेना नहीं है, उनके और मेरे बीच जो सम्वन्ध हैं वे आत्मीय संबंध हैं, प्रेम के सम्बन्ध हैं, सरलता और सहजता के सम्वन्ध हैं, इसीलिए ये सम्वन्ध स्थायी हैं और इतने वर्ष बीतने के वाद भी इन पर किसी प्रकार की गर्द नहीं जमी है।

जो सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित होते हैं वे ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहते, जिन सम्बन्धों के पीछे केवल मात्र स्वयं का ही हित चिन्तन होता है वे सम्बन्ध क्षणजीवी होते हैं, जिन सम्वन्धों के पीछे वासना, धोखा, कपट, छल या स्वार्थ होता है, उन सम्बन्धों का अन्त अत्यन्त ही दुखदायक होता है, मैं इस प्रकार के सम्बन्धों की भर्त्सना करता हूं, इस प्रकार के सम्बन्धों का निर्वाह मैं कर ही नहीं सकता, मैं तो अपने जीवन में पूरी तरह से उन्मुक्त रहा हूं। मेरे जीवन का कोई भी क्षण गोपनीय नहीं रहा है, मेरे जीवन का प्रत्येक हिस्सा सार्वजनिक है। मैं चाहता हूं कि मेरा यह जीवन और आगे का जीवन इसी प्रकार सार्वजनिक बना रहे, ऐसी स्थिति में छल, कपट, धोखा की गुंजाइश कहां हो सकती है?

मैं तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की समस्याओं से परिचित हूं, परन्तु यह समस्या इतनी तीव्र नहीं है कि उसका समाधान आज का आज ही होना आवश्यक हो। तुमने अपने पत्र में आरोप लगाया है कि मैं तुम लोगों को भुला बैठा हूं या तुम्हारे कार्यों के बारे में मैं रुचि नहीं ले रहा हूं, यह सोचना व्यर्थ है। मैं अपने जीवन में सत्य का हामी रहा हूं। मैं उतनी ही बात कहता हूं जितनी कि कर सकता हूं, व्यर्थ में किसी को न तो धोखे में रखता हूं और न उसे दिवास्वप्न दिखाता हूं।

बिलम्ब होने की बात मैं स्वयं स्वीकार करता हूं और यह शिकायत तुम्हारी

ही नहीं है अपितु सैंकड़ों-हजारों परिवारों की है, पर तुम स्वयं सोचो कि तुम्हारी तरफ तो इसलिए आना है कि तुम लोगों से मिलना है, पर जब मैं घर से रवाना होने का उपक्रम करता हूं और ज्ञात होता है कि कलकत्ता के किसी परिचित परिवार का पुत्र बीमार है और उनकी सारी आशा केवल मेरी ओर ही लगी हुई है, उनकी यही



डॉ० श्रीमाली

भावना है कि यदि मैं वहां पहुंच ाता हूं तो उनका इकलौता पुत्र बच सकता है तो तुम बताओ कि ऐसी स्थिति में मैं तुम्हारी तरफ कैसे आ सकता हूं ? मेरा पहला कर्त्तव्य यह होता है कि मैं उस दुखी परिवार के पास पहुंचूं । उसे सान्त्वना दूं और यदि मुझ में कुछ ज्ञान है तो उसके द्वारा उसके पुत्र को स्वस्थ करूं ।

कई बार ऐसा होता है, कई बार ऐसा हुआ है, तुम्हारा ही नहीं और भी कई परिवारों का मुझ पर आरोप है कि मैं उनसे मिलता नहीं हूं या मिलना नहीं चाहता या कुछ क्षणों के लिए आकर तुरन्त रवाना हो जाता हूं । उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे ग्रीष्म ऋतु में एक शीतल हवा का झोंका कुछ क्षणों के लिए आकर चला गया हो, परन्तु इतना होते हुए भी मैं उन कार्यों को प्राथमिकता देता हूं जो तुरन्त आवश्यक होते हैं, जिनका समाधान यदि कुछ समय के लिए टाल दिया जाए तो ऐसी घटना घटित हो जाती है जिसका समाधान फिर सम्भव ही नहीं होता ।

मुझे तो खुशी है कि तुम्हारा जन्म पहाड़ों की गोद में हुआ है और पहाड़ों की निश्छलता, पहाड़ों की सहजता, उसकी सरलता तुम्हारे जीवन में भी व्याप्त हुई है, मेरा स्वयं का अधिकांश जीवन पहाड़ों में ही व्यतीत हुआ है । मेरे तो जीवन के सुख-दायक क्षण ही प्रकृति की गोद में बीते हैं, प्रकृति को जिस रूप में मैंने समझा है उस प्रकार से कम लोगों ने समझा होगा, मेरे लिए यह प्रकृति मां है, बहिन है, इसने मुझे बहुत कुछ दिया है, मेरे जीवन को यदि खुशियों से परिपूर्ण किया है तो वह इस प्रकृति के माध्यम से ही हो पाया है ।

पर आज मैं उस प्रकृति से कट सा गया हूं, एक ऐसे लोक में अपने आपको घिरा हुआ अनुभव कर रहा हूं जिसमें बंधन है, कसावट है मोह और प्रेम का चतुर्दिक जाल है, इस लोक से जितना ही ज्यादा अलग होने का प्रयत्न करता हूं उतना ही ज्यादा उलझता जाता हूं । आज का मानव पूरी तरह से कृतिम हो गया है इसीलिए उसमें छल, कपट, धोखा और अनाचार की बाहुल्यता आ गई है, इतना होने पर भी वह प्रकृति से अपने आपको अलग नहीं कर पाया है, बहुत बड़े-बड़े मकान बनाकर उसमें प्रकृति के पौधे लगाने को वह आतुर रहता है, क्योंकि उसके जीवन का आधार उसकी मानवीयता का आधार प्रकृति रहा है । अतः व्यक्ति जितना ही ज्यादा प्रकृति से कटता है, वह उतना ही ज्यादा खोखला होता है ।

मैं जंगलों में अकेला रहा हूं, मेरे नीचे धरती का बिछौना रहा है और मैं आकाश की चादर ओढ़कर निर्द्वन्द्व रूप से सोया हूं । मेरे पास कुछ नहीं होते हुए भी मैं अपने आपको संसार का सबसे ज्यादा सम्पन्न समझता था क्योंकि मेरे पास प्रकृति थी, उस प्रकृति के हजारों रूप मेरे सामने थे, मैं प्रत्येक पल उस प्रकृति के परिवर्तित रूप को देखता था और अपने आपमें मुग्ध होता था । जितना ही ज्यादा मैं प्रकृति के निकट गया हूं उतना ही ज्यादा मुझे सुख और सन्तोष मिला है, जितना ही ज्यादा मैंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है उतनी ही ज्यादा मुझे अनुकूलता प्राप्त हुई है ।

और आज मैं बिल्कुल दूसरा जीवन जी रहा हूं, रहने के लिए बहुत बड़ा मकान है, खाने के लिए सुस्वादु भोजन है, काम के लिए नौकर चाकर हैं और इतना सब कुछ होते हुए भी मेरे मन में शान्ति नहीं है। एक छटपटाहट है कि मैं कितना जल्दी इस कृत्रिमता से निकलूं और प्रकृति की गोद में चला जाऊं। मुझे यह भवन, यह सुख-सुविधाएं बिल्कुल सान्त्वना नहीं देतीं। मैं एक प्रकार से अपने-आपको घिरा हुआ अनुभव करने लग गया हूं। जंगलों में रहते हुए जो मस्ती थी, जो उन्मुक्त भावना थी वह समाप्त हो गई है और इस समय तो चौबीसों घण्टे कार्य के अलावा कुछ भी मेरे सामने नहीं रह गया है।

प्रातः चार बजे से उठ कर रात्रि को ग्यारह बजे तक मैं एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं कर पाया या यों कहा जाए कि विश्राम करने को समय ही नहीं मिलता। मैं स्वयं इस प्रकार बीस-बीस घण्टे कार्य करते-करते थक गया हूं, मैं चाहता हूं कि जितना जल्दी इससे छूटकर उस तरफ आ सकूं, प्रकृति की गोद में बैठ सकूं, उसके साथ बातें कर सकूं और एक बार पुनः अपने जीवन को आनन्द के क्षणों में डुबो सकूं।

मैंने दोनों प्रकार का जीवन जीया है, मैं भूख और अभाव में भी रहा हूं और सम्पन्नता को भी अनुभव किया है। पत्थरों और चट्टानों पर भी सोया हूं और मखमली गद्दों पर भी विश्राम किया है। जंगलों में विचरण करता रहा हूं और ऊंचे महलों और होटलों में भी रहा हूं परन्तु इन दोनों स्थितियों में से यदि मुझे एक स्थिति चुनने के लिए कहा जाए तो निश्चय ही मैं उस स्थिति को ज्यादा श्रेयस्कर मान रहा हूं जिसका रास्ता प्रकृति की तरफ है। इस प्रकार के ऊंचे-ऊंचे भवनों में रहते हुए मुझे किंचित भी सुख नहीं मिलता, मखमली गद्दों पर लेटकर मुझे नींद नहीं आती, आनन्द और वैभव के बीच में रहते हुए भी मेरा मन छटपटाता रहता है। एक प्रकार का अभाव-सा अनुभव करता है, ऐसा लगता है जैसे मैं अपने जीवन से कट गया हूं, मूल जीवन स्रोत से परे हट गया हूं। मेरे जीवन की पूर्णता उसी दिन हो सकती है जिस दिन वे प्रकृति से पुनः तादात्म्य स्थापित कर सकूंगा। जब भी मुझे प्रकृति की गोद में जाने का अवसर मिलता है, मेरे लिए वे क्षण स्वर्णिम होते हैं, उन क्षणों का मैं जी भरकर आनन्द लेता हूं और पुनः अपने आपको तरोताजा और स्वस्थ अनुभव करने लग जाता हूं।

इसलिए मेरी तो स्वयं की यह इच्छा रहती है कि मैं उस तरफ आऊं, आप लोगों के परिवार के बीच रहूं, प्रकृति के साथ अपने आपको एकाकार करूं और कुछ क्षण भी यदि मुझे इस प्रकार के मिल जाएं तो वे क्षण मेरे स्वयं के हो जाएं, मेरे नाम लिख लिए जाएं।

परन्तु मैं इस प्रकार के क्षणों से वंचित हो गया हूं, चाहते हुए भी वे क्षण मेरे नही रहे, क्योंकि मैं इतना अधिक स्वार्थ अपने आपमें पैदा नहीं कर सकता। जिस उद्देश्य के लिए मैंने अपना घर बार छोड़ा था, जिस लक्ष्य के लिए मैंने अपने यौवन

को दांव पर लगाया था, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कष्ट सहे थे तो क्या वह उद्देश्य मेरा व्यक्तिगत था ? मैं अपने जीवन में व्यक्तिगत जैसी कोई मान्यता नहीं रखना चाहता । मैं तो चाहता हूं कि मेरा प्रत्येक क्षण समाज के लिए समर्पित रहे, मैं जो कुछ सीख सका हूं, जो कुछ मैंने प्राप्त किया है उसे दोनों हाथों से लुटाऊं, समाज को ज्यादा-से-ज्यादा वह ज्ञान दूं जो मैंने प्राप्त किया है और इस ज्ञान के माध्यम से अपने समाज का, अपने देश का ज्यादा हित-सम्पादन करूं ।

और इस हित सम्पादन में यदि मुझे व्यक्तिगत क्षण नहीं मिलते हैं तो मुझे कोई चिन्ता नहीं, यदि मुझे आराम और सुविधाएं नहीं मिलती हैं तो इसका मुझे गिला नहीं है, यदि चाहते हुए भी मैं कुछ क्षण अपने लिए नहीं निकाल सकूं तो मुझे इस बात की कोई परवाह भी नहीं है । यदि मेरे आगे का पूरा जीवन समाज के लिए समर्पित हो जाए तो यह मेरे लिए खुशी की बात होगी । मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण समाज का हित कर सकता हो तो इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात कुछ हो ही नहीं सकती ।

मैंने भारत की प्राचीन विद्याओं को प्राप्त करने में जो कष्ट भोगा है, जो दुख झेला है, जो परेशानियां उठाई हैं, वे मैं ही समझता हूं और मेरे मन की यही आकांक्षा है कि मैं इस ज्ञान को अपने साथ नहीं ले जाऊं, जो कुछ मैंने प्राप्त किया है उसे समाज में बांट दूं, लोगों को दे दूं और इस प्रकार से उस ज्ञान को जीवित रखूं जिससे कि आने वाली पीढ़ियां उस ज्ञान से वंचित न हों ।

पर मुझे दुख है कि मेरे समाज की वर्तमान पीढ़ी बहुत ही उतावली है, उसमें धैर्य और संयम का जरूरत से ज्यादा अभाव है । मैं अपने ज्ञान को देना चाहता हूं और उनमें इस ज्ञान को प्राप्त करने की क्षमता ही नहीं है । मैं चाहता हूं कि अपने जीवन में निर्जीव पुस्तकों के लेखन की अपेक्षा कुछ सजीव ग्रन्थ तैयार करूं, कुछ ऐसे युवक तैयार करूं जो इस ज्ञान को प्राप्त कर सकें, इस ज्ञान में समृद्ध हो सकें, इस ज्ञान में पूर्णता प्राप्त कर सकें जिससे कि मेरी मृत्यु के बाद भी यह ज्ञान मेरे साथ ही समाप्त न हो जाये अपितु यह ज्ञान उन युवकों के माध्यम से जीवित रहे, उनके द्वारा यह ज्ञान की धारा आगे बढ़ती रहे और इस प्रकार आगे के वर्षों तक यह ज्ञान हमारे समाज में जीवित रह सके जिससे कि हमारा समाज लाभान्वित हो, हमारा देश गर्व से उन्नत बना रह सके, हमारे महर्षियों की धरोहर सुरक्षित रह सके ।

परन्तु इतने वर्षों में मैं अन्य सारे कार्यों में सफल हो सका परन्तु प्रयत्न करने पर भी ऐसे १५-२० युवक प्राप्त नहीं हो सके जो इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हों । यह बात नहीं है कि मेरे पास इस प्रकार की भावना लेकर लोग आते नहीं हों, नित्य ५०-६० लोग इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भागे चले आते हैं परन्तु वे परिश्रम करना नहीं चाहते, वे चाहते हैं कि मैं अपने ज्ञान को उनमें परिवर्तित कर दूं । वे चाहते हैं एक ही दिन में वे महान तन्त्र-शास्त्री, या मन्त्र-शास्त्री बन जायें, वे एक ही दिन में प्रकाण्ड ज्योतिष और भविष्यवक्ता बनना चाहते

हैं, पर ऐसा कैसे सम्भव है ? जब मैं उन्हें अपनी कसौटी पर कसता हूं तो वे सोने की जगह पीतल निकल आते हैं और एक-दो दिन के वाद ही भाग खड़े होते हैं। मुझे दुःख है कि मेरे देश के साठ करोड़ व्यक्तियों में से साठ व्यक्ति भी ऐसे नहीं हैं जिनमें इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की ललक हो, जिनमें इस प्रकार की विद्या सीखने की प्रबल इच्छा हो, जो परिश्रम से सम्वन्ध जोड़ने वाला हो, जो साधना के क्षेत्र में कष्ट उठाने में समर्थ हो; जिनका संकल्प दृढ़ हो, जिनकी सांसों में परिपक्वता हो जिसके हृदय में कुछ कर गुजरने की क्षमता हो, ऐसे युवक मिल ही नहीं रहे हैं। मेरे देश में ऐसे युवकों का अकाल है और ऐसी स्थिति देख कर कई वार तो मेरी आंखें डवडवा आती हैं कि क्या यह ज्ञान जो कुछ मैंने प्राप्त किया है, वह मेरे साथ ही समाप्त हो जाएगा ? इतने अधिक कष्ट उठाकर जो कुछ मैंने प्राप्त किया है, वह सब वेकार चला जाएगा ? इन सारी साधनाओं को पन्नों पर उतारने से क्या हो आएगा जव तक सजीव ग्रन्थ नहीं लिख पाऊगा तव तक यह सब बेकार है, यह सब व्यर्य है।

मन्त्र एक ध्वन्यात्मक प्रयोग है, मन्त्र की मूल आत्मा ध्वनि है। उसका आरोह अवरोह है। किस मन्त्र को किस प्रकार से उच्चारित करना है यह मूल बात है कि मन्त्र को पढ़ लेना ही कुछ नहीं है, जब तक उस मन्त्र की ध्वनि, उसका आरोह, अवरोह उसकी लय, ज्ञात नहीं होती तब तक उस मन्त्र का प्रभाव हो ही नहीं सकता। इसीलिए हमारे शास्त्रों में बताया गया है कि मन्त्र गुरु मुख से लेना चाहिए। इसका मूल कारण यह है कि गुरु ही उच्चारण कर उस मंत्र की ध्वनि का आभास दे सकता है। यह आभास कागज नहीं दे सकते, पुस्तकों में लिखे मन्त्र नहीं दे सकते, इसलिए मन्त्र का ज्ञान, मन्त्र की मूल आत्मा, पुस्तकों के माध्यमों से पहचानी ही नहीं जा सकती, उसे समझने के लिए तो गुरु की नितान्त आवश्यकता है, गुरु ही उसे इस वात का ज्ञान दे सकता है कि किस मन्त्र का उच्चारण किस प्रकार से करना है ? किस प्रकार से उसे प्रयोग में लाना है ? किस प्रकार उसका उपयोग करना है ? और उस मन्त्र से सम्वन्धित और अन्य क्या-क्या विद्याएं हैं उसका कीलन और उत्कीलन क्या है ? यह सब पुस्तकें नहीं वता सकतीं। इसका ज्ञान तो तभी हो सकता है जब सामने गुरु बैठा हो और वह शिष्य गुरु चरणों में बैठकर सीख रहा हो। इसके लिए चाहिए धैर्य, संयम और परिश्रम की भावना और…और मेरे युवकों में आज उन्हीं गुणों का अभाव है।

मेरे लिए यह कितनी बड़ी दुख की वात है कि मैं इस प्रकार का ज्ञान देना चाहता हूं और ज्ञान लेने वाले मिल ही नहीं पाते। मैं ज्यादा-से-ज्यादा इसको बांटना चाहता हूं और सामने वाले की झोली देखता हूं तो वह फटी हुई मिलती है मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं चाह कर भी कुछ नहीं कर पा रहा हूं, मेरे मन में किस प्रकार की आग धधक रही होगी, कितनी बेचैनी और छटपटाहट मेरे मानस में रहती होगी इसकी तुम कल्पना कर सकती हो।

और ऐसे ही क्षणों में जब मेरा मानस बोझिल हो जाता है छटपटाहट से दिल

बेचैन हो जाता है, तब मैं प्रकृति की तरफ भागने की कोशिश करता हूं, कुछ दिन वहां रहने का प्रयत्न करता हूं परन्तु फिर मेरा कर्त्तव्य मुझे समाज में ठेल देता है, मेरी आत्मा कहती है कि तुम्हारे इन क्षणों पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है, तुम्हारे जीवन की जो सांसें हैं वे समाज की हैं, प्रत्येक सांस का हिसाब समाज को देना है, अपने स्वार्थ के लिये समाज से कटकर एक तरफ बैठ जाना कायरता है, और मैं अपने जीवन के साथ 'कायरता' शब्द को ज़ोड़ना नहीं चाहता, इसीलिये भारी मन से, और नवीन आशा के साथ पुनः समाज में घुस जाता हूं कि शायद इस बार कोई ऐसा युवक मिल जायगा जो कुछ सीख सकेगा, जिसमें सीखने की इच्छा होगी। कार्य करने की उत्कट भावना होगी और मैं अपने ज्ञान को देकर अपने आपको हल्का अनुभव करने लग सकूंगा।

मैं भीड़ इकट्ठी करने में विश्वास नहीं रखता, यदि मैं चाहता तो अपनी इन साधनाओं के द्वारा इस प्रकार के चमत्कार दिखा सकता था या दिखा सकता हूं जोकि अपने आप में अन्यतम हों, और इस प्रकार मैं अपने इर्द-गिर्द शिष्यों की लम्बी-चौड़ी फौज इकट्ठी कर सकता था, परन्तु मैं इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत हूं, मैं मानव हूं अपने आपको भगवान कहलाने में विश्वास नहीं रखता। मैंने प्रारंभ से ही इस प्रकार के विचारों को हेय दृष्टि से देखा है, मेरे विचारों में यह आडम्बर है पाखण्ड है, जनता के साथ छल है, जीवन में शान्तिपूर्ण तरीके से ठोस रूप में जो कुछ भी कार्य किया जाता है, वह ज्यादा श्रेयष्कर होता है, समाज के लिये ज्यादा उपयोगी होता है, देश के लिये ज्यादा लाभदायक होता हैं।

मैं अपने जीवन में अत्यन्त ही सरल और सात्विक जीवन जीने को उचित समझता हूं। मेरे जीवन की 'फिलोसोफी' एक अलग ढंग की है। मैं अपने जीवन में अन्तर्मुखी ज्यादा रहा हूं। मैंने अपने आपको कभी उजागर करने का प्रयत्न नहीं किया, कभी भी अपनी प्रशंसा करने की कोशिश नहीं की, मैंने यह कभी नहीं चाहा है कि भीड़ इकट्ठी करूं, 'गुरु' कहलाऊं या ऊंचा सम्मान प्राप्त करूं।

इसकी अपेक्षा मैं इन सब चीजों से भागता रहा हूं, मैंने अपने जीवन में एक ही उद्देश्य रखा है कि जीवन में मौन रहकर जितना कार्य हो पाता है उतना वाचाल बन कर नहीं। यदि जीवन में ठोस कार्य करना है या कुछ उपलब्धि प्राप्त करनी है तो वह चुपचाप तरीके से ही हो सकती है। जिसको पाखण्ड प्रिय है, जो अपने आपको सम्मानित कराना चाहता है जो यह चाहता है कि वह दुनिया की नजरों में दिखाई दे, वह इस प्रकार का आचरण कर सकता है, मेरी प्रकृति इससे सर्वथा भिन्न है।

मैंने अपने जीवन में जो कुछ प्राप्त किया है, वह पूरे समुद्र में एक बूंद की तरह है, ज्ञान तो एक समुद्र की तरह होता है जिसका कोई ओर-छोर नहीं होता। मैंने इस समुद्र में डुबकी लगाने का प्रयन्न किया है और यह प्रभु की कृपा है कि मुझे मोती प्राप्त हुए हैं जो कि समाज के लिये गौरवयुक्त हैं।

यहां यह स्पष्ट कर दूं कि आज जो अपने आपको प्रसिद्ध साधु, मंत्र-शास्त्री, या

तांत्रिक कहते हैं उनमें से कई लोग मेरे साथ रहे हैं, और मुझसे गोपनीय तरीके से बहुत कुछ सीखा है, आज उनके पास लम्बी-चौड़ी भीड़ है, शिष्यों की पूरी जमात है, यह उनका चमत्कार है कि उन्होंने उस बूंद का समुद्र बना दिया है, परन्तु मेरे लिये यह सब व्यर्थ है, मैं इस प्रकार की धारणा के सर्वथा विपरीत हूं, इस प्रकार का पाखण्ड मेरी दृष्टि में हेय है ।

इसमें कोई दो राय नहीं कि शरीर, शरीर होता है उसको भी आराम की आवश्यकता होती है, वह भी विश्राम चाहता है और जिस प्रकार से मैं इस शरीर से बीस-बीस घण्टे काम लेता हूं, उसको देखते हुए यह निश्चित है कि यह शरीर बहुत लम्बे समय तक मेरा साथ नहीं देगा, परन्तु जब तक मैं जीवित हूं तब तक अकर्मण्य नहीं रहूंगा, मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण समाज को समर्पित है और समर्पित रहेगा ।

मैं शीघ्र ही तुम्हारी तरफ आने का प्रयत्न करूंगा और जल्दी ही मुझे समय मिल पायेगा, जबकि मैं तुमसे और तुम्हारे परिवार से मिल सकूंगा । और कुछ समय प्रकृति के साथ निर्मुक्त रूप से व्यतीत हो सकेगा ।

मेरा शुभाशीर्वाद सदैव आप लोगों के साथ है ।

स्नेह युक्त,
(नारायणदत्त श्रीमाली)

पत्र——डा० श्रीमाली के नाम

प्रेषक : अरविन्दकुमार
स्थान : झाबुआ (मध्य प्रदेश)
प्राप्तकर्त्ता : महामहोपाध्याय, डा० नारायणदत्त श्रीमाली

आलोक—एक शिष्य किस प्रकार से अपने जीवन को सर्मपित करके साधना के उच्च क्षेत्र पर पहुंच सकता है और किस प्रकार से उसके मानस में गुरु के प्रति सम्मान और श्रद्धा रहती है, उसके मानस का चिन्तन किस प्रकार से गुरु के साथ एकाकार रहता है इसका आभास इस पत्र के माध्यम से प्राप्त होता है जो कि साधकों के लिये अनुकरणीय है।

श्री अरविन्द कुमार पण्डितजी के प्रिय शिष्य हैं और कई वर्षों तक पण्डितजी के समीप रहकर उन्होंने उच्च्द स्तर की साधनाएं सिद्ध की हैं।

परम पूज्य गुरुदेव,

साष्टांग दण्डवत्

आज बहुत दिनों के वाद मैं आपको पत्र लिख रहा हूं, यद्यपि यह मेरी धृष्टता है कि मैं बिना आपकी आज्ञा के, आपको पत्र लिखने की चेष्टा कर रहा हूं, परन्तु मेरी विकलता इतनी अधिक बढ़ गई है कि मैं चाहते हुए भी अपने आपको रोक नहीं पा रहा हूं। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि आपको पत्र न लिखूं, आपके व्यस्त समय को लेने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, आपके चिन्तन में मैं विघ्न दूं ऐसा मैं उचित नहीं समझता, परन्तु पिछले एक महीने से मैं कुछ ऐसी आकुलता अनुभव कर रहा हूं कि बिना आपसे मिले मैं अपने आपको रोक नहीं पाऊंगा, यद्यपि आपने मुझे पत्र लिखने के लिये मना किया था और आज्ञा दी थी कि बिना पत्र के भी वातचीत हो सकती है, एक दूसरे को देखा जा सकता है और आपने कृपा करके जो ज्ञान, जो साधना मुझे दी थी, वह मेरे जीवन की अतुलनीय सम्पत्ति है, आपने मुक्त हस्त से मुझे सब कुछ देने का प्रयत्न किया, परन्तु मैं ही अभागा हूं कि उस समुद्र में से इतने अधिक मोती बटोर नहीं सका जिससे कि मेरी झोली पूरी तरह से भर जाय, इतनी अधिक आतुरता, इतनी अधिक बेचैनी मैंने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं की थी, परन्तु

आपके जाने के बाद मैं कोशिश करने पर भी अपने आपको नियंत्रित नहीं कर पा रहा हूं।

आपने मुझे साधना काल में यह बताया था कि जब भी मन चंचल हो जाय तब प्रभु के चरणों में बैठ जाना चाहिए और उस मन्दिर में प्रभु के सामने अपनी सारी इच्छाएं रख देनी चाहिए, पर मैं किसे मन्दिर मानूं : किसको ईश्वर मानूं ? किसके सामने अपनी व्यथा कहूं ? मेरे लिये तो मन्दिर, ईश्वर या इष्ट जो कुछ भी है, वह आप ही हैं और आपके अलावा मेरे लिये कुछ भी नहीं है।

आपका पूरा शरीर मेरे लिये मन्दिर के समान है, आपके चरण उस मंदिर के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। आपका शरीर इस मन्दिर का गर्भगृह है, और आपका उन्नत ललाट इस पवित्र मन्दिर का शिखर, जो कि दूर से ही भव्य और दिव्यतम दिखाई देता है। इस मन्दिर में जो मूर्ति बैठी हुई है, सत्य और प्रेम की वह साक्षात मूर्ति ही मेरा इष्ट है। उसके सामने मैं बच्चों की तरह रोया हूं, गिड़गिड़ाया हूं और मुझे इससे सान्त्वना मिली है, प्रेम की अजस्र धारा प्राप्त हुई है, जब मैंने इस प्रकार के मन्दिर में प्रवेश किया है, इस प्रकार के पवित्र मन्दिर की छाया में बैठा हूं, इस प्रकार की सजीव मूर्ति की करुणा मुझे प्राप्त हुई है तो फिर मैं और किस मन्दिर में जाऊं ? किस मूर्ति के सामने अपनी व्यथा कहूं ?

मैं अपने जीवन में बहुत भटका था, सैकड़ों मन्दिरों से सिर टकराया था, हजारों मूर्तियों के सामने अपनी व्यथा कही थी, परन्तु किसी ने भी मेरे आंसू नहीं पोंछे, किसी ने भी मेरे मन की तड़फ महसूस नहीं की, पर जब मैं आपके चरणों में आया, इस साक्षात मन्दिर की छाया में बैठा तो ऐसा लगा जैसे मुझे वह सब कुछ प्राप्त हो गया हो जिसकी तलाश मुझे वर्षों से थी, और जब इस मन्दिर में निवास करने वाली साक्षात मूर्ति के दर्शन किये और उसकी करुणा से आप्लावित हुआ तो मैं धन्य हो गया, मेरा सारा जीवन उन्मुक्त हो गया, जीवन में जो बेचैनी थी वह एकबारगी ही समाप्त हो गई।

इस भारत में लाखों मन्दिर हैं, जहां पर लोग जाते हैं, हजारों तीर्थ स्थल हैं, जहां पर गृहस्थ जाकर अपनी मानसिक व्यथा शान्त करते हैं, परन्तु उनमें कितने ऐसे हैं जो सही रूप में प्रभु के दर्शन कर पाते हैं, आपका शरीर एक चलता फिरता अद्भुत पावन मन्दिर है जिसमें करुणा की, दया की, और ममता की साक्षात मूर्ति विद्यमान है, इस प्रकार के मन्दिर और इस प्रकार की दिव्य मूर्ति को छोड़कर मैं और कहां जाऊं ?

मेरा पूरा जीवन तब तक व्यर्थ था जब तक कि इस मन्दिर के पास नहीं आया था। मेरा सारा शिक्षण, मेरा सारा ज्ञान एक प्रकार से व्यर्थ ही रहा था, आज मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि मेरे जीवन के कई वर्ष व्यर्थ में बरबाद हो गये। स्कूल की शिक्षा और कालेज का अध्ययन मानव के जीवन निर्माण में किसी प्रकार से सहायक नहीं होता। एक प्रकार से यह शिक्षण उसको थोथी डिग्रियां भले ही दे दे.

परन्तु उसकी आत्मा का विकास नहीं कर सकता, आत्मा का विकास तभी हो सकता है जबकि उसे गुरु की प्राप्ति हो जाय। इस संसार में जितने भी व्यक्ति हैं, उनका अस्तित्व महज एक बालक के समान है, फिर वे भले ही सौ वर्ष के बूढ़े हों या पच्चीस वर्ष के बालक, क्योंकि जीवन की पूर्णता तभी संभव है जबकि उसको यह ज्ञान हो जाय कि उसका अस्तित्व क्या है दुनिया में हजारों पण्डित हैं, विद्वान् हैं, अपने क्षेत्र में अग्रगण्य है, और उनकी विश्व में ख्याति भी है परन्तु फिर भी वे अपने आपको ही नहीं पहचानते। जब तक उनको आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता तब तक वे व्यर्थ में ही इधर-रधर भटकते रहते हैं, अपना स्वरूप आत्म-ज्ञान या आत्म-ज्योति का दर्शन कराने वाला केवल गुरु ही होता है, सद्गुरु ही व्यक्ति को उसकी आत्मा से साक्षात्कार कराने में समर्थ होता है।

जब तक मुझे आपका सानिध्य प्राप्त नहीं हुआ था तब तक मैं अपने आपको विद्वान और योग्य समझता था, जब तक मैंने आपकी उंगली नहीं पकड़ी थी तब तक पूरा भारत मुझे भौतिक शास्त्र का विद्वान् मानता था, जब तक मैं आपके चरणों के पास नहीं बैठा था तब तक मुझे अपने आप पर बहुत अधिक घमण्ड था, जरूरत से ज्यादा अहं था और मैं अपने आपको बहुत कुछ समझने लग गया था, परन्तु जिस दिन आपका वरदहस्त मेरे सिर पर पड़ा उस दिन एक नई ज्योति के दर्शन हुए, एक नया प्रकाश मेरी आंखों के सामने आया, मैंने पहली बार अनुभव किया कि इतना शीतल स्पर्श आज तक मेरे जीवन में अनुभव नहीं हुआ। मुझे उस दिन जिस स्वर्गिक सुख की अनुभूति हुई थी वह अपने आप में वर्णनातीत है। बूंद तभी तक उछलती है जब तक वह बूंद होती है पर उसको अपने वास्तविक रूप का ज्ञान तभी होता है जब वह समुद्र में मिलती है, उस समुद्र के सामने उसका महत्त्व क्या है; ठीक ऐसा ही मैंने आपके सामने आने पर अपने आपको अनुभव किया, मैंने दूर से हिमालय की धवलता का अवगाहन किया था, और उससे प्रवाहित गंगा में स्नान किया था, परन्तु इन दोनों का संयुक्त आभास उसी दिन हुआ था जिस दिन आपका सुखद स्पर्श मुझे प्राप्त हुआ था। आपकी आंखों की करुणा, दया और प्रेम की त्रिवेणी में जिस दिन मैं डूबा था उसी दिन मैंने अनुभव कर लिया था कि यही वास्तविक सुख है, मेरे जीवन का यही वह बिन्दु है जिसे प्राप्त करने के लिये मैं भटक रहा था।

आपका प्रथम दर्शन ही मेरे लिए एक दिव्य दर्शन था। और पहली बार ही आपको देखकर मैं अपने आपमें आपके प्रति सम्मोहित-सा अनुभव करने लगा था। वास्तव में ही सन्त के दर्शन ही जीवन की पूर्णता का परिचायक होता है। यह मानव का भाग्य है कि उसे जीवन में सच्चे संत के दर्शन हो जायं। मुझे अपने पिता के द्वारा कही हुई एक घटना का स्मरण हो रहा है, उन्होंने कहा था कि जीवन की पूर्णता तभी होती है जबकि सच्चे सन्त के दर्शन हो जाएं, फिर भले ही वह सन्त भभूत रमाया हुआ हो या दिगम्बर हो, लंगोटी पहने हुए हो या पूर्ण गृहस्थ हो, इससे उस सन्त की दिव्यता पर कोई असर नहीं पड़ता, सन्त के दर्शन ही मानव के पापों का क्षय होता

है। इस संबंध में उन्होंने मुझे एक कहानी सुनाई थी जो कि मुझे आज भी स्मरण है।

एक बार देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से प्रश्न किया कि सन्त के दर्शन करने से क्या लाभ है ? भगवान विष्णु नारद के प्रश्न को सुनकर विहंसे और कहा कि अमुक स्थान पर एक मिट्टी के कण को लुढ़काता हुआ कीट जा रहा है, यह प्रश्न उससे पूछो।

महर्षि नारद उस कीट के पास गये और उससे प्रश्न किया। प्रश्न सुनते ही कीट ने देवर्षि नारद को एक क्षण के लिए देखा और अपने प्राण त्याग दिये।

नारद लौटकर विष्णु के पास पहुंचे और जो घटना घटी थी वह वता दी, भगवान विष्णु ने एक वर्ष वाद आने के लिए कहा।

एक वर्ष बाद नारद ने जव पुनः यही प्रश्न दोहराया तो विष्णु भगवान ने कहा कि अमुक जंगल में अमुक सरोवर के किनारे बैठे हुए राजहंस से तुम जाकर प्रश्न करो, इसका उत्तर वह देगा।

नारद तुरन्त उस स्थान पर पहुंचे और उस राजहंस से यही प्रश्न किया। राजहंस ने नारद को ध्यानपूर्वक देखा और अपने पर फैला कर वहीं समाप्त हो गया।

नारद को अत्यन्त दुख हुआ और उन्होंने विष्णु से जाकर सारी वात कह दी। भगवान विष्णु ने एक वर्ष बाद फिर आने के लिए कहा।

एक वर्ष वाद जव नारद ने पुनः यही प्रश्न भगवान विष्णु के पास रखा तो भगवान विष्णु ने उन्हें एक नगर के राजगृह में जन्मे नवजात शिशु से वह प्रश्न पूछने के लिए कहा।

नारदजी तुरन्त उस राजगृह में पहुंचे, वहां उनका अत्यन्त आदर सत्कार हुआ, उन्होंने एकान्त में उस शिशु से वात करने की इच्छा प्रकट की। लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह नवजात शिशु देवर्षि नारद से किस प्रकार वातचीत कर सकेगा, पर नारद का हठ देखकर सभी अलग हो गये।

जब नारद ने प्रश्न किया कि सन्त के दर्शन से क्या लाभ है तो शिशु ने उत्तर दिया, महर्षि नारद पहली वार मैं कीड़ा था आपके दर्शन से मेरी मृत्यु हुई और मैं उच्च योनि में राजहंस बना। दूसरी बार जब आप जैसे सन्त के दर्शन हुए तब मैं उस योनि से छुटकारा पाकर इस राजगृह में जन्म लिया है और आज आपके पुनः दर्शन प्राप्त हुए हैं अतः सुखपूर्वक राज्य भोगने के बाद मेरी मुक्ति हो सकेगी।

सन्त अपने आप में चलते फिरते देवालय हैं, विचरण करते हुए पवित्र तीर्थ स्थल हैं, और आप में मैंने एक सच्चे संत के दर्शन किये हैं, आपके दर्शन करने के बाद मेरे जीवन में कोई भी इच्छा, कोई भी आकांक्षा बाकी नहीं रही है।

यद्यपि यह सव कुछ लिखने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, यह लिखकर एक प्रकार से मैं पागलपन ही कर रहा हूं, परन्तु मेरे मन में आपके जाने के बाद इतनी अधिक छटपटाहट वढ़ गई है कि मैं बिना कहे रह नहीं सकूंगा। मैं वहुत कुछ कहना चाहता हूं परन्तु जब भी आप मेरे सामने होते हैं मेरी वाणी रूंध जाती है, गला भर आता है और आंखों में हर्ष और आनन्द के आंसू छा जाते हैं, इस प्रकार, मैं आपकी

मूर्ति के भली प्रकार से दर्शन करना चाहते हुए भी दर्शन नहीं कर पाता हूं, आपको बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ नहीं कह पाता हूं, अपने मन की व्यथा, अपने मन की तड़फ, अपने मन की बेचैनी आपके सामने खोल कर रखना चाहता हूं पर रख नहीं पाता। पता नहीं आपके सामने आते ही मेरी क्या अवस्था हो जाती है कि मैं कुछ भी नहीं कह पाता, कुछ भी नहीं कर पाता, जो भी कुछ याद होता है वह सब विस्मरण हो जाता है और आंखों के सामने करुणा और प्रेम की साक्षात मूर्ति साकार हो जाती है।

मैंने आपको सागर की तरह अनुभव किया है, मैंने यह देखा कि इस सागर में जो जितनी ही ज्यादा गहरी डुबकी लगाता है वह उतने ही ज्यादा मूल्यवान रत्न प्राप्त करता है। मैं अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम से कहने में समर्थ हूं कि आपके द्वारा साधना की जो गंगा प्रवाहित होती है वह अपने आप में निर्मल है, उसमें स्नान कर चित्त हल्का हो जाता है, मन में कई गुना आनन्द बढ़ जाता है और पूरा शरीर एक नये ही भावलोक में विचरण करने लग जाता है।

आपसे अलग हुए लगभग एक वर्ष बीतने को आ रहा है और इस एक वर्ष में एक क्षण के लिए भी मैं आपको भुला नहीं पाया हूं। सम्भवतः मैं अपने जीवन में आपको भुला भी नहीं सकूंगा, आपने मुझे दिव्य बिन्दु के दर्शन करने को कहा है, परन्तु जब भी मैं दिव्य बिन्दु पर ध्यान अवस्थित करता हूं तब आपका सुन्दर स्वरूप मेरे सामने साकार हो जाता है, और वह बिन्दु अपने आप तिरोहित हो जाता है, उस समय जितना आनन्द प्राप्त होता है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता, मेरी लेखनी में या मेरी जीभ में इतनी शक्ति ही नहीं है कि मैं उस आनन्द का वर्णन कर सकूं।

यद्यपि आपने मुझे जो 'चाक्षुष-साधना' सिखाई थी, उसके प्रयोग से मैं बराबर आपके दर्शन करता रहा हूं, और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को सरस करता रहा हूं, परन्तु इससे तृप्ति नहीं होती। ऐसा लगता है जैसे बहुत कुछ होते हुए भी मैं हर बार वंचित रह जाता हूं, बहुत कुछ प्राप्त करना चाहते हुए भी प्राप्त नहीं कर पाता, आपके शरीर दर्शन का जो आनन्द मैंने प्राप्त किया है, वह अपने आप में अन्यतम है। चाक्षुष-साधना से तो केवल मेरी आत्मा ही आपको देख पाती है, परन्तु मेरे नेत्र अतृप्त हैं, उनकी प्यास तब तक नहीं बुझती जब तक कि ये नेत्र आपके दर्शन न कर लें। दूर से हिमालय के दर्शन उतना आनन्द कैसे दे सकते हैं जितना आनन्द उस हिमालय से मिलने पर या हिमालय की छाया में बैठने से प्राप्त होता है, जब-जब भी मैंने इस संबंध में साधना के द्वारा आपसे आज्ञा चाही है, तब-तब आपने निष्ठुरता से मना कर दिया है, पता नहीं मुझ से ऐसा क्या अपराध हो गया है, जिससे कि आप निकट आने की अनुमति नहीं देते। हो सकता है मुझ से अपराध हुआ हो, परन्तु मैं तो बालक हूं और बालक का धर्म ही गलतियां करना है। आपको मैंने माता और पिता दोनों ही रूपों में देखा है, दोनों का संयुक्त स्वरूप ही गुरु होता है और इसी रूप में मैंने आपके दर्शन किये हैं, फिर मुझे आपके दर्शन करने से वंचित क्यों रखा जा रहा

है ? 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' पुत्र कुपुत्र हो सकता है परन्तु मां कुमाता नहीं होती, मैं अपराध कर सकता हूं परन्तु आप क्षमाशील हैं, करुणा की साक्षात मूर्ति हैं, आप मेरे अपराध पर ध्यान दें और मुझे आज्ञा दें जिससे कि मैं आपके चरणों में आ सकूं, आपके सानिध्य में कुछ क्षण बैठ सकूं; और अपने जीवन को धन्य कर सकूं, इन अतृप्त आंखों की प्यास बुझा सकूं, और जीवन की अभिलाषा को, इच्छा को पूर्णता दे सकूं।

इस जीवन में तो शायद मेरे द्वारा कोई पुण्य कार्य नहीं हुआ होगा, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्व जन्म में मैंने अवश्य ही पुण्य कार्य किये होंगे जिससे कि मैं आपका सान्निध्य पा सका, आपके चरणों में बैठ सका, और आपकी कृपा, आपका स्नेह, आपका ममत्व पा सका। आपके पास रहकर छः वर्ष किस प्रकार से बीत गये कुछ मालुम ही नहीं पड़ा। ऐसा लगा जैसे हवा में कपूर विलीन हो गया हो और उसकी गंध ही वातावरण में रह गई हो, परन्तु आपसे अलग होकर यह एक वर्ष निकालना इतना अधिक कठिन हो गया है कि कुछ कह नहीं सकता। मेरे लिये प्रत्येक क्षण भारी हो रहा है, यह एक वर्ष इस प्रकार से वीता है जैसे मैंने हजारों वर्ष बिता दिये हों। अब तो ऐसी स्थिति बन गई है कि मैं चाहते हुए भी अपने आपको रोक नहीं पा रहा हूं, यद्यपि आपके पास आने में आपकी आज्ञा बाधक वन रही है, परन्तु मैं बालक हूं और वालहठ से कहीं मेरे द्वारा आपकी आज्ञा का उल्लंघन न हो जाय, यदि कुछ समय तक आपके दर्शन नहीं कर सका, तो शायद ये प्राण इस पिंजरे में नहीं रह पायेंगे। कुछ ऐसा ही आभास होने लगा है।

पिछली बार जब साधना में आपसे बातचीत करने का सुखद क्षण प्राप्त हुआ था तब आपने मुझे विवाह करने की आज्ञा दी थी, पर प्रभु मेरी इच्छा इस प्रकार की नहीं रह गई है, मैं अब अपने जीवन को पुनः उस कीचड़ में नहीं धकेलना चाहता, जिस कीचड़ से मैं बाहर निकल आया हूं। मेरी तो एक ही इच्छा है कि मैं आपके चरणों में रहूं, आपका सुखद स्पर्श अनुभव करूं, आपकी आज्ञा का पालन करूं और इस प्रकार मेरा पूरा जीवन आपके चरणों में रहते हुए व्यतीत हो जाय।

मेरे लिए माता-पिता, भाई बन्धु, स्वजन, कुटुम्ब, परिवार यदि कुछ है तो वह सब कुछ आप ही हैं। मेरे लिए न कोई मन्दिर है, न कोई इष्ट देवता। मेरे लिए कुछ है तो वह केवल आपका सामीप्य है, आपकी कृपा है।

आज विश्व, कलह, युद्ध, रोग, और अंधकार से ग्रस्त है, चारों तरफ धोखा, छल, कपट का साम्राज्य छाया हुआ है। पीड़ित मानवता पुकार रही है, आवश्यकता है एक ऐसे स्नेह की, एक ऐसे करुणा के प्रवाह की, जिससे कि वह पीड़ित मानवता सान्त्वना पा सके; उसके हृदय में आनन्द और उमंग आ सके, और यह सब कुछ आपके द्वारा ही संभव है, आपकी करुणा के माध्यम से ऐसा हो सकेगा, ऐसा मैं अनुभव करता हूं। इस प्रकार के कार्य में मैं भागीदार बन सकूं, आपके सन्देश को ज्यादा से ज्यादा

लोगों तक पहुंचा सकूं, उनकी पीड़ा हर सकूं और उन्हें सच्चा आत्मीय सुख दे सकूं, यही मेरी इच्छा है, यही मेरा लक्ष्य है और इस लक्ष्य की पूर्ति तभी संभव है जबकि आपका वरदहस्त मेरे सिर पर हो, आपकी आज्ञा मेरे लिए पाथेय हो।

आपने मुझे बहुत कुछ दिया है, मैंने आपसे बहुत कुछ पाया है फिर भी मैं अपने आप में अतृप्त हूं। ऐसा लग रहा है जैसे अभी तक मेरा पूरी तरह से निर्माण नहीं हो पाया है, अभी तक मेरी आंखों में खालीपन है, और यह खालीपन यह, शून्यता आपके द्वारा ही भरी जा सकती है, आपने साधना के माध्यम से जो कुछ मुझे दिया है, उससे उऋण इस जीवन में तो क्या अगले सात जीवन में भी नहीं हो सकता। यदि मेरे शरीर के चमड़े की चर्म पादुकाएं आपके पैरों के लिए बनें तब भी मेरा उस कृपा से उऋण होना संभव नहीं है।

आपके पास रहकर मैंने जितना सुख और सन्तोष प्राप्त किया है उतना जीवन में कभी नहीं कर पाया था। मुझे ऊंचे-से-ऊंचा सम्मान मिला था, विदेशों में मेरे कार्य की सराहना हुई थी, तब भी मुझे इतना आनन्द प्राप्त नहीं हुआ था, जितना आनन्द आपके चरणों में बैठकर प्राप्त हुआ था। आपसे जो कुछ पाया है वह मेरे लिए अन्यतम है, आपके घर में जो शान्ति प्राप्त हुई है, उसका वर्णन करना संभव नहीं है।

पूज्य माताजी करुणा की साक्षात मूर्ति हैं, मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे आपको प्रेरित करें, जिससे कि आप मुझे अपने चरणों में बुला सकें, मैं अतृप्त हूं और आपके चरणों के पास आने के लिए उतावला हूं, आपके बिना मेरी कोई गति नहीं है, आप ही मेरे सर्वस्व हैं, सब कुछ हैं।

एक बार पुनः आपके चरणों में नमन करता हुआ आपके सान्निध्य में आने की इच्छा प्रकट करता हूं और आज्ञा चाहता हूं जिससे कि मैं जल्दी-से-जल्दी आपके चरणों में आ सकूं।

आपका ही,

(अरविन्द कुमार)

प्रेषक : श्री सच्चिदानन्द परमहंस
स्थान : अज्ञात (संभवत : बद्रीनाथ के आस पास)
प्राप्त कर्त्ता : डा० नारायणदत्त श्रीमाली
आलोक : डा० श्रीमाली जी ने परमपूज्य गुरुदेव के पास लिखे गए एक पत्र में साधना सम्बन्धी अपनी आन्तरिक अनुभूतियों का विवरण देते हुए उनसे मार्ग निर्देश की याचना की थी, पूज्य श्री स्वामीजी ने यह पत्र उसी के उत्तर में लिखा था।

विषय : साधना ज्ञान।

ओम तत् सत्
आशीर्वादक श्री सच्चिदानन्द परमहंस
चिरायु।

परम शुभा शिषां राशयः सन्तु।

बाबा ! तुम लोगों के मंगल के लिए परम मंगलमय के समीप प्रार्थना करता हूं, मंगलमय तुम लोगों का मंगल करे, यही मेरा इष्ट है। वत्स ! तुम्हारा पत्र पाकर सब अवगत हुआ।

वत्स ! जो कुछ तुम बाहर देखने का प्रयत्न कर रहे हो, वह अपने अन्तर में देखो, क्योंकि अन्तर का प्रकाश ही बाह्याकाश को प्रकाशित और ज्योत्स्नित करता है। साधारणतः मानव अपनी आन्तरिक चिन्ता को बाह्याकाश में देखता हैं और तभी वह चिन्ता घनीभूत होकर उसके मस्तिष्क को तथा चित्त को विभ्रान्त कर देती है, यदि तुम सूक्ष्मता से देखोगे तो यह सारी प्रकृति नित्य लीलालीन दिखाई देगी, अन्तर के प्रकाश के द्वारा ही तुम बाह्य प्रकृति के आभ्यन्तरिक मूल को देख सकते हो, मन में प्रकाश का और पवित्रता का सूक्ष्म बिन्दु भी होता है तो यह सूक्ष्म बिन्दु जगत-शक्ति के प्रकाश से मिलकर मन को शुद्ध और चित्त को परिष्कृत कर देता है। सर्वव्यापिनी शक्ति को यदि हम आभ्यन्तर में स्थापित करें, तभी हम अपने अन्तर के प्रकाश को बाह्य प्रकाश में मिलाने में समर्थ हो सकते हैं, महाशक्ति का ज्ञान अन्तर और बाह्य को एकाकार करने में समर्थ होता है। अन्तर की पवित्रता से ही महामाया के विशुद्ध भाव का चिन्तन हो सकता है तत् हेतु जिस ज्ञान का उदय होता है वही अखण्ड प्रकाश तथा उज्ज्वल तेज कहा जाता है, इसी उज्ज्वल तेज के प्रभाव से मन का पाप—ताप, ज्वाला, यंत्रणा, वेदना, आशक्ति आदि तिरोहित हो सकती है और इसके बाद ही चित्त शुद्ध और परिष्कृत हो पाता है। ऐसा होने पर ही चित्त में अंगूठे के सदृश जो जगत—शक्ति का प्रकाश उदित होता है वही प्रकाश हमारे जीवन को ऊंचा उठाने में समर्थ होता है। फलस्वरूप मानव बाह्य व्यापार को भूल जाता है और इस स्थूल जगत से अपने आपको हटाकर सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने का अधिकारी बन जाता है।

विज्ञान के द्वारा स्थूल की उपासना ही हो पाती है, जब तक सूक्ष्म का चिंतन

नहीं होगा तब तक हमारा सारा व्यापार निष्क्रिय है, क्योंकि विज्ञान के द्वारा जो उपासना होती हैं वह स्थूल ही होती है, सूक्ष्म की उपासना चित्त-वृत्तियों का निरोध करने पर ही सम्भव है, उसके लिए कलुषित और सन्तप्त चित्त को परे हटाकर निर्मल चित्त की अवधारणा करनी चाहिए, महाशून्य में जब महाशक्ति का आलोक संचरित होता है उस समय निर्मल चित्त वाला ही उस प्रकाश और आलोक के रहस्य को समझ पाता है क्योंकि इस प्रकार के रहस्य को समझने की जो भाषा है वह अलिखित है।

विश्व में जो शक्तिभूत है उसके मूल में यही शक्ति कार्य करती है जो कि आदि, मध्य और अन्तिम है। विषयों में इसी का प्रकाश द्युतिमान होता है उसकी शक्ति संकुचित होने पर भी यह विश्व संकीर्ण होता है और धीरे-धीरे आसुरी शक्तियों का उदय होता है, जीवन में पूर्णता प्राप्त करने के लिए इन आसुरी वृत्तियों का त्याग आवश्यक है।

यह परब्रह्ममयी सत्तां पूरे विश्व को नाना प्रकार से खेल खिलाती है, यही सुख-दुःख, हानि-लाभ, आशा-निराशा, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, सेव्य-सेवक आदि को लेकर एक ऐसा खेल खेल रही है जिसको समझना सुगम नहीं। भ्रमवश हम इस खेल को समझ नहीं पाते और इसकी आलोचना करके अपने आपको बुद्धिमान अनुभव करते हैं, परन्तु इस प्रकार की आलोचना बुद्धिहीनता का प्रमाण है क्योंकि जीव, आत्मा, स्वरूप सूक्ष्म, स्थूल आदि सभी इसी महाशक्ति मां की नित्य लीला है, जब तक इस लीला को समझने का प्रयास नहीं करोगे तब तक तुम्हारा चित्त विभ्रम और उद्विग्न रहेगा।

अंगीभूत पुत्र और शिष्य में कोई अन्तर नहीं होता। जो वात्सल्य गृहस्थ में मां के द्वारा अंगीभूत पुत्र को प्राप्त होता है, संन्यास में वही वात्सल्य गुरु द्वारा शिष्य में प्रवाहित होता है। तुम्हारा निर्माण एक विशेष उद्देश्य को लेकर मां जगज्जननी ने योग शक्ति के माध्यम से किया था। मैं तो केवल उस आद्य शक्ति के प्रकाश का सूक्ष्म कण हूं। जो कुछ होता है, जो कुछ हुआ है, वह सब उस आद्या शक्ति के भ्रू-संकेत से ही हुआ है, तुम्हारा जन्म, सामान्य मानव के रूप में जन्म लेकर समाप्त होने के लिए नहीं हुआ है, अपितु तुम्हारी रचना एक विशेष उद्देश्य को लेकर है, तुम्हारा मेरे पास आना और मेरा तुम्हें अंगीभूत करना भी उस नित्य लीलाविहारिणी की एक लीला है। सूक्ष्म रूप में तुम भी उसी प्रकाश के एक कण हो जिस प्रकाश के कण से मेरा आविर्भाव है, परन्तु तुम्हें अपने पास खींचना और एक विशेष प्रकाश से तुम्हारा निर्माण करना एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित है। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी के लोंदे को चोट देकर एक विशेष रूप में निर्मित करता है उस कुम्भकार का एक निश्चित उद्देश्य होता है और इस उद्देश्य से प्रेरित होकर ही वह मिट्टी को हाथ लगाता है एवं तीव्राघात से उसका स्वरूप निर्मित करता है।

तुम्हारा मेरे पास आना और मेरे द्वारा आघात दे-देकर एक विशेष रूप में

तुम्हारा निर्माण करना एक निश्चित उद्देश्य को लेकर था। यह उद्देश्य वह शक्ति ही जानती है मुझे तो केवल उसकी आज्ञा का पालन करना है, इसीलिए तुम्हारे प्रति एक विशेष उत्तरदायित्व अपने चित्त में अनुभव करता हूं और तब तक यह बाबा शान्त नहीं होगा जब तक तुम अपने लक्ष्य पर पहुंच नहीं जाओगे।

मेरे मन में मोह नहीं है, अपितु वात्सल्य भाव अवश्य है क्योंकि मैंने तुम्हारा पालन उसी रूप में किया है जिस प्रकार से एक मां अपने नवजात वत्स का करती है। मेरे सम्पर्क में रहने पर तुम्हें जरूरत से ज्यादा यातना और कष्ट सहन करना पड़ा है परन्तु यह सब कुछ इसलिए आवश्यक था जिससे कि मेरे निर्माण में किसी प्रकार की कोई न्यूनता न रहे। तुम्हारे पत्र से जो भावना स्फुटित होती है वह मोह है, क्योंकि सूक्ष्मता में यदि तुम प्रवेश करोगे तो देखोगे कि वहां न पत्नी है, न पुत्र है, न मां है, न बाप है, न गुरु है, न शिष्य है, सभी एक ही अंश के अलग-अलग कण हैं, जिनका अपने आप में पृथक अस्तित्व होते हुए भी पृथक अस्तित्व नहीं है। वे अलग-अलग होते हुए भी एक हैं क्योंकि इन सबका निर्माण उसी मां आद्याशक्ति के ज्योतिर्बिन्दु से हुआ है, इसलिए मेरे समीप आने और मेरे साथ रहने की जो इच्छा तुमने व्यक्त की है वह तुम्हारा मोह ही तो है, यह मोह उस शक्ति के प्रकाश तथा देह विकास के क्रिया संयोग से जन्म लेता है, जब तक इस प्रकार के शत्रु—द्वेष-दम्भ, मोह—शरीर स्थित मानवीय भावों के आकर्षण—विकर्षण से संघर्षभूत रहेंगे तब तक इनसे पिण्ड छुड़ाना सम्भव नहीं होगा। इसीलिए यह प्रकाश बिन्दु जगत जननी मां की गोद में रहते हुए भी शत्रुओं से आकृष्ट रहता है और इन शत्रुओं के कुसंगत से चित्त वेदना-भागी होता है।

परन्तु पुत्र ! इस प्रकार वेदना-भागी होने से जीवन के क्षणों का मूल्य नहीं समझ सकोगे। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण उस नित्य लीला विहारिणी का प्रकाश है, अतः इन क्षणों को शत्रुओं से अबद्ध करना अपने आपको पतन के कगार पर स्थित करना है, तुम्हें आशाहीन होने की आवश्यकता नहीं, सब कुछ होते हुए भी बाबा देह रूप में है, और इस देह रूप में होने पर कभी-कभी इन शत्रुओं का 'आघात सहन करना ही पड़ता है, इसीलिए तुम्हारे प्रति मोह की व्याप्ति हो जाती है, यद्यपि मैं अपने अन्तर से तुम्हें अलग नहीं देखता हूं क्योंकि तुम शिष्य रूप में मेरे ही अंगीभूत हो और तुम्हारे जीवन का प्रत्येक कार्य मेरे ही उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है।

नित्य लीलाविहारिणी के कार्य में व्याघात डालने का पापभोगी मैं स्वयं अपने आपको समझता हूं, तुम्हारे जीवन का निर्माण गृहस्थ रूप में होते हुए भी संन्यास रूप मे था। पूर्वजन्म में तुम मुझसे पूर्णतः अंगीकृत रहे हो, मेरे ही अंग से तुम्हारे शिष्यत्व का निर्माण हुआ था और आद्य रूप से प्रारम्भ कर अन्तिम क्षण तक प्रवाहमान तुम्हारा वैराग्य जीवन प्रवाहित रहा था। परन्तु मैं इस बात को समझता हूं कि संन्यास-जीवन—एकांगी जीवन है, आज आवश्यकता समाज को चैतन्य करने की है, आद्या शक्ति मां की क्रियाओं तथा भौतिक जगत की स्थूल व्यापारों में संवर्षण

की वजह से पाप, क्रोध, छल, धोखा, असन्तोष, विग्रह आदि आसुरी प्रवृत्तियां व्याप्त होने लगी हैं और धीरे-धीरे इस भू .र आसुरी वृत्तियों का विकास बढ़ता जा रहा है, ऐसे समय में एकान्त-भोगी होने से जीवन-निर्माण का पूर्ण उद्देश्य अपूर्ण रह जायेगा। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि इस स्थूल व्यापार में संलग्न मानव को सही रास्ता दिखा े के लिए प्रयत्न किया जाए और उस आद्यप्रकाश को पुनः स्थापित किया जाय जिससे कि भूतल पर दया, करुणा, प्रेम, स्नेह की अमृत-वर्षा हो सके।

इसके लिए उन कणों के समान ही अपने कण को बनाना आवश्यक है, जब तक उनके सदृश बनकर कार्य नहीं किया जायगा, उनके बीच रहकर अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं किया जायगा तब तक इस कार्य की पूर्णता संभव नहीं है, तुम्हारे जीवन के तन्तु भोगमय न होकर योगमय ही रहे हैं परन्तु फिर भी मुझे उस जगज्जननी मां के संकेत से तुम्हें पुनः गृहस्थ में प्रवेश देने की कठोर आज्ञा देनी पड़ी है, यद्यपि वत्स ! इससे तुम्हारे चित्त पर कठोर आघात लगा था फिर भी ऐसा करना प्रकृति के मूल धर्मों के अनुरूप है इसीलिए तुम्हें ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

इस समय पृथ्वी पर जिस प्रकार की भावनायें प्रवाहित हैं, वे आसुरी वृत्तियों की द्योतक हैं, ये वृत्तियां स्थूलता में गम्य हैं, सूक्ष्मता की तरफ इन वृत्तियों का निरोध हो गया है, जब तक इन आसुरी वृत्तियों की पराजय नहीं होती तब तक दैविक वृत्तियों का अभ्युदय संभव नहीं है। इन दैविक वृत्तियों के अभ्युदय के लिए ही तुम्हें पुनः गृहस्थ में भेजने की इच्छा मां की रही है, इसीलिए मैंने यहां से रवाना होते समय तुम्हें कहा था कि तुम्हें इस विश्व में कमलवत् रहना है, आसुरी वृत्तियों का प्रहार होने पर भी तुम्हें क्षमाशील बने रहना है, जिस समय चारों ओर पाप-वृत्तियों का अन्धकार व्याप्त हो, उस समय एक छोटे से दीपक को स्वयमेव प्रकाशित बनाये रखने में अत्यधिक जीवट की आवश्यकता अनुभव होती है, इसीलिए मेरे सैकड़ों शिष्यों के होते हुए भी इस कार्य के लिए मात्र तुम्हारा चयन करना पड़ा, मैंने तुममें मां के योगक्षेम से जीवट की भावना बलवती देखी है, मैंने तुममें दिव्य गुणों के परिमार्जन की भावना अनुभव की है, प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आपको अडिग बनाये रखने की क्षमता का साहस देखा है इसलिए इस कार्य के लिए तुम्हारा चयन करना पड़ा है और इसी हेतु तुम्हें पुनः गृहस्थ धर्म में भेजने के लिए कृत संकल्प होना पड़ा है।

गृहस्थ में विश्व जननी के अपरिवर्तनीय नियमों तथा क्रिया संयोग से उत्पन्न द्वेषादि प्रवृत्तियों का विकास और मोहादि भावनाओं का परिमार्जन स्वाभाविक है, परन्तु तुम्हें अपनी पूर्व श्रृंखला को स्मरण रखना है, तुम्हारे पूर्व जीवन संन्यासी के रूप में विकसित हुए हैं, इसीलिए इस जीवन में भी संन्यासी वृत्तियों का विकास तुम्हारे जीवन में स्वाभाविक रूप से रहा है, परन्तु फिर भी तुम्हें अपने गृहस्थ धर्म का पालन उसी रूप में करना है, जिस रूप में आद्या शक्ति मां की लीला विचरण करती है, फलस्वरूप मोह आदि वृत्तियां तुम पर हावी होने का प्रयास करेंगी। चारों तरफ जिस प्रकार से आसुरी वृत्तियां तुम पर प्रहार कर रही हैं, वह मैं अनुभव कर

रहा हूं । फिर भी तुम्हें अपने कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं होना है और इन वृत्तियों के बीच रहते हुए भी अपने आपको निर्लिप्त और निर्माल्य बनाये रखना है । मोहादि वृत्तियों के बीच भी अपने आपको तटस्थ भाव से बनाये रखना ही तुम्हारे संन्यास जीवन की कसौटी है । गृहस्थ जीवन में संन्यास जीवन को विकसित करना कठिन कसौटी है, जिस प्रकार से मैंने तुम्हारा निर्माण किया है उस रूप में देखने पर मुझे विश्वास है कि तुम इस कसौटी पर खरे उतरोगे ।

वत्स ! तुमने अपने पत्र में चित्त की चंचलता का आभास दिया है, तुम्हारा चित्त, गृहस्थ से हट कर मेरे पास आने को व्याकुल है, ऐसा तुमने व्यक्त किया है, परन्तु तुमको यह नहीं भूलना चाहिए कि बावा ने जिन कष्टदायक शूलों में तुमको फेंका है, उसके पीछे एक अभीष्ट है, जब तक वह अभीष्ट प्राप्त नहीं होता तब तक तुम्हें उन तीक्ष्ण शूलों से संघर्ष करना है । गृहस्थ जीवन तो उस नित्य लीला विहारिणी का एक कौतुक है और तुम्हें इस गृहस्थ को इसी रूप में देखना है , इसके मूल में जाकर जब तुम देखोगे तो वहां यह भेद दृष्टिगोचर नहीं होता । वहां पत्नी, पुत्र मां, आदि का बन्धन नहीं है, वहां पर सर्वात्म भाव है, एकात्म भावना का उदय है, तुम्हें इसी मूल भाव से इस गृहस्थ को देखना है ।

इससे भी जो कठिन कार्य तुम्हें सौंपा है, वह विश्व में मूल विद्याओं का विकास करना है । जन मानस में इस प्रकार की चेतना जाग्रत करनी है । जिससे कि वह सूक्ष्मता का बोध कर सके । स्थूलता में जो निमग्नता है उससे उन्हें परे हटाकर सूक्ष्मता के दर्शन करना है । यह कार्य मंत्रों के माध्यम से संभव है, ज्योतिष, तंत्र, आदि इसी के अंगी-भूत हैं, अतः इन सारी विद्याओं को लेखनी के माध्यम से, बाबा के माध्यम से, विचारों और भावनाओं के माध्यम से व्यक्त करना है, और इन लुप्त होती हुई विद्याओं को पुन-जीवित करना है, जिससे कि इस पृथ्वी तल से इन विद्याओं का लोप न हो जाय ।

यह कार्य संन्यास में रहकर संभव नहीं है, यदि गृहस्थ लोगों के बीच कार्य करना है तो गृहस्थ के रूप में रहकर ही संभव है, इसीलिए इस जीवन में तुम्हें गृहस्थ में प्रवेश देने के लिये मुझे वाध्य होना पड़ा है, तुम्हारे मन में यह दृढ़ संकल्प बना रहना चाहिए कि तुम तभी अपने जीवन की पूर्णता का अनुभव कर सकोगे जब तुम इन विद्याओं को पुनः पल्लवित पुष्पित कर सकोगे ।

बाबा । निराश होने का कोई कारण नहीं है । यदि तुम्हारा और मेरा स्थूल देह सम्पर्क नहीं होता है तो आशाहीन होने का क्या कारण है ? क्या तुम मुझे देखते नहीं हो ? क्या तुम मुझसे सम्प्रक्त नहीं हो ? क्या जीवन और आत्मा का परस्पर सम्बन्ध नहीं है ? नित्य इस प्रकार का क्रिया-कलाप होता है फिर यह उद्विग्नता क्यों है ? जो कुछ कार्य तुम्हें सोंपा है, वह कार्य बिना एक भी क्षण नष्ट किये करते रहना है, और जिस दिन मैं समझूंगा कि तुम्हारा कार्य सम्पन्न हो गया है, उसी क्षण मैं अपने पास तुम्हें बुला लूंगा ।

यह तुम्हारे चित्त का विभ्रम है कि तुम मां योगमाया के प्रकाश कणों को

अलग-अलग रूप में देख रहे हो, तुम्हारी पत्नी उसी योगमाया के प्रकाश कण का एक बिन्दु है, वह आद्या शक्ति के रूप का और उसकी योगमाया का एक सूक्ष्म है, अतः उसके द्वारा संन्यास जीवन के लिए प्रेरित करना उसी योगमाया की इच्छा का संकेत था। यह सब कुछ उसी नित्य लीलाविहारिणी के संकेत से संभव हुआ है, उसका संन्यास की तरफ भेजना इस बात का पर्याय है कि तुम्हारा जीवन मूलतः संन्यास के लिए रहा था। यह योगमाया के भ्रू विलास का संकेत था, जो कि तुम्हारी पत्नी के माध्यम से व्यक्त हुआ है। मैंने तुम्हें पुनः उसी प्रकाश कण के पास भेजने का उपक्रम किया है, जिस प्रकाश कण से छिटक कर मेरे पास आए थे, इसलिए इस गृहस्थ में भी तुम्हें योग के हित दर्शन करने हैं; यह भी अपने आप में योगाभ्यास की ही एक कसौटी है।

जैसे घट में पानी का अस्तित्व अलग होता है पर घट टूटने पर वह अखण्ड व्यापी आकाश में विलीन हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारा अस्तित्व अलग होते हुए भी मेरा ही अस्तित्व भूत है। इसीलिये तुम पत्नी को पत्नी समझते हुए भी आद्या शक्ति के प्रकाश का एक कण अनुभव कर सकते हो, तुम्हारा गृहस्थ—गृहस्थ न होकर उस लीलाविहारिणी का एक कौतुक है, जो कि समाज के लिए एक गृहस्थ का पर्याय है जबकि मेरे लिये वह एक सुखद कल्पना, एक अनुकूल आश्चर्य और मां जगदम्बा का एक निर्लिप्त प्रकाश बिन्दु है।

तुम्हें अपने प्रयत्नों में पूरी तरह से लीन रहना है, क्योंकि गृहस्थ के रूप में तुम्हारे पास बहुत ही कम समय बचा है, इसका कारण यह है कि तुम पिछले कई जन्मों से संन्यास रूप में रहे हो और इस जीवन का यह रूप भी संन्यासवत् ही है, यद्यपि इसका बाह्य आवरण गृहस्थ रूप में दिखाई देता है, इसीलिये तुम्हें जल में रहते हुए भी कमल-पत्र-वत् विचरण करना है। जीवन के प्रत्येक क्षण की सार्थकता तुम्हारे कार्य की पूर्णता है, इसके लिये भूख, प्यास, निद्रा, आदि का कोई स्थान नहीं है, जीवन के प्रत्येक क्षण को उस कार्य में लीन करना है जिस कार्य के लिए तुम्हें भेजा है, और यह भी स्पष्ट है कि तुम्हें शीघ्र ही हमेशा के लिए बाबा के पास आना है, जो जीवन के पूर्ण क्षण अपनी चित्त वृतियों को उर्ध्वगामी बनने की ओर प्रवत्त होना है।

तुम्हें नित्य जगत जननी के चिन्तन तथा उनके कार्यों को पूर्णता देना है, शिशु जिस प्रकार मातृ गर्भ में अमृता नाड़ी के रस से पोषित होता है, उसी प्रकार तुम्हें इस जीवन में मां के चिन्तन रस के माध्यम से वृद्धित होना है, इस वृद्धि के साथ चैतन्य शक्ति का अस्तित्व स्वयं प्रकाश-मान रहेगा। तुम्हें मां के अलावा और किसी के प्रति नमन नहीं होना है, मानव के सामने दीनता प्रदर्शित करना तुम्हारे लिए अभीष्ट नहीं है, जो किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं करता वही धन्य है। मैंने तुममें इन समस्त गुणों का परिमार्जन किया है और मुझे अपने आप पर जितना विश्वास है तुम पर भी उतना ही विश्वास है।

तुम्हारा कार्य विश्व में इस प्रकार से युवक-युवतियों का चयन करना है, जिनमें इस प्रकार के गुणों के सूक्ष्म कण हों, जिन प्राणियों में तुम्हें मां आद्या शक्ति के स्फुलिंग

दृष्टिगोचर हों, उन्हें इस कार्य के लिये प्रेरित करना है और इसी प्रकार के व्यक्तियों का चयन करना है, उन चयनित लोगों में से जो परिश्रम तथा सर्वात्म भाव समर्पण की कसौटी पर खरे उतरें उन्हीं को शिष्य रूप में स्वीकार करना है। इस स्वीकारोक्ति में पुरुष नारी का भेद नहीं होना चाहिए, तुम्हारे लिए शिष्य शिष्य है, फिर वह पुरुष रूप में हो या नारी रूप में, तुम्हें उनके चित्त को ऊर्ध्वगामी बनाने की ओर प्रेरित करना है और जो देव कार्य तुम्हें सौंपा है उस कार्य में उन्हें निष्णात करना है जिससे कि वे आने वाले जीवन में इस मानवता के प्रकाश स्तम्भ को ले कर आगे बढ़ सकें और मानवता के पथ निर्देशन में सहायक हो सकें।

समय बहुत कम है, काल निरन्तर गतिशील है, और यह गतिशीलता अस्तित्व लीनता की ओर ही प्रवाहित है, इसलिए अपने जीवन में तीव्रता के साथ कार्य करना है और कठोरता के साथ अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहना है। शरीर सुख और चित्त सुख की तरफ तुम्हें प्रेरित न होकर अपने जीवन को कठोरतम कसौटी पर कसे रखना है, अपने जीवन के प्रति जितने ही ज्यादा निर्मम हो सकोगे, सफलता उतनी ही निकट होगी।

मेरे चित्त में तुम्हारे प्रति सर्वाधिक स्नेह है, तुम्हें सबसे अधिक कसौटी पर कसा है और यह कहते हुए मेरी आंखों में आह्लाद के कण हैं कि मेरे जीवन का स्वप्न तुम्हारे माध्यम से चरितार्थ होने जा रहा है, इस पृथ्वी पर आसुरी शक्तियों को समाप्त कर देवत्व की स्थापना, तथा स्थूल ज्ञान की अपेक्षा सूक्ष्म ज्ञान मंत्र, तंत्र, यंत्र, ज्योतिष कर्म काण्ड, ज्ञान, वैराग्य, योग, साधना आदि देव विद्या का विकास मेरे जीवन का स्वप्न था, और वह स्वप्न जिस प्रकार से तुम साकार कर रहे हो इससे मेरे हृदय में अत्यधिक आनन्द है और यह आनन्द तुम्हारे लिये आशीर्वाद के रूप में परिणत है।

तुम्हें शीघ्र ही मेरे पास बुलाना है और हमेशा के लिये इस सिद्धाश्रम को तुम्हें संभालना है, पर इससे पूर्व तुम्हारे कार्य की पूर्णता हो जानी आवश्यक है, मुझे तुम पर अगाध विश्वास है और जिस प्रकार से तुम कार्य कर रहे हो, जिस विरोधी वातावरण में अपने अस्तित्व को सुरक्षित रूप से बनाये रख रहे हो, जिस वात्याचक्र में अपने आप को अडिग रखे हुए हो उससे मुझे प्रसन्नता है और तुम्हारी संकल्प शक्ति पर आस्था है।

वहू को मैं आद्या शक्ति के अंश रूप में नमन करता हूं और तुम्हारे लिये बाबा मंगल कामना करता है।

शुभाशीष,
(सच्चिदानन्द परमहंस)

प्रेषक : शिवानन्द ब्रह्मचारी

स्थान : मुक्तेश्वराश्रम

प्राप्त कर्त्ता : डा० नारायणदत्त श्रीमाली

आलोक—प्रसिद्ध शिवानन्द ब्रह्मचारी पहले मां भैरवी के चरणों के प्रति अनुरक्त थे, तथा निर्जन वन में एकान्त साधना कर विशिष्ठ सिद्धियों के स्वामी बने, गोरखपुर से आगे नेपाल के जंगलों में जब डा० श्रीमाली संन्यास रूप में निखिलेश्वरानन्द के नाम से साधना करते थे, तब उनका सामीप्य प्राप्त हुआ, और शिष्यत्व स्वीकार किया, और साथ में रहकर अति विशिष्ट साधनाएं सीखीं व सिद्धियां प्राप्त कीं।

पर कुछ समय बाद किसी बिन्दु पर फटकारे जाने पर शिवानन्दजी अन्यत्र चले गये और कुछ वर्षों तक नेमीक्षारण्य में रहे, पर उनके मन में पश्चात्ताप की आग जलती रही और गुरुदेव श्रीमाली जी से मिलने के लिए छटपटाते रहे। अचानक एक दिन हिन्दी की किसी प्रसिद्ध पत्रिका में निखिलेश्वरानन्द के बारे में प्रकाशित विवरण ध्यान में आया और वर्तमान अता-पता ज्ञात हुआ कि श्रीमाली जी ही निखिलेश्वरानन्द हैं, तो वे भाव-विह्वल हो गये और अपनी भूल स्वीकारते हुए गुरुदेव से क्षमायाचना युक्त पत्र लिखा।

परम श्रद्धेय गुरुदेव।

चरणों में तुच्छ शिवानन्द का नमन स्वीकार करें।

मैं यह पत्र न भेजकर स्वयं ही आपके चरणों में उपस्थित होता, और आपके चरण पकड़ कर तब तक रोता रहता जब तक कि आप मुझे उठाकर मेरे मस्तिष्क पर शीतल हाथ नहीं रख देते, परन्तु मैं अपनी ही भूल पर लज्जित हूं, पिछले कई वर्षों से मैं पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूं, मेरे जीवन का एक-एक कण बोझिल हो गया है, ऐसा लग रहा है जैसे मैं जीवित नहीं हूं अपितु जिन्दा लाश ढो रहा हूं, मेरे जीवन की उमंगें, मेरे जीवन की इच्छाएं, उसी दिन समाप्त हो गई थीं जिस दिन मैं आपसे दूर हो गया था। यह मेरे भाग्य पर नियति का क्रूर व्यंग है कि मैं आप जैसे देवता के चरणों में आकर भी अलग हो गया, मेरे जीवन का यह अभिशाप ही कहा जायगा कि मैं गंगा के पावन तट पर जाकर भी तृषित ही रहा, आपसे बिछुड़ने के बाद मैं अपने जीवन को जीवन ही नहीं मानता, आप अन्तर्यामी हैं, आपके पास असीम सिद्धियां हैं, मानव के मूल कण को पहचानने में आप सक्षम हैं। आप स्वयं मेरे बारे में जान सकते हैं कि आपसे अलग होने के बाद मेरी क्या स्थिति रही है। मेरी आत्मा ने कितना क्रन्दन किया है यह आप भली प्रकार जान सकते हैं, जीवन का एक-एक क्षण मेरे लिये कितना बोझिल रहा है यह आपसे ज्यादा कोई नहीं जान सकता। आप स्वयं मेरे बारे में जान सकते हैं कि आज तक मैं किस प्रकार से अनाथ की तरह भटक रहा

हूं, आपको पुन: प्राप्त करने के लिये मैंने क्या-क्या नहीं किया ? कहां-कहां नहीं गया ? परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं चाहते हुए भी आपको पुन: प्राप्त नहीं कर सका। यह मेरे जीवन का अभिशाप है, यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है जबकि मैं आपका आश्रय पाकर भी बिछुड़ गया ।

पर इसमें पूरी तरह त्रुटि मेरी ही थी, आपने तो मुझ दीन पर तरस खाकर मेरी इच्छा को स्वीकार किया था, मेरे जीवन का कोई भी कोना आपसे अछूता नहीं है, जब मैं आपके पास आया था तब मैं दीन-हीन, निराश्रित और निरूपाय था। यद्यपि बचपन से ही मेरी यह साध थी कि मैं अपना पूरा जीवन साधना में ही व्यतीत करूं और उच्चस्तरीय साधकों के सान्निध्य में रहकर अपने जीवन को सार्थक करूं, इसीलिये जब बचपन में ही मेरे मां-बाप गुजर गये तो मैं घर से भाग खड़ा हुआ और सोलह वर्ष की अवस्था तक भटकता रहा ।

मां भैरवी की मुझ पर कृपा रही कि उसने मुझे रोक लिया और उससे मैंने मां की तरह ही स्नेह पाया । इसमें कोई दो राय नहीं कि मां वास्तव में ही मां थी। उसने स्वयं मेरे लिये परेशानियां देखीं परन्तु मेरा पालन पुत्र की तरह ही करती रही। यद्यपि मैं सोलह-सत्रह वर्ष का था परन्तु उसने मुझे सोलह-सत्रह महीने से बड़ा माना ही नहीं। उसी प्रकार से हठ करके खिलाती और मेरी सुख-सुविधा का ध्यान रखती, यही नहीं अपितु उसने मुझे उसी प्रकार से सिखाया जिस प्रकार से मां अपने शिशु को सिखाती है। मां भैरवी तंत्र, क्षेत्र में निष्णात थी और उसने मुझे तंत्र क्षेत्र में निष्णात बनाने में कोई कसर नहीं रखी। मैंने अपने जीवन में सोच लिया था कि अब मुझे एक आश्रय मिल गया है और मैं इसी क्षेत्र में निष्णात बनूंगा तथा जीवन के बाकी वर्ष तंत्र को सर्वोच्चता प्रदान करने में सफल हो सकूंगा। इसके लिये मां भैरवी से सीखता रहा और वह मुझे सिखाती रही। इस प्रकार कुछ कठिन और दुष्कर क्रियाएं भी उसके द्वारा सीखने को मिली, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं ज्योंही पूर्णता की तरफ बढ़ने का प्रयत्न करता हूं कि मेरे नीचे का आश्रय समाप्त हो जाता है।

एक दिन अचानक मां भैरवी बीमार पड़ी और तीसरे दिन उसने मुझे अपने पास बुलाकर कहा बेटा ! अचानक मेरा बुलावा आ गया है और मेरा जाना आवश्यक है, जिस स्थान पर मुझे जाना है, उस स्थान के लिये इस चोले को बदलना आवश्यक है, अत: मैं जा रही हूं पर मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है, कि तू इस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करे ।

मेरे ऊपर तो अचानक वज्रपात-सा हो गया। मैं सोचता ही रह गया कि यह अचानक और अप्रत्याशित रूप से क्या हो रहा है, पर मरते-मरते मां ने इतना ही कहा कि यदि तुझे तंत्र में पूर्णता प्राप्त करनी है तो तू स्वामी निखलेश्वरानन्द के पास जाकर याचना कर। यद्यपि मैंने उनसे आज्ञा प्राप्त कर ली है फिर भी वे मेरे आराध्य हैं अत: इतना ही कह सकती हूं कि यदि शिष्य भाव अपने मन में रखा तो पूर्णता वहीं से प्राप्त हो सकेगी। तंत्र क्षेत्र में तू जिस स्तर पर है, उससे आगे का ज्ञान

और कहीं पर से तुझे नहीं मिल सकेगा, इसके लिये तुम्हें वहीं पर जाना होगा और आगे के जीवन में वही तुझे पूर्णता दे सकेंगे—और कहते-कहते मां भैरवी ने अपने प्राणों को पंचभूत में विसर्जित कर दिया।

एक बार फिर मैं अनाथ हो गया था। मेरे मन में जो उत्साह था वह समाप्त हो गया, मेरी अवस्था विक्षिप्त की तरह हो गई थी और ऐसी ही विक्षिप्त अवस्था में मैं आपके चरणों में पहुंचा था।

मुझे वह घटना और वह दृश्य आज भी भली प्रकार से स्मरण है जब मैं आपके पास पहुंचा था। आप निर्जन जंगल में छोटी-सी कुटिया में साधना रत थे। मैं दो दिन और दो रात आपके चरणों के पास पड़ा रहा, पर न तो आपकी समाधि खुली और न मैं सान्त्वना पा सका।

दूसरे दिन शाम को वहां पर अचानक एक साधु प्रकट हुआ पर उसने मुझे संकेत से चुप रहने को कहा। मैं उस घनघोर जंगल में अचानक उस आगत साधु को देखकर आश्चर्यचकित था पर मैं उसके संकेत करने पर चुप रहा। वह आपके सामने तीन घंटे तक बैठा रहा और उसके होंठ हिलते रहे, संभवतः वह आपसे आज्ञा प्राप्त करने के लिए आया था या अपनी बात कहने के लिये आया था। मैं यह देख रहा था कि आप दोनों के बीच मौन वार्तालाप चल रहा है।

यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि वे आपके ही शिष्य आज के प्रसिद्ध अवधूत बाबा थे।

तीसरे दिन जब आपकी समाधि खुली और मुझे देखा तो आपके चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। और बोले—शिवानन्द ! मां भैरवी चली गई ?

मैंने सारी बात आपको बता दी और आप चिन्तन में डूबे रहे, मेरी बात समाप्त होने पर आपके मुंह से निकला था कि मां भैरवी को जाना था, वहां पर उनका जाना आवश्यक है, पर तुझे यहां भेजा है तो चिन्ता मत कर और जीवन में जो कुछ अपूर्णता रह गई है उसे पूर्ण कर।

जिस प्रकार मरूस्थल में जलते हुए प्राणी को सुखद छाया मिलने पर आनन्द की अनुभूति होती है, ठीक वैसी ही अनुभूति आपको पाकर हुई। जिस प्रकार प्यास से बेचैन प्राणी को गंगा का किनारा अचानक मिल जाय और उसे जिस प्रकार से प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता आपका सान्निध्य पाकर मुझे प्राप्त हुई थी, मैं अपने आपको संसार का सबसे सौभाग्यशाली समझने लगा था।

पर मैं स्वयं हतभागी हूं, मैंने जो कुछ मां भैरवी से प्राप्त किया था उसमें काफी कुछ पूर्णता आपके सान्निध्य से प्राप्त हुई थी। एक वर्ष में आपने जो कुछ मुझे दिया था वह अपने आपमें अन्यतम था। थोड़े से समय में आपने मुझे जिस तीव्रता से तंत्र के पथ पर आगे बढ़ाया था वह मेरे लिये आश्चर्यजनक था। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं आपके चरणों का आश्रय पा सका था और आपके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में

सफल हो सका था, पर यह मेरा भाग्य नहीं, मां भैरवी की ममता का प्रभाव था कि आपने मुझे स्वीकार किया था।

पर मैं थोड़ा-सा पाकर भी अपने अपको काफी ऊंचा समझने लगा था, आज मैं यह अनुभव करता हूं कि मुझ में अहं की प्रवृत्ति आ गई थी, तंत्र क्षेत्र में अपने आपको निष्णात समझने लगा था। और मैं यह अनुभव करने लगा था कि मेरे पास इस प्रकार की विशिष्ट सिद्धियां हैं जिनके माध्यम से मैं असम्भव को भी सम्भव कर सकता हूं। यह भावना धीरे-धीरे मुझ में बढ़ती गई और मैं आपके अन्य शिष्यों से अपने आपको ऊंचा समझने लग गया था।

ऐसा होने पर मुझ में अहं की भावना बढ़ती ही गई। मैं कई बार अपने ही गुरु भाइयों से उलझने लग गया, फिर भी वे शान्त रहे, आप यह सब कुछ देख रहे थे, मेरे परिवर्तित व्यवहार को अनुभव कर रहे थे, फिर भी आप शान्त बने रहे, और मैं अहं के आवेग में आपके उस शान्त रूप को अपने कार्य की, और अपने अहं की स्वीकारोक्ति ही समझता रहा। आज मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि मैं कितना बड़ा नराधम हूं जिसने गुरु के सामने अहं का प्रश्रय दिया था।

और इसी दुर्बुद्धि ने एक दिन आपकी आज्ञा की अवज्ञा कर दी। आज मैं पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूं कि मैंने एक देव-पुरुष के सामने कितनी निम्नता प्रदर्शित की थी, फिर भी आप शान्त बने रहे, पर यही त्रुटि जब दूसरी बार हुई तो आपने मुझे फटकार दिया। शिष्यों के बीच इस प्रकार की फटकार से मेरे 'अहं' को चोट लगी। आपने तो मेरे अहं पर इसलिये चोट की थी कि जिससे मैं मानव बना रह सकूं। पर उस समय मेरी आंखों पर अहं की पट्टी बंधी हुई थी। तंत्र और विशिष्ट तंत्र मुझे ज्ञात थे तथा तारा साधना करने के बाद तो मैं अपने आपको बहुत कुछ समझने लगा था, इसीलिए आपकी फटकार मेरे लिये असह्य हो गयी और मैंने क्षमा याचना के स्थान पर आपके सामने खड़ा होकर जिन शब्दों का प्रयोग किया वे शब्द ही मेरी मृत्यु बन गये।

मुझे स्मरण है कि आप उन शब्दों को सुनकर क्रोध से भर गये थे और तीव्र शब्दों में मुझे निकल जाने को कहा, साथ ही यह भी सुनाई दिया कि तू जिस विद्या पर उछल रहा है वह सारी विद्या अगले छः महीनों में विस्मृत हो जायगी।

पर, यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं उस समय भी अपने आपको जरूरत से ज्यादा समझता रहा। मुझ में महाविद्या साधना के बाद यह अहं था कि कोई मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। किसी कोने में छिपी हुई यह भावना भी थी कि मुझे भी इतना ऊंचा गुरु बनना है जितना और कोई नहीं हो, और दुर्भाग्य ने मेरे अन्तर में यही कहा कि तेरा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। जो विद्याएं तेरे पास हैं वे मां भैरवी की दी हुई है, इसलिये उन विद्याओं का लोप संभव नहीं। मेरे मन में अपने स्वयं का आश्रम बनाने का कुत्सित विचार भी था अतः मैंने उसी दिन आपके आश्रय को छोड़ दिया।

पर बाबा ! यह मेरी जीवन की सबसे बड़ी भूल थी। मैं यह सारी बात इस

लिये लिखना चाहता हूं जिससे कि मेरे दिल पर जो बोझ है वह मैं उतार सकूं। पिछले १५ वर्षों से मैं इस बोझ को अपने पर लाद कर फिर रहा हूं। आपसे मैं आज सारी बात खुलकर कह देना चाहता हूं, यद्यपि मेरा पत्र लम्वा हो गया है, मैं अपने विचारों को सुनियोजित ढंग से व्यक्त नहीं कर पा रहा हूं, परन्तु फिर भी मैं अपनी बात आपके सामने रख देना चाहता हूं।

आपके यहां से जाने के बाद मैं गोरखपुर के पास रुक गया और गोरखनाथ के मन्दिर से कुछ समय के लिये संबन्धित रहा, परन्तु जिस अहं के वशीभूत होकर आप से अलग हुआ था वे सारी विद्याएं छः महीने के बाद लुप्त हो गईं। मैं उसके बाद चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाया। यद्यपि मुझे वे सारे मंत्र याद थे, सम्वन्धित क्रियाएं ज्ञात थीं। मैंने उन क्रियाओं के माध्यम से पुनः सिद्धि प्राप्त करनी चाही पर प्रयत्न करने पर भी मैं उन सिद्धियों को पुनः प्राप्त नहीं कर सका और एक बार मैं पुनः एक साधारण कीट बन गया।

उस दिन पहली बार मैंने अनुभव किया कि मैंने अपने जीवन में कितनी बड़ी भारी त्रुटि कर दी है। मैंने जीवन में जो कुछ प्राप्त किया था वह भी खो चुका हूं जो मेरा लक्ष्य था वह तो दूर, अपितु जो कुछ मेरे पास था वह भी समाप्त हो गया है, आपका श्राप मेरे जीवन के पीछे था और मैं बदहवास-सा इधर-उधर भटक रहा था।

जैसे-तैसे करके मैंने छः महीने विताये, पर जब मैं अपने आप में नहीं रह सका तो मैं पुनः उसी स्थान पर पहुंचा जहां आप मुझे मिले थे, परन्तु वहां जाने पर मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका, आपने वह स्थान छोड़ दिया था।

उसके बाद मेरा खाना-पीना सब कुछ छूट गया, मेरी आंखों की नींद उड़ गई, जीवन का मोह समाप्त हो गया और आत्महत्या करने का पक्का निश्चय कर लिया, मेरा मन बार-बार मुझे फटकार रहा था कि तूने इतने बड़े आश्रयदाता की अवज्ञा कर दी, तू जिस आधार पर खड़ा था उसी आधार को अपने हाथों से तोड़ दिया, आपके लिये जो शब्द मैंने प्रयोग किये थे उस शब्द का एक-एक अक्षर मेरे सीने पर हथौड़े मारता रहा और मैं पश्चात्ताप की अग्नि में बराबर जलता रहा।

उसके बाद मैंने आपकी खोज में पूरा नेपाल छान मारा, गोरखपुर के आस-पास का पूरा स्थान देख लिया, हिमालय के प्रत्येक उस स्थान को देखा जहां पर आप से मिलने की संभावना थी, पर जहां-जहां भी मैं गया आपका श्राप अभिशाप की तरह मेरे जीवन के पीछे लगा रहा, मुझे कहीं पर भी शरण नहीं मिली, कहीं पर भी आप के बारे में समाचार नहीं मिले, कहीं पर भी आपको न पा सका।

पिछले पन्द्रह वर्षों में हिमालय के एक-एक स्थान को देख लिया है, प्रत्येक साधु और संन्यासी से आपके बारे में ज्ञात करता रहा, परन्तु कहीं से भी अनुकूल समाचार प्राप्त नहीं हुए, इन वर्षों में मेरा पूरा शरीर जर्जर हो गया, आंखें अन्दर धंस गईं, चेहरे की कान्ति समाप्त हो गई और मुझ में इतनी भी शक्ति नहीं रही कि मैं अपने आपको सम्भाल सकूं, अपने आपको जीवित रख सकूं।

पर मरना मेरे हाथ में नहीं था, जब तक आप मुझे नहीं मिलते, जब तक आपके चरणों में पड़कर मैं क्षमा याचना नहीं कर लेता, जब तक मैं आपके पैरों को आंसुओं से भिगो नहीं लेता तब तक मर कर भी मुझे चैन नहीं मिलता, मेरी सारी इच्छाएं एक ही विन्दु पर केन्द्रित थीं कि आपको प्राप्त करना है, किसी भी स्थिति में आपसे मिलना है और अपनी भूल का प्रायश्चित करना है।

क्योंकि मैं यह भली भांति समझ गया था कि जब तक आपका श्राप समाप्त नहीं होगा, जब तक आपकी कृपा मेरे ऊपर पुनः नहीं होगी तब तक मैं कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकूंगा। मैं जिस साधक के पास भी गया वहीं से मुझे फटकार मिली, जिस अघोरी या तांत्रिक का साहचर्य प्राप्त करना चाहा वहीं से मुझे दुत्कार मिली, जिससे भी मैं मिला वहीं मुझे उपेक्षा और अनादर मिला, क्योंकि आपका श्राप मेरे जीवन के पीछे है और जब तक आप उस श्राप को वापस नहीं ले लेंगे तब तक मैं अपने जीवन में कुछ भी नहीं कर सकूंगा।

आज मैं समझ गया कि जीवन की समस्त साधनाओं से भी ऊपर गुरु की कृपा होती है, जब तक गुरु का वरद हस्त सिर पर होता है तभी तक विद्याएं फलवती होती हैं। जिस दिन गुरु अपना हाथ सिर से हटा लेते हैं, उस दिन से साधक का पतन होने लग जाता है। मेरे अहं ने मुझे बरबाद कर दिया, आपकी अवज्ञा मेरे पूरे जीवन को लील गई, और मैं साधारण मानव से भी गया बीता होकर आज दर-दर भटक रहा हूं।

मेरी इतनी हिम्मत नहीं है कि मैं आपके सामने आ सकूं। मैं आपके क्रोध से परिचित हूं, यद्यपि आप दया मूर्ति हैं, आपके जीवन में मेरे जैसे सैकड़ों नराधम आएं होंगे, उन पर अवश्य आपकी कृपा हुई होगी, मैं जीवन में अभागा हूं इसलिए चाह कर भी मैं आपकी कृपा नहीं पा सका।

पिछले दिनों हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्र में आपके बारे में बहुत कुछ पढ़ने को मिला, तब सारी स्थिति मेरे सामने स्पष्ट हो गई। वे सारी घटनाएं मेरी आंखों के सामने फैल गईं जो मैंने देखी थीं। वहीं से आपका पता मिला, और जब चित्र देखा तो रहा सहा संदेह भी जाता रहा।

यदि साधना का स्मरण रहता तो मैं साधना के माध्यम से आपके जीवन के बारे में जानकर आपके चरणों में आ गिरता, परन्तु आपने तो मेरी सारी विद्याएं विस्मरण कर दी हैं, मैं प्रयत्न करता हूं फिर भी मुझे स्मरण नहीं रहता। जो कुछ मुझे याद था वह भी मैं भूल चुका हूं।

एक बार जब आपका पता मुझे लगा तो मैंने निश्चय किया कि मैं सीधा आपके चरणों में पहुंच जाऊं और मुझसे जो भयंकर त्रुटि हो गई उसके लिए क्षमा याचना करूं। इतना होने पर भी यदि आप मुझे ठुकरा देंगे तब भी मैं निश्चिन्त रहूंगा, क्योंकि आपसे ठुकराया हुआ कहलाऊंगा, क्या यह कम गौरव की बात है।

मैं आपके क्रोध से परिचित नहीं था, मैंने आपका करुणा और दया का रूप

देखा था, आपका स्नेह मेरा अवलम्ब रहा था, आपके सान्निध्य में जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ था वह मेरे लिए स्वर्णिम था, आपका पुत्रवत स्नेह मुझे मिला था। आपने जितना स्नेह इस तुच्छ कीट को दिया था वह वास्तव में ही मेरी अमूल्य निधि थी। मैं बराबर त्रुटियां करता जा रहा था और आपकी करुणा बराबर उसको अनदेखी कर रही थी, आपने जो कुछ मुझे दिया वह मेरे लिए अन्यतम रहा। मैंने आप में पिता का प्रेम, मां की करुणा, बड़े भाई का स्नेह और गुरु का आशीर्वाद अनुभव किया, मैंने कई रूपों में आपके दर्शन किये हैं और प्रत्येक रूप करुणा तथा दया से ओत-प्रोत रहा है।

यह मेरे जीवन की विडम्बना थी कि मैं हिमालय के पास जाकर भी शान्ति नहीं पा सका, आपकी दया रूपी गंगा के किनारे बैठकर भी तृप्त नहीं हो सका, आप की शीतल छाया प्राप्त होने पर भी मैं उससे वंचित हो गया, यह मेरे जीवन का कितना बड़ा दुर्भाग्य था कि आप जैसे परम श्रेष्ठ गुरु को पाकर भी मैं अनाथ ही बना रहा।

पर यह मेरी गलती थी, मैं अनाथ हूं, दरिद्री हूं, निर्धन और कमजोर हूं, परन्तु जो कुछ भी हूं केवल मात्र आपका हूं। आप मेरे लिए एक क्षण व्यतीत करें और साधना से देखें कि पिछले पन्द्रह वर्ष मैंने किस प्रकार बिताए हैं, मेरी प्रत्येक सांस के साथ आपका नाम रहा है, मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण में आपका स्मरण रहा है, मेरे शरीर के रोम-रोम से आपके नाम की ध्वनि निकलती रही है, और पिछले पन्द्रह वर्षों में मैं प्रत्येक क्षण पश्चात्ताप की अग्नि में जलता रहा हूं।

मैं इस पत्र के द्वारा दया की भीख मांगता हूं, मैं कुछ भी नहीं हूं, मुझसे जो कुछ त्रुटि हुई है, उसके लिए पूरे जीवन भर के लिए क्षमाप्रार्थी हूं, जब तक आपका करुण-पत्र प्राप्त नहीं होगा तब तक मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा। मैं आपके सामने हर क्षण रहा हूं पर मैं अपने आप में इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रहा हूं कि बिना आपकी आज्ञा के आपके चरणों में आ सकूं, क्योंकि मैं अपराधी हूं और अपराधी को किसी भी प्रकार की रियायत प्राप्त नहीं होती।

परमात्मा से विमुख होकर तो व्यक्ति शायद जीवित रह भी सकता है, पर गुरु से विमुख होकर उसे तिल-तिल कर जलना ही पड़ता है, उसके जीवन की और कोई गति-मति नहीं होती।

मैं शरीर के रोम-रोम के द्वारा आपसे क्षमा-याचना करता हूं, मेरी आंखें अतृप्त हैं, मेरा हृदय वेदना ग्रस्त है। मेरा सारा शरीर पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा है, और जीवन का प्रत्येक क्षण अभिशाप से ग्रस्त है, मैं इस पत्र के द्वारा अपने आपको आपके सामने समर्पित करता हूं, मुझे विश्वास है कि आप इस अकिंचन को दया की भीख देंगे जिससे कि आपके चरणों में उपस्थित होकर क्षमा-याचना कर सकूं और जीवन का, प्रायश्चित कर सकूं।

अधमाधम,

(शिवानन्द ब्रह्मचारी)

साधनाएँ और सिद्धियां

बगलामुखी-साधना

पूज्य पण्डितजी,

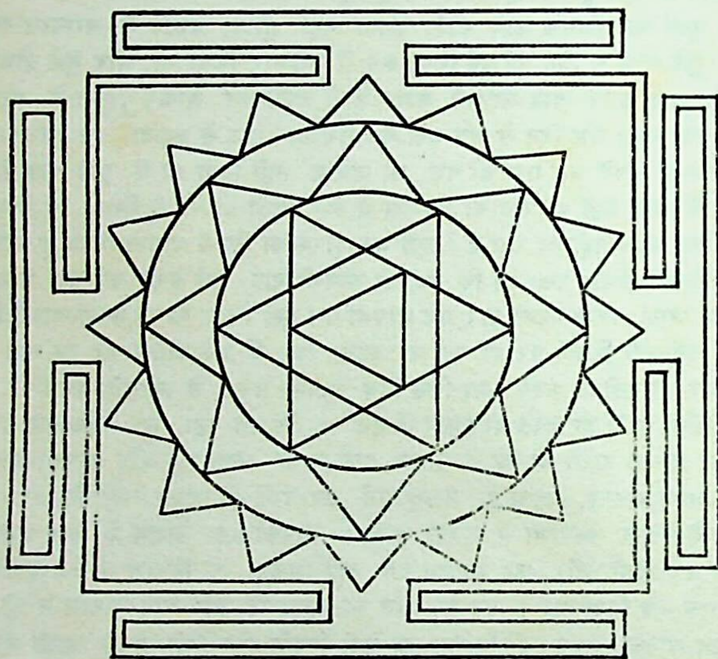
सादर चरण स्पर्श ।

मैं आपका ऋणी हूं कि आपने अपना वरदहस्त मेरे सिर पर रखा, मैं आपके घर आने से पहले पूरी तरह से निराश हो चुका था और निराशा की उस सीमा तक पहुंच चुका था जिसके आगे कोई रास्ता नहीं होता, यद्यपि मैं आश्वस्त था कि आपने मुझे आज से तीन वर्ष पूर्व शिष्य रूप में स्वीकार किया था, और मुझे दीक्षा भी दी थी, परन्तु उसके बाद आपकी आज्ञा से मैं अपने घर आकर गृहस्थ के कार्यों में उलझ गया था । उस दिन से अब तक मैंने लगभग साठ से ज्यादा पत्र आपको दिये होंगे, परन्तु आपने जब एक भी पत्र का जबाव नहीं दिया तो मैं पूरी तरह से ऊब गया । मैं समझ नहीं पा रहा था कि मुझ से क्या गलती हो गई है जिससे कि मैं आपके चरणों तक पहुंच नहीं पा रहा हूं ? मुझे यह गौरव था कि मैं आपका शिष्य हूं और यह मैंने अधिकार समझ रखा था कि जब भी आपकी याद मुझे बेचैन करे तब मैं आपके पास आ जाऊं, परन्तु पहली बार जब आपका पत्र मुझे मिला था तो उसमें आपने लिखा था कि स्वीकृति मिलने पर ही यहां पर आना, अतः मैं मन मसोस कर रह गया और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जिस दिन आपकी तरफ से स्वीकृति-पत्र मिले, और इसी बेचैनी में मैं हर हफ्ते दो हफ्तों में एक पत्र लिखता रहा, मेरे अधिकांश पत्रों में एक ही याचना रहती थी कि मैं आपके पास आना चाहता हूं और आपकी कृपा का प्रसाद प्राप्त करना चाहता हूं, परन्तु मुझे उन पत्रों के उत्तर नहीं मिलते और मैं ज्यादा-से-ज्यादा निराशा में डूबता जाता । आपको पत्र लिखने के बाद उत्तर की बेचैनी बढ़ जाती, और जब आपका पत्र नहीं मिलता तो निराश होकर डरते-डरते फिर एक पत्र लिख देता । डर इस बात का रहता कि कहीं आप नाराज न हो जाएं, पर जब आपका उत्तर नहीं मिलता तब मेरी स्थिति ठीक वैसी ही हो जाती जैसी कि मछली को पानी से निकालकर जमीन पर डालने से होती है ।

मैं यह मन में सोच चुका था कि मैं आपके द्वारा भुला दिया गया हूं, मैंने यह भी सोचा कि शायद मैं अपात्र हूं, इसीलिए उनके चरणों में जा नहीं पा रहा हूं, कभी सोचता कि शायद इसी प्रकार घुट-घुट कर मर जाना पड़ेगा, यद्यपि मेरे घर में पत्नी

है, बच्चा है, अच्छी नौकरी है, परन्तु फिर भी मुझे सन्तोष नहीं मिलता, मन में एक अभाव-सा अनुभव होता रहता। और जब साठ से ज्यादा पत्र आपको दे चुका और इतना होने पर भी जब आपकी तरफ से एक भी पत्र का उत्तर नहीं मिलता तो मैं पूरी तरह से निराश हो गया और मैंने अपने कर्मों का दोष समझ कर यह धारणा बना ली कि अब गुरुजी का कोई पत्र प्राप्त नहीं हो सकेगा।

जिस दिन पूरी तरह से टूट चुका था उसके दूसरे दिन ही आपका कृपा पत्र मिला कि शीघ्र आ जाओ, तुम्हें विशेष अनुष्ठान कराना है। मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे मरुस्थल में प्यास से तड़फते हुए प्राणी को जल की बूंदें मिल जाय, उस दिन मैं कितना प्रसन्न हुआ था, व्यक्त नहीं कर सकता, तीन साल की बेचैनी और निराशा एक ही क्षण में दूर हो गई थी और मैं उसी दिन आपके चरणों में उपस्थित होने के लिए चल पड़ा था।



भगवती श्रीबगला का पूजन-मंत्र

पहली बार आपके चरणों में जी भर कर बैठने का मौका मिला और इससे भी ज्यादा सौभाग्य मेरा यह रहा कि आपने मुझे अपने ही घर में ठहरने की स्वीकृति दी, लगभग पन्द्रह दिन आपके घर पर रहा। सच मानें पिछले चालीस वर्षों में भी मुझे

इतना अधिक आनन्द और स्वर्गिक सुख की अनुभूति नहीं हुई थी जितनी आनन्दानुभूति आपके घर में पन्द्रह दिनों में हुई थी।

आपने मुझे 'बगलामुखी साधना' सीखने की आज्ञा दी और उन पन्द्रह दिनों में आपने इस साधना के बारे में जो समझाया वह मेरे चित्त पर अंकित हो गया। मैंने यही निश्चय किया था कि आपके ही घर में रहकर इस साधना को सम्पन्न करूं, परन्तु आपकी आज्ञा थी कि मैं वापस अपने घर चला जाऊं और घर में ही इस साधना को सम्पन्न करूं। आपकी आज्ञा मेरे जीवन का सर्वोच्च धर्म है, अत: मैं आपका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने घर लौट आया।

घर आकर मैंने इस साधना को सम्पन्न करने का निश्चय किया। आपने आदेश दिया था कि किसी भी महीने की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को इस अनुष्ठान का प्रारम्भ करना चाहिए, अत: मैंने माघ कृष्ण चतुर्दशी को यह साधना प्रारंभ की। इस संबंध में जो कुछ अनुभूति हुई है वह मैं आपके चरणों में निवेदन कर रहा हूं :

साधना या अनुष्ठान प्रारंभ करने से पूर्व मैंने अपने घर के एक कक्ष को पूरी तरह से खाली कर दिया, मेरे घर में मात्र तीन कमरे ही हैं, अत: सारा सामान मैंने दो कमरों में व्यवस्थित कर तीसरा कमरा साधना के लिए चुना, और उसे पीले रंग से पुतवा दिया, कमरे की छत और नीचे का फर्श भी पीले रंग से रंगवा दिया था, इसके अलावा दरवाजे पर पीले रंग का पर्दा डाल दिया था।

आपने बताया था कि रात्रि को दस बजे यह अनुष्ठान प्रारंभ होना चाहिए, और सुबह ५ बजे तक यह अनुष्ठान चलना चाहिए, इसके अलावा १० बजे से पूर्व कुए के जल से स्नान करना चाहिए। इस प्रकार का जल मैं पहले से ही लाकर अपने घर में रख देता था, जिस कलश में यह जल लाता था वह पूरी तरह से मंजा हुआ शुद्ध होता था, मैंने साधना के लिए पीले रंग की धोती पहनने के लिए और पीले रंग की ही धोती ओढ़ने के लिए रख दी थी। जो आसन मैंने बिछाया था वह भी पूरी तरह से पीले रंग से रंगा हुआ था, आसन के सामने लकड़ी का एक तख्ता रख दिया था जिस पर पीले रंग का कपड़ा पहले से ही बिछा दिया था, और पीले रंग से रंगे हुए चावलों से तख्ते पर मैंने बगलामुखी यंत्र बना दिया था, और उस यंत्र पर बगलामुखी चित्र कांच के फ्रेम में मंढवा कर रख दिया था। यह चित्र आपके द्वारा ही प्राप्त हुआ था।

आपने बताया था कि बिल्कुल निर्वस्त्र होकर मुझे स्नान करना है, अत: मैंने इस प्रकार स्नान कर धोती पहन ली थी और दूसरी धोती ओढ़ ली थी, उसके बाद मैं आसन पर आकर बैठ गया था, मेरा मुंह दक्षिण की ओर था।

तख्ते पर पीले रंग से रंगा हुआ जो मिट्टी का दीपक था उसमें गाय का घी भरा हुआ था, और पीले रंग से रंगी हुई रूई की बाट बनाकर रख दी थी। आसन पर बैठने के बाद मैंने उस दीपक को जलाया, साथ ही दीपक को बगलामुखी यंत्र के बीच में रख दिया, दीपक के और तस्वीर के बीच में मैंने पीले रंग के पुष्प बिखेर दिए थे,

और गन्धक की सात ढेरियां बना .ो थीं, प्रत्येक ढेरी पर दो-दो लौंग भी रख दिए थे।

तख्ते पर ही एक पीले रंग से रंगा हुआ पीतल का लोटा रख दिया था और उसमें पीले रंग का जल भ.र .दिया था, आसन पर बैठकर मैंने आचमन प्राणायाम किया और फिर हाथ में जल तथा कनेर के पुष्प लेकर संकल्प किया कि मेरे ऊपर जो मुकदमे हैं वे समाप्त हो जायं, मैं उन सभी मुकदमों में विजयी रहूं, शत्रुओं पर मैं पूर्ण रूप से हावी बनू, शास्त्रार्थ में या बातचीत में सामने वाले व्यक्ति का मुंह कीलन हो जाय जिससे कि बातचीत में मैं सफलता प्राप्त कर सकूं और अपने अनुरूप कार्य सफल हो सके।



बगलामुखी देवी

संकल्प के बाद मैंने निम्नलिखित विनियोग किया :

'ओम अस्या : श्री ब्रह्मास्त्र-विद्या-बगला मुख्य नारद ऋषये नमः शिरसि । त्रिष्टुप छन्द से नमो मुखे । श्री बगला मुखीदेवताये नमो हृदये । ह्री बीजाय नमो गुह्ये । शक्तये नमः पादयो । ओम कीलकाय नमः सवांगे । श्री बगलामुखी देवता प्रसाद सिध्यर्थं जपे विनियोग ।'

विनियोग के बाद मैंने श्रद्धा से बगलामुखी का निम्न ध्यान किया

मध्ये सुधब्धि मणि मंडप रत्न वेदी सिंहासनो परिगताम्परि पीत वर्णम् ।
पीताम्वरा मरण मात्य विभूषतांगीन्देवीन्नमामि घृत मुद्गर वैरि जिह्वाम् ॥
जिह्वाग्र मादाय करेण देवी वामेन शत्रून्परिपी डयन्तीम् ।
गदाभिघातेन न दक्षिणेन पीताम्बराढ्या द्विभुजान्नमामि ॥

ध्यान करते समय मेरी आंखें बगलामुखी देवी के चेहरे पर टिकी हुई थीं । उसके बाद मैंने बगलामुखी मंत्र जप प्रारंभ किया । आपने बताया था कि इसके लिए सूखी हुई हल्दी की माला का प्रयोग ही होता है, अतः मैंने १०८ हल्दी के टुकड़े ले उसकी माला बनाकर पहले से ही रख दी थी ।

आपने मुझे नित्य १०१ माला फेरने की आज्ञा दी थी, अतः मैंने नित्य १०१ मालाएं निम्न मंत्र की फेरीं :

'ओह्य ह्लीं बगलामुखि सव्वं दुष्टानां व्वाचम्मुखं
स्तम्भय जिह्वा कीलय कीलम बुद्धिन्नाशय ह्लीं ओम स्वाहा ॥

आपने मुझे यह भी बताया था कि मैं नित्य नियमपूर्वक इस अनुष्ठान को करूं और दिन में केवल दूध का सेवन ही करूं । इसके अलावा अन्न आदि न लूं, अतः मैंने दिन में दो तीन बार दूध अवश्य पिया, अन्न नहीं लिया था, साथ-ही-साथ आपने यह अनुष्ठान तेरह दिन का बताया था, अतः इन तेरह दिनों में मैंने नौकरी से संबंधित या गृहस्थ से संबंधित कोई कार्य नहीं किया और पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का भी पालन किया ।

मैं नित्य इसी प्रकार से कार्य करता हुआ साधना कर रहा था, साधना प्रारंभ करने के सातवें दिन मुझे विचित्र अनुभूति हुई, जैसे मेरे कमरे में कोई महिला खड़ी है और जोरों से हंस रही है, उसकी हंसी वीभत्स और डरावनी थी, इसके साथ-ही-साथ उसकी चूड़ियों की आवाज भी मन में भय का संचार कर रही थी ।

मैं बिना उसकी तरफ देखे देवी के चित्र के सामने नजर टिकाए मंत्र का पाठ करता रहा, परन्तु ऐसा आभास बराबर रहा कि वह स्त्री कमरे में ही खड़ी है और एकटक मुझे घूर रही है ।

इसके बाद दो दिन शान्ति से बीते, परन्तु दसवें दिन जब मैं रात्रि को साधना में बैठा तो ठीक बारह बजे एक भयावनी स्त्री मेरे पास आ बैठ गई । उसका बायां घुटना मेरी दाहिनी जांघ को दबा रहा था, मैंने मंत्र पढ़ते-पढ़ते ही डरकर दाहिनी ओर देखा तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए । वह स्त्री ठीक वैसी ही थी जैसी कि काली देवी

की कल्पना पढ़ी है या सुनी है, लम्बे लम्बे बाल, डरावनी-सी आंखें, पूरे शरीर की हड्डियां निकली हुई, दुबली पतली, आंखें अन्दर को धंसी हुई, तथा शरीर पर विचित्र प्रकार की हड्डियों की माला पहनी हुई अत्यन्त ही डरावनी और भयानक लग रही थी, उसके एक हाथ में खप्पर था और खप्पर में ताजा मानव रक्त भरा हुआ था जिसे वह धीरे-धीरे पी रही थी।

एक बार तो मेरी सांस ऊपर की ऊपर रह गई और मेरी जबान तालू से चिपक गई। बड़ी कठिनाई से मैं मंत्र का उच्चारण कर पाया, इस प्रकार-वह लगभग एक घंटे तक बैठी रही, पर इसके बाद मैंने उसकी तरफ ताका भी नहीं, रात्रि के लगभग तीन बजे उसने बायें हाथ से मेरे केश मुट्ठी में पकड़े और जोरों से झकझोर दिए। मेरी आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया, एक क्षण के लिए तो ऐसा लगा जैसे मेरी सांस निकल गई हो, पूरे कमरे में मरे हुए जानवर से निकली हुई बदबू भर गई। मेरी आंख खुली तब वह काली जा चुकी थी। उसके बाद की रात्रि मैंने भय के साथ ही व्यतीत की, परन्तु मैंने १०१ मालाएं पूरी कर ली थीं।

ग्यारहवें दिन कोई विशेष घटना नहीं घटित हुई। यद्यपि यह एहसास बराबर बना रहा कि वह कमरे में उपस्थित है, और उसकी तीक्ष्ण आंखें मुझे भेद रही हैं। मैंने उस दिन इधर-उधर ताका ही नहीं और अपनी आंखें बगलामुखी देवी के चित्र पर टिकाए रखीं। उस रात्रि को ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि तस्वीर में बगलामुखी देवी के स्थान पर बड़ी भयावनी स्त्री हो। उस चित्र को देखकर भी मन में भय का संचार होता था।

बारहवें दिन जब मैं साधना के लिए आसन पर बैठा तो बैठते ही मेरे सीने पर जोरों की लात लगी और मैं आसन से पीछे की ओर लुढ़क गया, तुरन्त ही मैं अपने आपको संयत कर पुनः आसन पर बैठा तो दूसरी बार भी जोरों की लात लगी और मेरी आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। मैं पुनः उठकर आसन पर बैठ गया पर लातों के प्रहार से मेरे सीने में जोरों का दर्द हो रहा था।

इसके बाद लगभग बारह बजे वही स्त्री कक्ष में दिखायी दी और मेरे सामने आकर बैठ गई, लगभग पन्द्रह मिनट तक वह मुझे घूरती रही, उसके बाद उसने झपट कर मेरे हाथों से माला छीन ली और मेरे गाल पर इतने जोर का तमाचा मारा कि आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया और मैं लगभग संज्ञा शून्य-सा हो गया। ऐसी स्थिति पांच या सात मिनट तक रही होगी और मैं पुनः अपने आपको नियंत्रित कर आसन पर स्थिर बैठ गया। मुझे स्थिर देखकर उसने वह माला मेरे सीने पर जोरों से फेंक दी, मैं माला को हाथ में लेकर पुनः मंत्र पढ़ने लगा।

रात्रि के लगभग एक बजे उसने दांत किटकिटाए और वहीं बैठे-बैठे हाथ बढ़ा कर कमरे में जो पीले रंग का बल्ब जल रहा था उसे फोड़ दिया, जिससे कमरे में अंधेरा छा गया। केवल मेरे सामने जो दीपक जल रहा था उसकी ही रोशनी कमरे में रही।

उसने जोरों से हुंकार भर कड़क कर कहा—बन्द कर इस कार्य को, क्यों कर रहा है यह कार्य ? यदि अभी तूने बन्द नहीं किया तो मैं तुझे मारकर तेरा खून खप्पर में भरकर पी लूंगी और इतना कहते-कहते वह जोरों से कड़कड़ा कर हंस पड़ी।

उस समय मेरी हालत पिंजरे में फंसे चूहे की तरह हो रही थी, मेरी आंखों के सामने मृत्यु स्पष्ट दिखाई दे रही थी, उस समय वातावरण ही ऐसा बन गया था। मैंने एक क्षण के लिए आपके चरणों का स्मरण किया और दूसरे ही क्षण मन्त्रजप प्रारम्भ कर दिया।

मेरा पुनः मन्त्र जप प्रारम्भ करना था कि उसने अपने दाहिने हाथ से मेरे गले को पकड़ लिया और इतनी जोर से दबाने लगी कि गले की नसें फूल गई और आंखें बाहर को निकलने लगीं, पूरा शरीर पसीने-पसीने हो गया, मेरे मुंह से घरघराहट की आवाज ही निकल रही थी, मन्त्र जप सम्भवतः बन्द हो गया था।

कुछ क्षणों बाद उसने हाथ हटा दिया तो मैंने पुनः मन्त्र जप प्रारम्भ कर दिया, पूरी रात इसी प्रकार चलता रहा। कभी उसने मेरे बाल खींचे, कभी छाती पर लात मारी, कभी मेरा गला दबाया, पर फिर भी मैं अपने ऊपर नियंत्रण रखता हुआ मन्त्र जप करता रहा।

यह रात्रि मेरे लिए अत्यन्त भीषण और कष्टदायक थी। आपका ही प्रभाव और कृपा थी कि मैं इस रात्रि को बच सका और जिन्दा रह सका, अन्यथा मैं हर क्षण मरा था और हर दूसरे क्षण जिन्दा हो रहा था।

प्रातः मुझे बुखार हो गया था और दिन भर एक सौ तीन डिग्री बुखार रहा, उस दिन मैं भली प्रकार से दूध भी न पी सका और दिन भर बुरे-बुरे विचार आते रहे, शरीर पसीने-पसीने होता रहा, आने वाली रात्रि की याद करके ही मेरे प्राण सूख गए थे, एक बार तो मैंने साधना स्थगित करने का ही निश्चय कर लिया था, पर उसी समय कुछ ऐसा लगा जैसे कि आप कह रहे हैं कि घबराओ मत, साधना चालू रखो, मैं तुम्हारे साथ सहायक के रूप में उपस्थित रहूंगा।

रात्रि को बुखार में ही मैंने स्नान किया और आसन पर जाकर बैठ गया, विनियोग करके मन्त्र जप प्रारम्भ किया, रात्रि के एक बजे तक कुछ नहीं हुआ, लगभग डेढ़ बजे के आस-पास एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री मुझे दिखाई दी, जिसने पैरों में सोने के पाजेब पहने हुए थे और पूरे शरीर पर पीले रंग के वस्त्र तथा सोने के गहने लदे हुए थे, उम्र लगभग बीस-बाईस वर्ष के आसपास थी। वह अत्यन्त सुन्दर और मादक दिखाई दे रही थी, यह आकर मेरे पास धीरे से बैठ गई।

मैं मन्त्र जप करता रहा, लगभग पांच बजे मैंने मन्त्र जप पूरा किया। तब तक वह मेरे पास इसी प्रकार बैठी रही और अपनी मोहक मुस्कान के साथ मुझे ताकती रही। मुझे कुछ ऐसा लग रहा था कि इन्द्र लोक की अप्सरा मेरे पास बैठी हो और मुझ पर मुग्ध हो।

जब मैंने मन्त्र जप समाप्त किया और उठने लगा तो वह धीरे से बोली—'एक

क्षण के लिए रुकिए, क्या आप मुझे से बात नहीं करेंगे ?'

मैं चुप रहा तो उसने फिर कहा—'मैं 'बगला' हूं आपने मुझे क्यों बुलाया है?'

आपकी आज्ञानुसार जब उसने ऐसा कहा तो मैंने उसके सामने ध्यान दिया और निवेदन किया कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे शत्रु स्तम्भन तथा ऐश्वर्यवृद्धि वरदान दें और हर क्षण मेरे लिए सहायक रहें।

उसने कहा—'मैं तुमसे प्रसन्न हूं आज के बाद मैं हर क्षण तुम्हारी रक्षा करूंगी और प्रत्येक विपत्ति से पूर्व तुम्हें सूचित कर दूंगी और उस विपत्ति से बचाऊंगी, साथ ही मुझे स्मरण कर यदि तुम किसी से बातचीत करोगे या शास्त्रार्थ करोगे तो मैं सामने वाले व्यक्ति की जीभ कीलन कर दूंगी जिससे कि तुम विजयी रह सको।'

मैंने श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया तो उसने 'एवमस्तु' कहा तथा गजगामिनी गति से कक्ष से बाहर निकल गई। उसके निकलने के बाद भी मैं मन्त्र-मुग्ध सा बैठा रहा, उसके शरीर की सुगन्ध से पूरा कमरा अपूर्व सुभाषित था।

मैं लगभग एक घण्टे तक अनिवर्चनीय आनन्द में निमग्न रहा। ज्योंही मैं चैतन्य हुआ त्योंही मैं कक्ष से बाहर आया और दूसरे कक्ष में लगे हुए आपके चित्र के सामने प्रणीपात हो गया, मेरी आंखों से आंसुओं की धार वह निकली, सफलता की वजह से मेरा सारा शरीर पुलकित हो रहा था और मन में एक अपूर्व सी शान्ति अनुभव कर रहा था।

इस अनुष्टान को सम्पन्न हुए तीन महीने बीत गए हैं, आपने मुझे आज्ञा दी थी कि अनुष्ठान सम्पन्न होने के तीन महीने बाद पत्र लिखना, अतः आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हुआ यह पत्र आपको भेज रहा हूं।

इन तीन महीनों में मुझे आश्चर्यजनक उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। साधना सम्पन्न होने के एक महीने बाद ही अप्रत्याशित रूप से मेरा प्रमोशन हो गया और यहीं पर मेरी नियुक्ति भी हो गई। आर्थिक दृष्टि से मुझे विशेष लाभ हुआ है और मेरा पुत्र जो व्यापार कर रहा था उसमें अद्वितीय सफलता मिल रही है, सबसे बड़ी बात यह हुई कि मेरे ऊपर तीन मुकदमे चल रहे थे जो शत्रुओं ने ईर्ष्यावश मुझ पर लगा रखे थे, साधना सम्पन्न होने के दो महीनों के भीतर-भीतर उन शत्रुओं ने समझौता करने का निश्चय किया है और उन्होंने कहा कि मैं भी समझौता कर लूं, मेरी शर्तों पर वे समझौता करने को तैयार थे, अतः समझौता हो गया और मैं पूर्ण रूप से इनमें विजयी रहा।

अब मैं किसी उच्च अधिकारी से मिलता हूं तो उससे पूर्व इस मन्त्र का एक बार उच्चारण कर उसके सामने जब जाता हूँ तो वह मेरे सामने हकलाने लग जाता है और बात मान लेता है।

एक आश्चर्यजनक बात पिछले सप्ताह यह हुई कि मेरे नगर में एक धर्मशास्त्री आए थे, वे निर्गुणवाद के समर्थक थे। उनकी प्रशंसा मैंने काफी सुनी थी अतः कुछ

मित्रों के साथ मैं उनके दर्शन के लिए चला गया, उस समय लगभग चार-पांच हज़ार व्यक्ति बैठे हुए थे, पता नहीं क्यों मेरे मन में उनसे तर्क करने की भावना आई और मैंने उनसे निर्गुणवाद के विरुद्ध सगुण उपासना की महता सिद्ध करने की बात रखी। मैंने पांच बार इस मन्त्र का जप किया और आश्चर्य की बात यह थी कि मैं ऐसे-ऐसे तर्क देता गया जिसका भान मुझे पहले कभी नहीं था। लगभग आध घण्टे तक वाद-विवाद रहा और मैं बराबर अपने पक्ष के तर्क देता रहा। आश्चर्य की बात यह है कि उन स्वामीजी ने अपनी गलती और पराजय सबके सामने स्वीकार कर ली। लोगों ने मुझे आश्चर्य से देखा, मेरे मित्रों ने कहा कि मैं इस प्रकार से तर्क कर रहा था जैसे कि मैंने जीवन भर शास्त्रार्थ किया हो और अत्यन्त उच्चकोटि का विद्वान होऊँ।

मुझे कुछ ऐसा लगा कि सामने वाले स्वामीजी की जीभ कीलन हो गई थी और वे जो कुछ कहना चाहते थे चाहकर भी नहीं कह पा रहे थे।

आपकी आज्ञानुसार यह पत्र लिख रहा हूं। मैंने जिस प्रकार से साधना की, और जो कुछ अनुभूति हुई वह इस पत्र के द्वारा व्यवत कर दी है आपही देखें कि मैं सफल हो सका हूं या नहीं।

यदि मैं सफल हो सका हूं तो इसके मूल में आपकी ही प्रेरणा रही है। आपकी कृपा से ही मैं सफलता प्राप्त कर सका हूं, इसके लिए मैं और मेरा परिवार आपके प्रति कृतज्ञ और चिर ऋणी है।

मुझे एक बार पुनः आपके चरणों में आने की आज्ञा दें, मेरा पूरा परिवार आपके दर्शन करने के लिए व्याकुल है।

दर्शनाभिलाषी,
गिरधर द्विवेदी

तारा साधना

परम पूज्य गुरुजी !

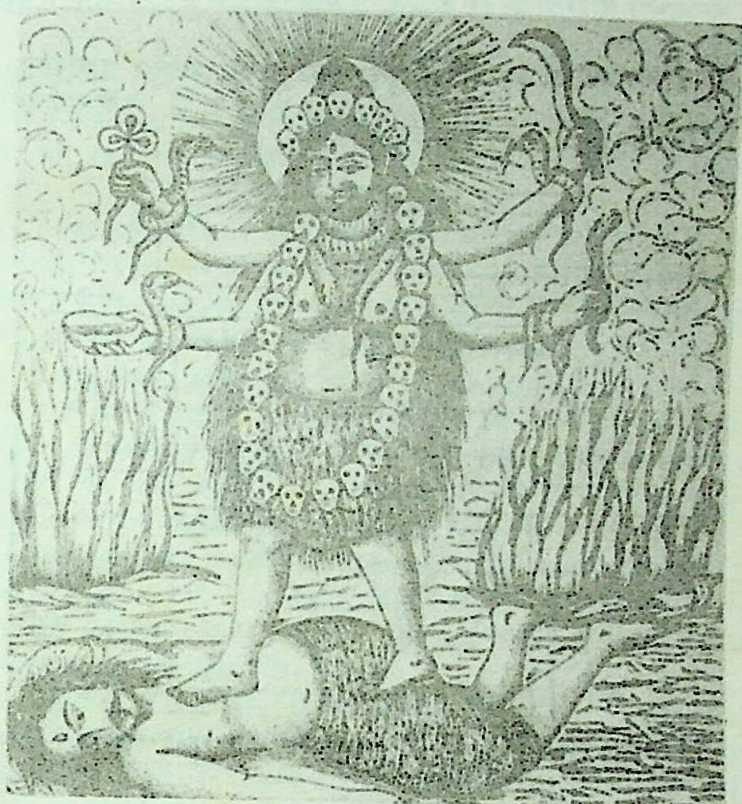
सादर साष्टांग प्रणाम।

आपके आदेश से मैं चला तो आया था, परन्तु पिछले चार महीनों से मैं आपके चरणों को एक क्षण के लिए भी भुला नहीं पाया हूं। आपने मुझे आदेश दिया था कि मैं अपने मन को संयमित रखूं और प्रयत्न करूं कि मेरा चित्त इस बिन्दु पर स्थिर हो सके। यद्यपि आपकी आज्ञानुसार मैंने आपके बताये हुए त्राटक से चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न किया है और मुझे उसमें सफलता भी मिली है, अब मेरा मन पूर्णतः शान्त रहता है, शान्ति-सी अनुभव होती है, पहले मेरा मस्तिष्क भटकता रहता था और जब मैं आंखें बन्द कर ध्यान लगाने की कोशिश करता, तब मस्तिष्क नियन्त्रण में नहीं रह पाता था। मेरी आंखें अवश्य बन्द रहतीं परन्तु मेरा मन घूमता रहता और विचार स्थिर नहीं रह पाते थे, परन्तु अब इस त्राटक के माध्यम से मुझे आश्चर्यजनक सफलता मिली है, मैं विचारों के प्रवाह को रोकने में सफल हो पाता हूं, मेरा मन जो उद्विग्न और अशांत रहता था अब स्थिर और शान्त रहने लगा है। मैं एक आश्चर्यजनक शान्ति अपने मन में अनुभव करता हूं, मैं आपका ऋणी हूं और आपने कृपापूर्वक जो कुछ मुझे दिया है उसके लिए मैं जीवन भर ऋणी रहूंगा।

मैं अपने विचारों को केन्द्रित करने में सफल जरूर हुआ हूं और अब मैं ध्यान लगाता हूं तो और कोई अन्य विचार मन में नहीं आता, परन्तु कई बार ध्यान लगाते ही आपका चित्र सामने आ जाता है, ऐसा लगता है कि आप सशरीर मेरे सामने खड़े हैं और आपका वरदहस्त मेरे सिर पर है। ऐसा दृश्य देखते ही मेरा पूरा शरीर पुलकित हो उठता है तुरन्त समाधि टूट जाती है तथा आंख खुल जाती है, उस समय आप दिखाई नहीं देते, आप कल्पना कर सकते हैं कि आपको सामने न पाकर मुझे कितनी अधिक वेदना होती है, इसको मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा हूं। मैं जो कुछ लिख रहा हूं वास्तविकता लिख रहा हूं आप समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, त्रिकालज्ञ हैं, आप स्वयं मेरे इस कथन को परख सकते हैं।

मैं और कुछ नहीं चाहता केवल आपके चरणों में कुछ समय और रहना चाहता हूं। आपकी आज्ञा मेरे लिए सर्वोपरि है, फिर भी मैं आपका बालक हूं इस

लिए बाल हठ स्वाभाविक है और इसी हठ का आश्रय लेते हुए मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं कि आप कुछ समय के लिए ही सही, एक बार पुनः अपनी शरण में आने दें और कुछ समय आपके चरणों में बैठने का अवसर दें ।



तारा देवी

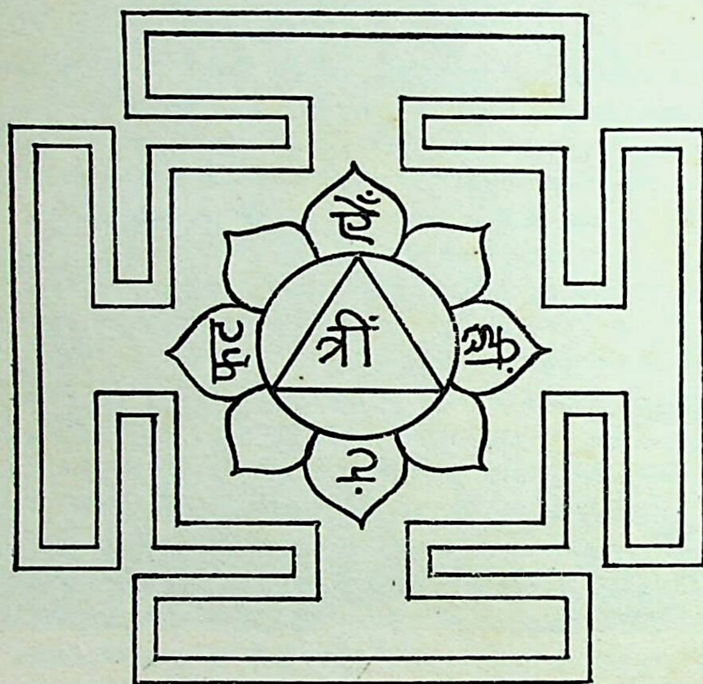
आपने जो कृपापूर्वक जा तारा साधना सिखाई थी वह मैंने यहां आकर सम्पन्न की । इस साधना में जो कुछ उपलब्ध हुआ वह सब मैं आपके सामने इस पत्र के माध्यम से रख देना चाहता हूं जिससे कि आप जान सकें कि मैं सफल हो सका हूं या नहीं ? साथ ही आप मुझे मार्गदर्शन दें कि अब मैं आगे इस सम्बन्ध में क्या करूं ।

आपने बताया था कि किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष के प्रथम गुरुवार से यह

साधना प्रारम्भ की जा सकती है और इसका समय रात्रि के ९ बजे से ३ बजे के बीच रहता है।

आपके यहां से मैं बहुत दुःखी और व्यथित हृदय से रवाना हुआ था, आपकी आज्ञा मुझे आगे ठेल रही थी और मेरे पैर आगे बढ़ने के लिए जड़ से हो रहे थे, फिर भी आपकी आज्ञा आज्ञा ही थी, अतः मैं उसी दिन दोपहर को गाड़ी में बैठकर अपने घर आ गया।

मेरे घर की छत पर एक छोटा-सा कमरा है अतः आपकी आज्ञानुसार मैंने उस कमरे की दीवारें तथा छत गुलाबी रंग से पुतवा दी थीं, इसके बाद कमरे को शुद्ध जल से धोकर यथासम्भव पवित्र बना दिया था।



तारा यंत्र

कमरे में लकड़ी का दो फुट लम्बा और दो फुट चौड़ा तख्ता रख दिया था जो कि जमीन से छः इंच ऊंचा था, उस पर गुलाबी कपड़ा बिछा दिया था और उसके सामने गुलाबी रंग का ही आसन बिछा दिया था जो कि सूती था, आसन को इस प्रकार से बिछाया था जिससे कि मेरा मुंह उत्तर की ओर हो गया था, मेरे सामने ही लकड़ी का तख्ता था।

आपकी आज्ञानुसार मैंने आधा किलो चावल पहले से ही गुलाबी रंग में रंग कर सुखा दिए थे और इसी प्रकार रुई को भी गुलाबी रंग से रंग सुखा दी थी, इसके बाद जब चावल सूख गए तब उससे उस तख्ते पर चावलों से अष्टदल बनाया और उसके मध्य में एक मोटा मिट्टी का दीपक रख दिया, जिसमें शुद्ध घी भरा हुआ था, दीपक में गुलाबी रंग से रंगी रुई की बाट बनाकर रख दी थी।

अष्ट दल के सामने चावल की सात छोटी-छोटी ढेरियां बना दी थीं और प्रत्येक ढेरी पर एक सुपारी और एक कपूर की टिकिया रख दी थी, गंधक को पीस उसकी ढेरी बनाकर उसके ऊपर दीपक को रख दिया था। दीपक के सामने सात पतासे भी रख दिये थे और सातों ढेरियों पर एक-एक लौंग और इलायची भी रख दी थी।

तख्ते पर एक किनारे पर कलश भी रख दिया था जिसे पहले से ही गुलाबी रंग से रंग दिया था। उसमें गुलाबी जल भर दिया था। इस कलश में आधा किलो के लगभग पानी भर जाता था, कमरे में मैंने जो बल्व लगा रखा था उसे भी गुलाबी रंग से रंग दिया था। कमरे के फर्श को भी मैंने गुलाबी रंग से रंग दिया था।

शुक्ल पक्ष के प्रथम गुरुवार को रात्रि के आठ बजे मैं छत पर गया, स्नान किया, इसके बाद मैंने अपना यज्ञोपवीत बदल दिया जो नया यज्ञोपवीत मैंने धारण किया वह गुलाबी रंग से रंगा हुआ था। फिर पहले से ही गुलाबी रंग से रंगी धोती पहन ली, नीचे कच्छा नहीं पहना था। ऊपर वनियान भी नहीं पहनी थी, केवल एक गुलाबी रंग से रंगी धोती को तह करके ओढ़ ली थी।

ठीक नौ बजे मैं आसन पर बैठ गया जो कि पहले से ही बिछा हुआ था। इस प्रकार मेरा मुंह ऊपर की तरफ हो गया और मेरे सामने तख्ता बिछा हुआ था। कमरे के दरवाजे को मैंने बन्द कर दिया था पर अन्दर से चिटकनी या सांकल नहीं लगाई थी केवल किवाड़ों को उढ़का दिया था।

सर्वप्रथम मैंने उस कलश के पानी से अपने दोनों हाथ धोये और तीन बार आचमन, प्राणायाम किया तथा दाहिने हाथ में जल लेकर संकल्प किया कि आज से चौदह दिन तक नित्य १०१ तारा मंत्र की माला फेरूंगा। यह कार्य नित्य रात्रि के नौ बजे आरम्भ कर दूंगा और जब १०१ मालायें समाप्त होंगी तभी मैं माला को तख्ते पर रखकर इसी आसन पर सो जाऊंगा। दिन में एक समय भोजन करूंगा दिन को नींद नहीं लूंगा। खाट पर नहीं सोऊंगा, न नौकरी पर या व्यापार के काम से कहीं जाऊंगा और न असत्य बोलूंगा। इसके साथ-ही-साथ मैं इस अनुष्ठान के दौरान किसी प्रकार का लेनदेन या व्यापारिक कार्य भी नहीं करूंगा तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहूंगा। यह अनुष्ठान मैं तारा महाविद्या को सिद्ध करने के लिए कर रहा हूं।

इसके बाद मैंने सुखासन में बैठ अपनी कमर को सीधी रखकर स्थिर दृष्टि से देखता हुआ तारा मंत्र का जप आरम्भ किया; मेरे मुंह से बहुत ही धीमे-धीमे केवल

होठों-ही-होठों में मन्त्र की ध्वनि हो रही थी, आपने मुझे निम्न मंत्र बताया था जिसे मैंने निरन्तर जप किया था और नित्य १०१ मालायें पूरी की थीं। एक माला में १०८ मनके थे और मैंने रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया था, मंत्र—'ओम् तारा तूरी स्वाहा' का जप निरन्तर कर रहा था।

पहले दिन लगभग चार बजे मैं जप कार्य से निवृत्त हुआ और फिर मैं उसी आसन पर लेट गया, लेटते ही मुझे नींद आ गई, जप को आरम्भ करने से पूर्व मैंने दीपक जला लिया था। जब मैं लेट गया था उसके बाद ही दीपक अपने आप तेल समाप्त होने पर बुझ गया था। मैंने अनुमान से तेल इतना डाल दिया था जिससे कि सुबह ६ बजे तक दीपक जलता रह सके।

इस प्रकार लगभग दस दिन बीत गए, किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं आई, अनुष्ठान निर्विघ्न चल रहा था, परन्तु ग्यारहवें दिन मैं नियमानुसार नौ बजे जप आरम्भ करने बैठा तो ऐसा लगा जैसे मेरे पास में से कोई निकल गया हो। एक सरसराहट-सी अनुभव हुई, मेरा शरीर अचानक रोमांचित-सा हो गया, फिर भी मैं आसन पर बैठा रहा और मन्त्र का जाप करता रहा, परन्तु रात बारह बजे के लगभग एक जोरों का पत्थर किवाड़ से टकराया और बड़े जोर की ध्वनि हुई। मैं बैठा-बैठा हिल गया। मैंने अनुभव किया कि पत्थर की चोट से किवाड़ खुल गया है, इसके बाद तीन-चार और पत्थर जोरों से आकर किवाड़ से टकराये, एक क्षण के लिए मेरे मन में विचार आया कि यदि इतनी जोर का पत्थर मेरे सिर में आकर लग गया तो निश्चय ही मैं समाप्त हो जाऊंगा, क्योंकि किवाड़ तो खुल ही गया है, परन्तु मैंने तुरन्त अपने विचारों को रोका और पूर्ण मानसिक रूप से जप को करता रहा, उस रात्रि को सुबह चार बजे तक पत्थर आ-आकर किवाड़ से टकराते रहे और कमरे में भी पत्थर आये जिसके निशान कमरे के अन्दर सामने की दीवार पर लगे दिखाई दे रहे थे।

प्रातः चार बजे के बाद जप समाप्त कर जब मैं सो गया तब पत्थर आने बन्द हुए, सुबह उठकर जब मैं कमरे से बाहर आया तो लगभग साठ-सत्तर पत्थर किवाड़ के पास पड़े थे और आठ-दस पत्थर कमरे के अन्दर भी आ गये थे, परन्तु किवाड़ पर किसी प्रकार का कोई चिह्न या पत्थर की चोट दिखाई नहीं दी। मैंने नीचे अपनी पत्नी और बड़े पुत्र को पूछा तो उन्होंने भी उत्तर दिया कि रात को हमने किसी प्रकार की कोई आवाज नहीं सुनी। मैं आश्चर्यचकित था क्योंकि जब भी पत्थर किवाड़ से आकर टकराता तो मुझे ऐसा सुनाई पड़ता जैसे पास में ही कोई छोटा-मोटा बम फट गया हो।

बारहवें दिन रात्रि को मैं पुनः साधना कार्य में बैठा तो रात्रि के लगभग ग्यारह बजे मुझे जोरों से प्यास लगी। इससे पहले ऐसी तीव्र प्यास कभी नहीं लगी थी। आपने निर्देश दिया था कि जप प्रारम्भ करने के बाद और जब तक उस दिन का जप समाप्त न हो जाए तब तक आसन से हिलना भी नहीं चाहिए, चाहे प्यास लगे या लघु-

शंका हो, आपकी आज्ञा मुझे स्मरण थी, परन्तु उस दिन प्यास इतनी जोरों से लग रही थी कि मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि यदि मैंने पानी नहीं पिया तो मैं प्यासा ही समाप्त हो जाऊंगा, पर फिर भी मैं आसन पर बैठा रहा, रात्रि को दो बजे मुझे जोरों से बुखार-सा अनुभव हुआ। ऐसा लग रहा था जैसे एक सौ पांच डिग्री बुखार आ गया हो, पर बुखार की अवस्था में भी मैंने अपने आप पर नियन्त्रण बनाये रखा और एक सौ एक मालाएं पूरी करके ही सोया। सुबह जब उठा तो मेरा सिर भारी था और चक्कर आ रहे थे।

तेरहवें दिन की रात्रि को जब मैं साधना में बैठा तो कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई, पर एक बजे के लगभग जोरों से घुंघरुओं की आवाज सुनाई दी, ऐसा लग रहा था जैसे पास में ही मोटे-मोटे घुंघरू बज रहे हों, और कोई घम-घम करता मेरे कमरे में आ रहा है, उसके एक क्षण बाद ही जो दृश्य मैंने देखा तो मेरे मुंह से चीख-सी निकल गई। मेरे सामने एक विशालकाय डाकिन की तरह स्त्री खड़ी थी जिसके लम्बे बाल बिखरे हुए थे, बड़ी-बड़ी लाल आंखें, मुंह से बाहर लम्बे-लम्बे दांत निकले हुए और पूरा शरीर भयानक दिखाई दे रहा था। उसके हाथ में ताजा कटा हुआ सिर था जिसमें से खून निकल रहा था और वह दूसरे हाथ से उस खून को ले लेकर चाट रही थी, कमर पर मोटे-मोटे घुंघरू बंधे हुए थे, और चलने से आवाज आ रही थी। वह आते ही मेरे सामने खड़ी हो गई। मैं उस दृश्य को आज भी कहते हुए रोमांचित हो रहा हूं और भय की एक लहर-सी आज भी पूरे शरीर में दौड़ जाती है, उसके नाखून बढ़े हुए थे और पूरे शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल थे। उसने आते ही मेरे सीने पर पांव रखा और कहा कि आज मुझे तेरा खून भी पीना है, और इतना कह कर वह इस प्रकार से हंसी कि जैसे श्मशान में हड्डियां आपस में टकरा रही हों। उसके शरीर से दुर्गन्ध-सी निकल रही थी, जिसे सहन करना कठिन हो रहा था।

यह आपके चरणों की ही कृपा थी कि मैं ऐसी भयानक स्थिति में भी अपने आपको नियंत्रण में रख सका। यदि मैंने त्राटक का अभ्यास न किया होता तो उस समय मैं निश्चय ही बेहोश हो जाता। मैंने फिर भी अपना जप कार्य चालू रखा। वह प्रातः चार बजे तक मेरे सीने पर पांवों से चोट करती रही और मुझे कुछ ऐसा लग रहा था कि वह मेरे शरीर से मांस नोंच-नोंच कर स्वादपूर्वक खा रही है। मैं स्वयं अपने शरीर के उधड़े हुए चमड़े को अनुभव कर रहा था और जब वह शरीर से मांस नोंचती तो भयानक वेदना का अनुभव होता। चार बजे जब मैंने एक सौ एक वीं माला पूरी की, उस समय तक मैं लगभग बेहोश हो चुका था। बड़ी कठिनाई से मैं अपने आपको होश में रखे हुए था और मंत्र का जप चालू था। उसके बाद मैं वहीं पर लुढ़क गया। जब मेरी आंख खुली तब प्रातः के आठ बजे थे। मैं एकदम से हड़बड़ा कर उठ बैठा, मेरा शरीर पसीने-पसीने हो रहा था, मैंने अपने शरीर पर नजर डाली तो कहीं से भी मांस नुचा हुआ नहीं दिखाई दिया, मेरे मुंह से खुशी की चीख निकलते-निकलते रह गई और मुझे पहली बार अतीव आनन्द हुआ कि मेरा शरीर स्वस्थ है,

और कहीं से भी चमड़ी फटी हुई या मांस नोचा हुआ नहीं है।

दिन भर मुझे हल्का-सा बुखार रहा और भयभीत-सा पड़ा रहा। रात्रि को मैंने जो दृश्य देखा था उसको स्मरण करते ही पूरा शरीर थरथरा उठता था।

चौदहवें दिन की रात्रि को मैं हिम्मत कर स्नान कर पुनः अपने आसन पर बैठ गया, दीपक जलाया और जप कार्य प्रारम्भ कर दिया। रात्रि को लगभग तीन बजे एक अतीव सुन्दरी मेरे पास आकर खड़ी हुई, जिसने गुलाबी कंचुकी और गुलाबी ओढ़ना ओढ़ रखा था, उसके पूरे शरीर से एक अपूर्व सी मादक सुगन्ध आ रही थी, वह मेरे पास आकर घुटने से घुटना मिलाकर बैठ गई। उसकी श्वांस मेरे कन्धे से टकरा रही थी। मैंने एक क्षण के लिए उस तरफ ताका तो मुझे ऐसा लगा जैसे संसार की सबसे सुन्दर स्त्री मेरे पास बैठी हुई है। उम्र लगभग अठारह से बीस वर्ष के बीच थी, मांग में सिन्दूर भरा हुआ था और वह पूरे शरीर पर गहने-पहने हुई थी। वह चुपचाप मेरे पास आकर बैठ गई और मेरी ओर मुस्कराहट के साथ ताकने लगी।

एक बार तो मैं मंत्र भूल-सा गया, परन्तु तुरन्त मैने अपने मन पर नियन्त्रण किया और अपनी आंखें सामने दीवार पर स्थिर कर जप कार्य चालू रखा।

उसने एक दो बार कुछ प्रश्न भी किये, परन्तु मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और अपने जप को चालू रखा। मैंने अनुभव किया कि उसने अपना सिर मेरे कन्धे से लगा दिया है और उसकी मादक मस्त सुगन्ध मेरे पूरे शरीर में बिजली दौड़ा रही है।

लगभग चार बजे मैंने जप कार्य पूरा किया। तब तक वह इसी प्रकार मेरी कमर में हाथ डालकर कन्धे पर सिर टिकाकर बैठी रही। जप कार्य समाप्त कर ज्योंही मैं लेटा वह भी मेरे पास लेट गई। मैं तुरन्त उठकर बैठ गया, तो वह आंखों से कटाक्ष करती मुस्कराती हुई मेरे पास ही बैठ गई।

एक क्षण के बाद उसने पूछा कि तुमने मुझे बुलाया इसलिए मैं आ गई। आपने मुझे क्यों बुलाया है?

मैंने कहा कि आपको इसलिए बुलाया है कि मेरे जीवन में आप सहायक बनी रहें।

उसने पूछा कि मैं मां के रूप में सहायक रहूं या प्रेमिका के रूप में?

मैंने उत्तर दिया कि मां के रूप में मैं आपसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाऊंगा। मैं आपको प्रेयसी रूप में ही प्राप्त करना चाहता हूं। पर उसमें किसी भी प्रकार की वासना न हो।

वह मुस्करा दी, वास्तव में ही वह अत्यन्त सुन्दर थी। इतनी सुन्दर स्त्री इससे पूर्व मैंने अपने जीवन में नहीं देखी थी। उसकी मुस्कराहट में एक अजीब-सा आकर्षण था जो कठोर-से-कठोर साधक को भी गुमराह कर सकता है।

उसने कहा मैं प्रेयसी के रूप में रहने को तैयार हूं पर क्या तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे?

मैंने उत्तर दिया कि वासनात्मक रूप से आपका मेरा सम्बन्ध नहीं रह सकता।

आपकी मैंने साधना की है आप प्रेयसी रूप में मुझे नित्य धनराशि प्रदान करें जिससे कि मैं अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कर सकूं।

उसने कहा मैं प्रसन्न हूं और तुम प्रेमी हो अतः तुमने जो कुछ भी मांगा है, मैं उसे पूरा करूंगी, और ऐसा कहती हुई वह मन्द गति से मुस्कराती हुई कमरे से बाहर निकल गई। इससे पूर्व उसने दोनों हाथों से मेरे शरीर को पकड़कर भींच-लिया था, फिर भी मैंने अपने आप पर नियन्त्रण बनाये रखा।

वह चली गई, परन्तु मैं घंटे भर तक सो नहीं सका। उस कमरे में उसके शरीर से निकलने वाली सुगन्ध व्याप्त रही। मैं उसके बारे में ही चिन्तन करता रहा। यह चिन्तन मैं लेटे-लेटे कर रहा था, तभी दीपक तेल न होने के कारण बुझ गया और मुझे नींद आ गई।

सुबह सात बजे मेरी आंख खुली तो मैं उठ बैठा। कमरे में मेरे अलावा और कोई नहीं था, परन्तु जहां मैं सोया था वहां सिर के नीचे सोने का टुकड़ा पड़ा था जो कि लगभग दो तोला वजन का था।

मैंने उस टुकड़े को उठा लिया और नीचे आ गया। इस घटना की चर्चा घर में किसी से नहीं की। स्नान वगैरह करके मैं दोपहर को एक सर्राफ के यहां गया और वह सोने का टुकड़ा उसके सामने रख दिया। उसने जांच कर कहा कि सोना पूर्ण असली है और दो तोला वजन में है। क्या आपको बेचना है ?

मैंने स्वीकृति दी और उसने दो तोला सोने की रकम मुझे थमा दी। मैं घर चला आया।

इसके बाद वह सुन्दरी मुझे पुनः दिखाई नहीं दी, पर अब मैं नित्य नीचे कमरे में अपने पलंग पर सोता हूं तो प्रातः सिरहाने मुझे नित्य दो तोला सोने का टुकड़ा मिल जाता है, ऐसा नियमित रूप से हो रहा है।

मैं नहीं समझता कि मैं अपने कार्य में सफल हुआ हूं या नहीं, परन्तु मुझे आन्तरिक प्रसन्नता अवश्य है और उस सोने के टुकड़े को मैं पांच-छः दिनों के बाद जितने टुकड़े इकट्ठे होते हैं उन्हें ले जाकर बाजार में बेच देता हूं, आपकी कृपा से मेरा सारा कर्जा उतर गया है और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही ज्यादा अनुकूलता अनुभव कर रहा हूं।

मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी 'तारा साधना' सफल हुई है जिसके परिणाम-स्वरूप मुझे आर्थिक लाभ हो रहा है। आपने मुझे बताया था कि जीवन भर इसी प्रकार से आर्थिक लाभ होता रहेगा, इसके लिए मैं आपका अत्यधिक आभारी हूं।

मैं इस बार पुनः जल्दी-से-जल्दी आपके चरणों में आना चाहता हूं और आपके दर्शन से अपने आपको धन्य करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि आपकी तरफ से शीघ्र ही स्वीकृति प्राप्त होगी।

आपका चरण रज,
(वासुदेव शर्मा)

कर्ण पिशाचिनी साधना

परम पूज्य स्वामी जी,

सादर चरण स्पर्श ।

आज पत्र लिखते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि मैंने आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया, जिसके फलस्वरूप मैं अपनी उस इच्छा को पूरी कर सका जो कि मेरे मन में कई वर्षों से थी ।

मैं गृहस्थ नहीं हूं और न जीवन में गृहस्थी बसाने की इच्छा ही रही । मेरा एक ही ध्येय था कि मैं काल ज्ञान के बारे में साधना करूं, मैंने कहीं से यह सुना था कि 'कर्ण पिशाचिनी सिद्धि' से काल ज्ञान हो सकता है, जब मुझे यह ज्ञात हुआ तो मैं साधुओं और संन्यासियों के सम्पर्क में आने लगा । मेरा प्रयत्न शुरू से इस साधना को सीखने का था, परन्तु मुझे कोई ऐसा साधु नहीं मिला जो कि मुझे इस प्रकार का ज्ञान दे सके ।

मैंने मन में यह निश्चय कर लिया था कि यदि जिन्दा रहा तो इस ज्ञान को कहीं-न-कहीं से अवश्य ही सीखूंगा, परन्तु इसके लिये मैं जितना ही अधीर होता उतनी ही ज्यादा परेशानी मिलती । मैं मूलतः ज्योतिषी रहा और ज्योतिष के माध्यम से ही अपना जीविकोपार्जन करता था, परन्तु मुझसे लोग प्रभावित नहीं होते थे, क्योंकि मैं उनके भूतकाल के बारे में कुछ भी बताने में समर्थ नहीं था और भविष्य बताता तो उन्हें विश्वास नहीं होता था, इस प्रकार मैं एक असफल ज्योतिषी बनकर रह गया था ।

तभी मुझे एक साधु से आपके बारे में जानकारी मिली और मैंने आपके पास आने के लिये पत्र लिखा, परन्तु जब मैंने पत्र में इस प्रकार की साधना सीखने की इच्छा प्रकट की तो आपने मुझे अपने सचिव के द्वारा मना लिखवा दिया, इससे मैं निराश अवश्य हुआ, परन्तु उस साधु ने यह कहा था कि यदि तुम बराबर प्रयत्नशील बने रहोगे तो आपका हृदय अवश्य पसीज जायेगा, और आप यह साधना सिखा देंगे ।

संभवतः आपको स्मरण होगा कि जब मैं बिना आपकी अनुमति लिये आपके द्वार पर आया तो आपने बिना मेरा प्रश्न सुने ही कहलवा दिया कि मैं इस प्रकार की साधना नहीं सिखाता ।

आपके नौकर के द्वारा जब यह ज्ञात हुआ तो मैं आश्चर्यचकित रह गया कि

जब मैं श्रीमाली जी से मिला ही नहीं हूं तो उन्हें मेरे बारे में कैसे पता चल गया कि मैं कौन हूं और किस उद्देश्य से यहां आया हूं । आपने स्पष्ट कहलवाया था कि मैं इस प्रकार की कर्ण पिशाचिनी जैसी वाममार्गी साधना नहीं सिखाता ।

मैं निराश होकर धर्मशाला लौट आया, नित्य आपके द्वार पर आता और नित्य मुझे ऐसा ही जवाब सुनने को मिलता, मुझे याद है कि सोलहवें दिन आपसे भेंट हो सकी तो आपने मेरा नाम लेकर कहा कि व्यर्थ में यहां समय वरबाद कर रहे हो, मैंने वाम-मार्गी साधना सिखाना बन्द कर दिया है और तुम्हारी इच्छा कर्ण पिशाचिनी के अलावा और कोई साधना सीखने की नहीं है, इसलिये मैं तुम्हें यह साधना नहीं सिखा सकूंगा ।

मेरी आंखों में आंसू आ गये थे । मैंने अपनी व्यथा आपके सामने रख दी थी, कि मैं किस प्रकार एक सामान्य ज्योतिषी वनकर भूखा मर रहा हूं, लोगों का मुझ पर विश्वास ही नहीं रहा है और ब्राह्मण युवक होते हुए भी मैं भिखारीवत् जीवन व्यतीत कर रहा हूं ।

जहां तक मैं समझता हूं 'ब्राह्मण' शब्द को सुनकर आपका झुकाव किंचित मेरी तरफ हुआ, पर फिर भी आपने मुझे टरकाना ही चाहा और इस उद्देश्य से आपने मुझे कहा कि आज की रात श्मशान में विताकर आओ तो कल बात करूंगा । आपने यह सोच लिया था कि न तो मैं सारी रात श्मशान में रह सकूंगा और न आपको इस संबंध में वाध्य कर सकूंगा ।

पर मेरे मस्तिष्क में तो एक ही धुन थी कि मैं इसी साधना को सीखूंगा, और कहीं से भी मुझे इस प्रकार की साधना सीखने को मिलेगी तो मैं इसे प्राप्त करूंगा ।

उस दिन मैं शाम को ही श्मशान में चला गया था और सारी रात श्मशान के मध्य में बैठा रहा । यद्यपि वह रात कितनी अधिक डरावनी और रोमांच-कारी थी, परन्तु फिर भी आपकी कृपा से मैं सारी रात श्मशान में विता सका, सुवह जब स्नानादि कर प्रातः ग्यारह वजे के लगभग आपकी सेवा में उपस्थित हुआ तो आपने दो क्षण आंखें बंद कर कुछ सोचा और फिर आंखें खोल कर पूछा कि श्मशान में रात विता आये, मैंने हां कहा, इस पर आप किंचित परेशान हो गये ।

मैंने सोचा कि आपके द्वार से खाली हाथ ही नहीं जाऊंगा, पर मेरा मन कह रहा था कि यदि यहां से खाली हाथ चले गए तो अन्य कहीं पर भी इस प्रकार की विद्या सहज ही प्राप्त नहीं हो सकेगी ।

इस प्रकार दस-बारह दिन और बीत गये । आपने मुझे टरकाने के लिये कुछ और भी बातें कहीं पर मैंने आपसे ही सीखने का निश्चय कर लिया था, अन्त में मैंने जब आपसे शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट की तो आपने स्पष्ट शब्दों में मुझे मना कर दिया । मैंने भी यह निश्चय कर लिया था कि आप मुझे शिष्य बनावें या न बनावें यह विद्या आपसे ही मुझे सीखनी है, मेरा मन कह रहा था कि जब आपने मुझे श्मशान में रात बिताने को कहा है तो आप स्वयं सोचेंगे कि इसको सिखाना ही चाहिए अन्यथा

मुझे ऐसा आदेश नहीं देना चाहिए था। इसी आशा से मैं डेढ़ महीने तक जोधपुर में पड़ा रहा और नित्य आपके दरबार में उपस्थित होता और निराश होकर धर्मशाला लौट आता।

मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अब आपको यह नहीं कहूंगा कि आप मुझे कब सिखायेंगे और बिना सीखे घर भी नहीं लौटूंगा, चाहे मुझे साल भर तक जोधपुर में ही क्यों न रहना पड़े।

मैं यह सारी कहानी इसलिये लिख रहा हूं कि आपको शायद मेरा स्मरण आ जाय और कुछ कृपा का प्रसाद मिल जाय। यद्यपि मैं आपका शिष्य नहीं बन सका हूं संभवतः मुझमें इस प्रकार की पात्रता नहीं है या ऐसा मेरा सौभाग्य नहीं है कि आप जैसे समर्थ गुरु का संरक्षण प्राप्त कर सकूं परन्तु फिर भी मैंने, आपको अपना गुरु माना है, मेरे कक्ष में आपका चित्र है और उसी के आधार पर मैं एकलव्य की तरह आपका शिष्य बनकर कार्य कर रहा हूं और भविष्य में भी करूंगा।

जब डेढ़ महीना बीत गया और आपने शायद सोचा कि यह आसानी से टलेगा नहीं तो आपने मुझे कहा कि तुम यदि कर्ण पिशाचिनी साधना ही सीखना चाहते हो तो मैं बता देता हूं, पर यह साधना अपने घर जाकर ही करना, भविष्य में और किसी भी साधना के लिये मुझे मत कहना। क्योंकि मैंने इस प्रकार की साधना के निर्देश देने का विचार छोड़ दिया है। मैं जीवन में मंत्र साधना और दक्षिण मार्गी साधना को आगे बढ़ाना चाहता हूं, वाम मार्गी साधना मेरी रुचि के अनुकूल नहीं है। यद्यपि यह बात सही है कि वाम मार्गी साधना से शीघ्र ही सफलता मिल जाती है, सिद्धि हो जाती है और पूर्णता प्राप्त हो जाती है।

मैं खड़ा रहा। उस समय, मैं क्या कहता जबकि आप मुझे नाराज होकर भी यह साधना दे रहे थे, इसलिये मैं चुप रहा। आपने जिस प्रकार से बताया मैं उसको कागज पर नोट करता रहा, जब आपने पूरी विधि मुझे बता दी तो कठोर शब्दों में आज्ञा दी कि आज ही घर चले जाओ और वहीं पर साधना को सम्पन्न करना तथा भविष्य में इसका किसी भी प्रकार से दुरुपयोग मत करना। मैं जब आपके चरणों की तरफ झुका तो आप दो कदम पीछे हट गये। यह मेरा दुर्भाग्य ही था, परन्तु मुझे विश्वास है आप दयालु हैं और मुझ जैसे अकिंचन पर कभी-न-कभी आपकी कृपा अवश्य होगी।

आपने जिस प्रकार से बताया था उस प्रकार से मैंने घर पर जाकर प्रयोग प्रारंभ किया। आपने मुझे बताया था कि यह केवल तीन दिन का प्रयोग है जो कि किसी भी महीने के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी से प्रारंभ होता है और अमावस्या को समाप्त हो जाता है, परन्तु साधना के इन तीन दिनों की तैयारी के लिये इससे पूर्व दस दिन का अभ्यास करना चाहिए और अमावस्या के बाद भी दस दिन तक इस अभ्यास को नियमित रखना चाहिए।

अतः मैंने आपकी बताई हुई विधि के अनुसार पौष मास की तृतीया से स्नान करना बन्द कर दिया, न तो मैं दातुन करता था, न जीभ या दांत साफ करता, न

स्नान करता और न अपने कपड़े बदलता। आपने मुझे ऐसी स्थिति में बाहर के कार्य करते रहने को कहा था, अतः मैं छोटा-मोटा ज्योतिष का कार्य भी करता रहा, परन्तु लोग मेरे उलझे हुए बाल, पीला और सुस्त चेहरा तथा बिना स्नान किए हुए शरीर को देखकर आश्चर्य करते थे।

आपने जैसा बताया था, मैं सन्ध्या, पूजन, तर्पण, मन्दिर में जाना, गायत्री पाठ, वेदपाठ आदि सभी कार्य बन्द कर दिये थे, क्योंकि आपने मुझे बताया था कि यदि इस प्रकार के कार्य करोगे तो कर्ण पिशाचिनी सिद्धि नहीं हो सकेगी और भविष्य में भी इस प्रकार के कार्य नहीं करने हैं।

जिस बिस्तर पर मैं सोता, प्रातः उस बिस्तर को समेटता नहीं था, इसी प्रकार थाली में भोजन करने के बाद थाली को धोता नहीं था, अपितु शाम को भोजन बनाकर उसी झूठी थाली में खाना लेकर खा लेता था।

इस प्रकार मैं बराबर दस दिन करता रहा, त्रयोदशी के दिन मैंने पतासे में थोड़ा-सा मल लेकर अपने मुंह में डालकर निगल गया, यद्यपि इससे मुझे घृणा तो बहुत हुई, परन्तु मैं हर हालत में इस साधना को वाम-मार्गी तरीके से सम्पन्न करना ही चाहता था। इस प्रकार त्रयोदशी से अमावस्या तक इन तीन दिनों में जब भी भूख लगती पतासे में या किसी अन्य वस्तु में अपना ही मल लेकर निगल जाता और जब प्यास लगती तो अपना ही मूत्र छानकर पी लेता।

त्रयोदशी की रात्रि को मैंने अपने घर के दरवाजे अच्छी तरह से बन्द कर दिये और कमरे में बड़े-बड़े ग्यारह दीपक लगा दिए, प्रत्येक दीपक में आधा किलो से ज्यादा तेल था। इसके बाद मैं ऊनी कम्बल का आसन बिछा दक्षिण की तरफ मुंह कर बैठ गया, इन दस दिनों में स्नान न करने से मेरे शरीर में से दुर्गन्ध आ रही थी, इस दिन प्रातः जो मल हुआ था उसे मैंने भोजन की थाली में ले लिया था और दिन को इसी मल का सेवन किया था, बाद में जो बच गया था वह मैंने रात्रि को ग्यारह बजे सर्वथा नग्न होकर अपने पूरे शरीर पर लेप दिया था, ललाट पर अपने ही मल का तिलक किया था और बालों में भी इस मल को अच्छी तरह से लगा दिया था।

मैं जिस आसन पर बैठा उसके चारों तरफ मैंने दीपक लगा कर उनके मध्य में बैठ गया था, इसके बाद मैंने पहले से ही हड्डियों की माला तैयार करके रखी थी, जो कि मैंने एक दिन रात्रि को श्मशान में जाकर एक कब्र खोदकर उसमें से हड्डियां निकाल कर माला बनाई थी। उस माला में चौवन छोटी-छोटी हड्डियां थीं, इस प्रकार यह चौवन हड्डियों के टुकड़ों की एक माला बन गई थी, इस प्रकार की मैंने दो मालाएं बनाई थीं, जिसमें से एक माला मैंने गले में पहन रखी थी, और एक माला मैंने अपने हाथ में ले रखी थी।

इसके बाद आपने मुझे 'कर्ण पिशाचिनी' मन्त्र जप करनेका निर्देश दिया था, अतः मैंने इसी नग्नावस्था में बैठ कर जप प्रारम्भ किया। आपने जो मुझे मन्त्र सिखाया था वह इस प्रकार था—

'ओम ह्रीं कर्ण पिशाचिनी अमोघ सत्य वादिनी मम कर्णे
अवतर-अवतर सत्यं कथय-कथय अतीत अनागत
वर्तमान दर्शय-दर्शय एं ह्रीं ह्रीं कर्ण पिशाचिनी स्वाहा ।'

इस मन्त्र का मैं निरन्तर जप करता रहा, आपने मुझे बताया था कि एक सौ पन्द्रह मालाएं निरन्तर जप करनी हैं । यदि जप के दौरान लघुशंका हो तो उसी आसन पर लघु शंका कर ली जाय, यदि मल विसर्जन की शंका हो तो उसी आसन पर मल विसर्जन कर लें और मन्त्र पढ़ते-पढ़ते ही उस मल को शरीर पर लेप कर दें । मूत्र को भी बायें हाथ से लेकर अपने शरीर पर छिड़कते रहें ।

मैंने ऐसा अनुभव किया कि जब मैं उस दिन इक्कीस मालाएं पूरी कर चुका तो मुझे जोरों से लघुशंका हुई और जो भी मूत्र हुआ वह मैं बायें हाथ से लेकर अपने मुंह पर और शरीर पर छिड़कता रहा, दाहिने हाथ से मैं अपनी माला को लेकर मन्त्र जाप करता रहा ।

उस रात्रि को कई बार मल और मूत्र विसर्जन हुआ । मैं आश्चर्यचकित था कि इससे पूर्व ऐसा कभी नहीं हुआ था, सारा कमरा दुर्गन्ध से भर गया था । उस कमरे में सांस लेना भी कठिन हो रहा था, फिर भी मैंने एक सौ पन्द्रह मालाएं पूरी कीं, जब जप समाप्त हुआ उस समय प्रातः पांच बज चुके थे ।

जप समाप्त करके मैं आसन से उठा और कमरे में ही सो गया, आपने मुझे निर्देश दिया था कि कमरे में ही रहना है बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है, प्रातः ९ बजे के लगभग मुझे जोरों की भूख लगी और कुछ ऐसा लगा जैसे मैं महीने भर से भूखा हूं और यदि तुरन्त भोजन नहीं किया तो शायद प्राण समाप्त हो जायेंगे, उसी समय मल विसर्जन भी हुआ, उस मल से ही मैंने यथासम्भव क्षुधा और मूत्र से अपनी प्यास को शान्त किया ।

एक क्षण के लिए मेरी आंखों में आंसू आ गए कि आपने मुझे मना किया था, वह ठीक था । आपकी आज्ञा मान लेता तो मुझे इतना पतित नहीं होना पड़ता, मेरा ब्राह्मणत्व समाप्त हो गया था और मैं एक पिशाच की तरह उस कमरे में बैठा हुआ था ।

चतुर्दशी की दोपहर को मैं उसी कमरे में लेटा हुआ था । जमीन पर कोई वस्त्र बिछा हुआ नहीं था । मैं सर्वथा नग्न था तभी धीरे से दरवाजा खुला, कुछ ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि कोई कमरे के अन्दर आया हो, जबकि मैंने मुख्य द्वार का दरवाजा पूरी तरह से बन्द कर रखा था और अन्य कोई दरवाजा ऐसा नही था जिससे कि कोई अन्दर आ सके ।

मैं सजग था, मेरी आंखें खुली हुई थीं, प्रमाण प्राप्त करने के लिए अपने हाथ से शरीर पर चिकोटी भी काटी तो मुझे दर्द-सा हुआ, अतः यह स्पष्ट था कि मैं सजग था । मैंने देखा कि एक स्त्री कमरे में आई है जो कि सर्वथा नग्न है, उसकी आयु पच्चीस से तीस वर्ष के लगभग होगी । दिखने में वह मध्यम स्तर की सुन्दरी लग

रही थी। वह मेरे पास आकर मेरे साथ लेट गई। मैं उसे देखकर हड़बड़ा गया और उठ बैठा तो उसने जबरदस्ती से मुझे पुनः अपने साथ लिटा लिया और धीरे-धीरे मेरे गुप्तांग पर हाथ फेरने लगी।

मैं हतप्रभ था, किंकर्त्तव्यविमूढ़ था कि क्या करूं और क्या न करूं ? मेरे मन में एक अजीब-सा भय व्याप्त हो गया था। उस तरफ देखने का साहस नहीं जुटा पा रहा था, परन्तु वह बिना हिचकिचाहट निर्लज्ज-सी मेरे गुप्तांग पर हाथ फेरती रही और मुझे काम करने के लिए प्रेरित करती रही, परन्तु सम्भोग नहीं हुआ और लगभग पांच बजे वह मेरे पास से उठकर अदृश्य हो गई।

मैं पस्त-सा हो गया था और निश्चय कर लिया था कि इस साधना को छोड़ दूं, परन्तु आपने मुझे बता दिया था कि यदि साधना प्रारम्भ करने के बाद बीच में छोड़ दी तो वह पिशाचिनी तुम्हें उसी समय समाप्त कर देगी। इस साधना में या तो सफलता ही मिलती है या मृत्यु ही प्राप्त होती है।

मैं उठ बैठा, कमरे में कई बार मल मूत्र होने से एक अजीब-सी दुर्गन्ध भर गई थी जिससे मेरा माथा फट रहा था, परन्तु मैं कमरे में पड़ा रहा। रात्रि को लगभग ग्यारह बजे मैं पुनः सभी दीपक जला आसन पर बैठ गया और पहले दिन की तरह ही मन्त्र जप प्रारम्भ किया। मेरी रुचि इस साधना में समाप्त हो गई थी और मैं जो कुछ कर रहा था बेमन से कर रहा था। मेरी राय है कि किसी भी व्यक्ति को इस प्रकार की साधना वाममार्गी तरीके से सम्पन्न नहीं करनी चाहिए, अघोरी ही इस कार्य को कर सकते हैं।

खैर, मेरा जप निरन्तर चालू रहा, पर घण्टे भर बाद ही वही स्त्री मेरे पास आकर बैठ गई जो दोपहर को मेरे साथ आकर लेटी थी, उसके दांत बाहर निकले हुए थे, सिर पर छोटे-छोटे बाल थे, बालों में सिन्दूर भरा हुआ था और गले में हड्डियों की माला पहने हुई थी, इसके अलावा वह पूरी तरह से निर्वस्त्र थी।

वह पास में बैठकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी और वह मेरे गुप्तांग के साथ बराबर खेल कर रही थी। कभी वह उस पर हाथ फेरती, कभी मेरा चुम्बन ले लेती और कभी मेरी कमर में हाथ डाल देती, मैं पसीने-पसीने हो रहा था, परन्तु फिर भी मेरा मन्त्र जप चालू था। इस बीच पांच-छः बार मल-मूत्र विसर्जन हुआ तो उस स्त्री ने ही लेकर मेरे शरीर पर और अपने शरीर पर चुपड़ दिया। इस प्रकार प्रातः पांच बजे तक वह मेरे पास बठी रही और जप समाप्त होते ही उठकर दरवाजे के बाहर निकल गई।

मैं आसन से उठकर पास ही कमरे में लेट गया। मैं इस माहौल में लगभग अर्द्ध विक्षिप्त-सा हो गया था। मैंने इस साधना को समाप्त करने की सोच ली थी, परन्तु मृत्युभय से मैं ऐसा नहीं कर सका।

अमावस्या के दिन मैं कमरे में लेटा रहा। लगभग बारह बजे वह स्त्री पुनः आकर मेरे पास लेट गई। उसे लेटते देख कर मैं उठ कर खड़ा हो गया तो उसने उठ

कर मेरी कमर में जोरों से लात मारी और मुझे साथ ही लेटने पर विवश कर दिया, आज उसने मेरे शरीर के साथ कई बार खिलवाड़ की और सम्भोग के लिए भी प्रेरित किया। लगभग तीन बजे उसने जबरदस्ती से सम्भोग किया और सम्भोग समाप्त होते ही वह उठकर कमरे से बाहर निकल गई। मैं भय, पश्चात्ताप और ग्लानि से दुखी हो रहा था।

मैं इसी प्रकार कमरे में पड़ा रहा। ऐसा लगा जैसे मैं एक भयानक षड्यन्त्र में फंस गया हूं और निकलने का कोई चारा नहीं है। रात्रि के लगभग ग्यारह बजे मैं अत्यन्त बेमन से उठकर आसन पर बैठ गया और चारों तरफ दीपक लगा दिए। आज का माहौल मुझे अत्यन्त डरावना और वीभत्स लग रहा था, कमरा दुर्गन्ध से भर गया था, मेरा शरीर मल-मूत्र से सना हुआ था, और दिमाग की नसें दुर्गन्ध के मारे फट रही थीं।

जप प्रारम्भ होते ही वह स्त्री कमरे में आ गई और आकर सीधे ही मेरी गोदी में वैठ गई, उसने अपना दाहिना हाथ मेरे गले में डाल दिया।

मैं चुपचाप मंत्र जप करता रहा और वह वहीं पर मल विसर्जन करती रही और वह अपने हाथ से अपने मल और मूत्र को मेरे शरीर पर लेपती रही, रात्रि के लगभग पांच बजे वह गोदी से अलग हुई और मेरे सामने नग्नावस्था में बैठ गई, जप समाप्त हुआ तो वह हड्डियों की माला पास में रख दी।

उसने कहा मैं ही तुम्हारी प्रियतमा हूं और अब जिन्दगी भर तुम्हारे साथ रहूंगी और तुम्हारा कार्य करूंगी, पर यदि तुमने मुझे कभी छोड़ना चाहा तो मैं तुम्हें समाप्त कर दूंगी, ऐसा कहते-कहते उसने अपने गले में जो हड्डियों की माला पहने हुए थी, वह मेरे गले में पहना दी और मेरे गले में जो हड्डियों की माला थी वह निकालकर अपने गले में डाल ली, और नववधू की तरह मुस्कराने लगी।

मैं चुप रहा तो उसने कहा शर्माने की जरूरत नहीं है, तुमने मुझे सिद्ध किया है तो अब मैं जीवन भर तुम्हारे साथ रहूंगी ही, और जब भी मुझे सम्भोग की इच्छा होगी तो तुम्हारे पास आऊंगी और तुम्हें मेरी इच्छा पूरी करनी पड़ेगी।

तुम जो कुछ भी प्रश्न पूछोगे तुम्हारे कान में मैं कह दूंगी, मगर मेरे बारे में अन्य किसी को कहा तो तुम्हारा गला घोंट दूंगी। साथ ही मुझसे पिण्ड छुड़ाना चाहा तो तुम्हें मारकर मुझे प्रसन्नता ही होगी, ऐसा कहकर वह मेरे गुप्तांग पर चुम्बन लेती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

काश ! मैं इस प्रकार की साधना न करता तो ज्यादा अच्छा रहता, पर अब मैं इस साधना को कर चुका था अतः मैं पीछे भी नहीं हट सकता था, आपने तो मुझे बहुत मना किया था परन्तु यह दण्ड मेरी जिद्द के कारण ही मुझे भोगना पड़ रहा है।

आपने जो विधि बताई थी उसके अनुसार मैंने प्रतिपदा को प्रातः उठकर स्नान किया, परन्तु दांतों को साफ नहीं किया, दीपक उठाकर घर के बाहर दक्षिण की तरफ जमीन में गाड़ दिये और उन दीपकों के साथ ही उस हड्डियों की माला को भी

जमीन में गाड़ दिया, इसके बाद पूरे कमरे को साफ किया और शुद्ध जल से दो तीन बार धोया, फिर मैंने पुनः स्नान कर कपड़े धारण कर लिये।

इस प्रकार प्रतिपदा से दसवीं तक मैं घर में ही रहा। बाहर नहीं निकला, पर प्रतिपदा के बाद दसवीं तक पुनः स्नान नहीं किया, और न कपड़े ही बदले, साथ ही मैं भूख लगने पर नित्य थोड़ा-थोड़ा मल लेता रहा, प्यास लगने पर अपना ही मूत्र पी लेता था।

शुक्ल पक्ष की दसवीं को यह अनुष्ठान समाप्त हुआ और एकादशी को मैंने पुनः स्नान किया, साबुन लगाकर भली प्रकार से शरीर को साफ किया, कपड़े भी बदले और दाँतों को तथा जीभ को भी साफ किया, उसने जो मुझे हड्डियों की माला पहनाई थी वह मैंने अपने गले में पहिने रखी।

इस अनुष्ठान को सम्पन्न हुए दो महीने बीते गये हैं, परन्तु मैं अन्दर-ही-अन्दर पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूं, क्योंकि अब मैं न तो गायत्री मंत्र का उच्चारण कर सकता हूं और न किसी अन्य देवी देवताओं की पूजा या पाठ कर पाता हूं।

पर इससे आर्थिक वृद्धि असाधारण रूप से हुई है, पिशाचिनी घेर घारकर लोगों को मेरे घर की तरफ ठेलती है और नित्य सौ से ज्यादा लोग मुझे मिलने के लिये आ जाते हैं, उनको सामने देखते ही उनके भूतकाल की कई घटनाएँ मेरे सामने आ जाती हैं। जब वे अपने भूतकाल की कोई बात पूछते हैं तो मेरे कानों में उसका उत्तर पिशाचिनी कह देती है और जब मैं वही बात सामने वाले व्यक्ति को कहता हूं तो वह आश्चर्यचकित हो जाता है और अपना सिर मेरे पैरों में रख देता है।

इसके बाद जब वह व्यक्ति भविष्यकाल से संबंधित प्रश्न पूछता है तो उसका उत्तर पिशाचिनी नहीं दे पाती, तब मैं अपने मन से कुछ भी कह देता हूं पर वह पूरा विश्वास कर लेता है, क्योंकि उसने भूतकाल की जो बात पूछी थी वह सही-सही बता दी थी इसीलिये वह प्रभावित रहता।

कुछ व्यक्तियों ने मेरी परीक्षा भी ली और मैं उसमें भी सफल रहा। एक बार बाहर से एक सेठ आये जिसके तीन पुत्र थे, पर उन्होंने कई लोगों के सामने मुझे प्रश्न पूछा कि पण्डितजी मेरे अभी तक सन्तान नहीं हुई है, कब होगी ?

तुरन्त ही मेरे कानों में सुनाई दिया कि इसके तीन पुत्र हैं। तीनों के नाम ये हैं—उनकी उम्र उनकी आदतों तथा उनके और सेठजी के सम्बन्धों के बारे में भी मेरे कानों में ध्वनि आ गई थी।

मैंने जब ये बातें उस सेठ को एक विशेष मुद्रा बनाकर कहीं तो वह आश्चर्यचकित रह गया और मुझे संसार का सर्वश्रेष्ठ भविष्यवक्ता मान बैठा और सबके सामने मेरे चरणों में सिर रख पांच हजार रुपये भेंट कर दिये, फिर उसने भविष्यकाल से संबंधित प्रश्न पूछा तो मैंने कुछ भी कह दिया पर वह पूरी तरह से आश्वस्त था, अतः उसने इन बातों को भी सही मान लिया, उसने मुझे अपने घर भी चलने के लिये प्रेरित किया और कहा कि आप लक्ष्मी वृद्धि के लिये अनुष्ठान करें, आप महान् विद्वान् हैं, यदि एक

लाख भी खर्च होगा तो मैं करूंगा, मैंने हां भर ली, यद्यपि मुझे अनुष्ठान नहीं आता है परन्तु वह मुझसे प्रभावित है और मेरे कहने पर वह खर्च करने को तैयार है।

इस प्रकार नित्य तीन चार हजार की आय हो गई है, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता बढ़ती जा रही है, परन्तु मैं अन्दर-ही-अन्दर खोखला होता जा रहा हूं, मेरे जीवन की सारी खुशियां छिन गई हैं, वह पिशाचिनी पन्द्रह बीस दिनों के बाद रात्रि को आती है और जबरदस्ती से मेरे साथ सम्भोग करके चली जाती है, मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं इससे पिण्ड नहीं छुड़ा पाऊंगा।

मैं संसार की दृष्टि से सफल हूं, सम्पन्न हूं, विद्वान् और त्रिकालज्ञ हूं, बड़े से बड़ा सेठ मेरे सामने गिड़गिड़ाता है इससे मेरे 'अहं' की तुष्टि होती है, परन्तु फिर भी मैं मन से प्रसन्न नहीं हूं। चित्त में शान्ति नहीं है और जीवन में किसी प्रकार का उमंग या उत्साह नहीं रह गया है।

मैं समझ गया कि आपने मुझे शिष्य क्यों नहीं बनाया, आपने मुझे क्यों फटकारा था, इस साधना को करने के लिये बार-बार क्यों मना किया था, यह अब मेरी समझ में आया है, मैं वास्तव में ही अधम और पापी हूं, ब्राह्मण न रहकर कसाई-सा हो गया हूं अतः इन अपवित्र होंठों से आप जैसे महापुरुष का नाम लेना भी मैं पाप समझता हूं।

पर, आप दयालु हैं, कई प्रकार की सिद्धियों के स्वामी हैं, मैं दीन-हीन आपके चरणों की रज हूं, मेरी एक विनती है कि आप कोई ऐसा तरीका बताइये जिससे कि मैं इससे मुक्ति पा सकूं। मैं इस साधना से पूर्व जैसा था उसमें ज्यादा सुखी था, मैं वापस वैसा ही बनना चाहता हूं, इस पिशाचिनी से मुक्ति चाहता हूं और यह मुक्ति आपके अलावा और कोई नहीं दे सकता।

मेरा प्रत्येक क्षण दुखमय बन गया है। हर क्षण उसके आने की आशंका रहती है और उससे सम्भोग से मेरा शरीर पस्त हो जाता है और ऐसा लगता है जैसे शरीर का खून निचुड़ गया हो, इस ग्लानि में शायद मैं ज्यादा जी भी नहीं सकूंगा और मरने के बाद भी मेरी आत्मा भटकती ही रहेगी।

यह पत्र दुखी हृदय से लिख रहा हूं, पूरा पत्र रोते सिसकते हुए लिखा है, मैं एक बार—केवल एक बार आपके द्वार पर भिखारी के रूप में आना चाहता हूं, केवल इसलिये कि आप मुझे इस साधना से मुक्ति दिला सकें। कोई ऐसी विधि बतायें जिससे कि मैं इस सिद्धि से मुक्ति पा सकूं और सामान्य मानव बन सकूं।

मैं आपका कोई हित नहीं कर सका हूं। मैं किसी भी योग्य नहीं हूं, मैं आपका शिष्य कहलाने के काबिल नहीं हूं, पर फिर भी ब्राह्मण हूं और आप ब्राह्मणों पर कृपा करने वाले हैं इससे भी ज्यादा आपमें मानवता है, दया है, शक्ति है, और ऐसी सिद्धियां हैं जिससे आप मुझे वापिस मानव बना सकते हैं, यदि आप ऐसा कर सकेंगे तो मेरा सारा जीवन आपका कृतज्ञ रहेगा और मेरा रोम-रोम आपके उपकारों से ऋणी रहेगा।

अकिंचन
(मधुसूदन शर्मा)

अष्ट लक्ष्मी साधना

आदरणीय पण्डितजी,

सादर पाय लागन।

आपको जब यह पत्र लिख रहा हूं तो हृदय में एक आनन्द की अनुभूति हो रही है, ऐसा लगता है जैसे मैं अपने जीवनदाता को पत्र लिख रहा होऊं, और यह बात सही भी है क्योंकि आपने मुझे ही नहीं, मेरे पूरे परिवार को जीवनदान दिया है। मैं और मेरा परिवार तो एक प्रकार से मृतक प्रायः हो गया था, परन्तु शायद हमारे पूर्वजों का पुण्य बाकी था जिससे कि मेरा आप जैसे दिव्य पुरुष से सम्पर्क हो सका और वापिस जीवन दान प्राप्त हो सका

आप अत्यधिक व्यस्त हैं, और आपके जीवन का प्रत्येक क्षण कीमती और सार्वजनिक हो गया है, दिल्ली में आपके आने पर मैंने उमड़ती हुई भीड़ को देखा है और उन लोगों के मन में आपसे मिलने की जो चाह और तड़फ होती है उसको मैंने अनुभव किया है, मेरी इच्छा बराबर यह रहती है कि मैं आपसे हर महीने भेंट करूं परन्तु आप जैसे महापुरुष का दर्शन इतना जल्दी हो जाय ऐसा हमारे भाग्य में कहां है?

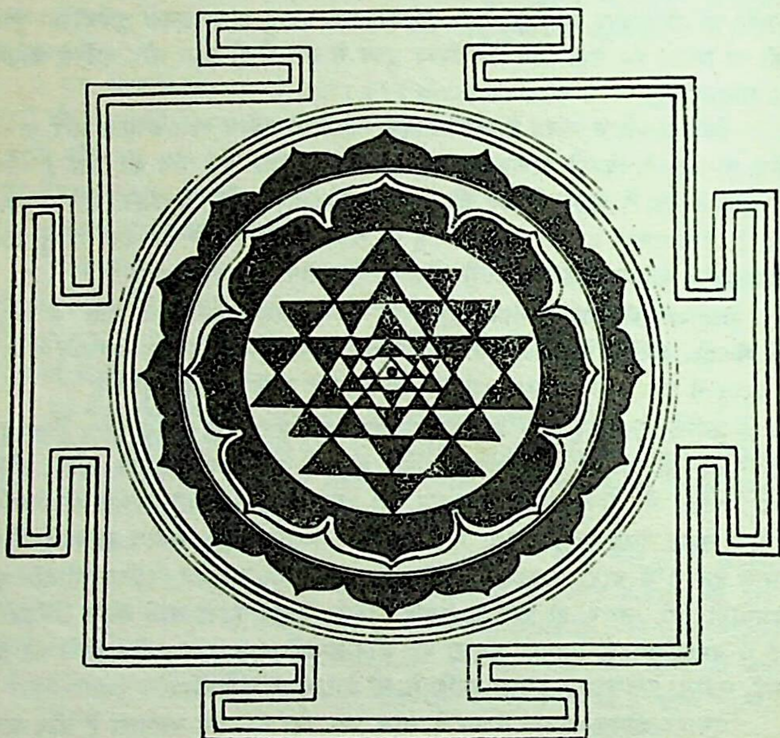
यह बात मैं इसलिए लिख रहा हूं कि आपके पास सैकड़ों पत्र आते हैं और नित्य सैकड़ों व्यक्तियों से भेंट करते हैं, इसलिए शायद हमारा स्मरण आपको न रहा हो, परन्तु मैं और मेरा परिवार आपको एक क्षण के लिए भी नहीं भूला है।

हम चार भाई हैं और पीढ़ियों से हमारे यहां जवाहरात का व्यापार होता है। हमारे पूर्वज इस व्यापार में अत्यधिक प्रसिद्ध थे और उन्होंने जो सम्मान और गौरव अपनी जाति में प्राप्त किया वह दुर्लभ है। हमने अपने परिवार में जब आंख खोली तो चारों तरफ वैभव बिखरा हुआ था, हमारा लालन-पालन अत्यन्त ही शान-शौकत के साथ हुआ। मैं चारों भाइयों में सबसे बड़ा हूं और इसलिए परिवार की पूरी जिम्मेवारी मेरे ऊपर ही रही है, यद्यपि दिल्ली में हम चारों भाई अलग कोठियों में रहते थे परन्तु हमारा व्यापार संयुक्त था और हमारी मुख्य दुकान दिल्ली में थी तथा बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, न्यूयार्क आदि में भी हमारी दुकानें थीं।

हमारा जीवन अत्यन्त वैभव के साथ चल रहा था, हम अग्रवाल हैं और लक्ष्मी पुत्र हैं, हमारे जीवन और प्रतिष्ठा का मुख्य आधार लक्ष्मी ही है, परन्तु एक समय

ऐसा आया कि हम निरन्तर नुकसान में होते गए और जितना अधिक प्रयत्न करते, उतना ही ज्यादा नुकसान होता गया । इस प्रकार नुकसान सहन करते गए, परन्तु इस प्रकार स्थिति होते-होते एक दिन ऐसा भी आ गया जब हमें महसूस हुआ कि हम इतने अधिक घाटे में जा रहे हैं कि यदि कुछ उपाय नहीं किया तो शायद दिवालिया बनना पड़ सकता है ।

हमने अपने खर्चे घटा लिए, पूरे परिवार में व्यक्तिगत कार्य के लिए बीस-बाईस कारें थीं वे बेच दीं, और एक कार रही, सैकड़ों नौकर-चाकर हटा देने पड़े, मुनीम



श्रीयंत्र

धीरे-धीरे किनारा करते गए, और मजबूरी से हमें कलकत्ता की दुकान बन्द कर देनी पड़ी, इसके बाद मद्रास की दुकान बन्द हो गई, चार महीने बाद हमें बम्बई की दुकान को भी बन्द करने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार हमारे पूरे परिवार में केवल एक दिल्ली की दुकान ही बाकी रही, परन्तु फिर भी दुर्भाग्य ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा और एक ही सौदे में चालीस लाख का घाटा खाना पड़ा, फलस्वरूप हमें तीन कोठियां गिरवी रख देनी पड़ीं, मेरा दिमाग खराब हो रहा था, मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूं, जितना ही ज्यादा हाथ पैर मार रहा था उतनी ही ज्यादा असफलता हाथ लग रही थी।

इसी बीच एक प्रसिद्ध महाराजा के जवाहरात बिकने की बात सुनायी दी, मैं वहां गया और उन जवाहरातों को अपनी दोनों कोठियां गिरवी रखकर खरीद लिया, परन्तु तीसरे दिन ही उन जवाहरातों की चोरी हो गई, यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा आघात था और उसने मुझे खाट पर पटक दिया।



कनरधारा देवी

इस प्रकार दो वर्षों में मैं धनपति से कर्जदार हो गया। मेरी चारों कोठियां गिरवी रख दी गई थीं, हम चारों भाई एक छोटे से मकान में किरायेदार बन कर रहने लगे थे, एकमात्र कार भी बिक गई थी और एक दिन जब हमने हिसाब लगाया तो ज्ञात हुआ कि हम पर कुल मिलाकर एक करोड़ का कर्जा है।

जिस प्रकार से स्थिति चल रही थी उस हिसाब से हम एक लाख एक हजार भी देने की स्थिति में नहीं थे, मेरी आंखों के आगे अंधेरा-सा छा गया। परिवार दयनीय स्थिति में आ गया था, समाज में हमारी प्रतिष्ठा कमजोर हो गई थी, हम झूठी शान-शौकत भी नहीं रख पा रहे थे, हम चारों उस दुकान पर बैठते, दुकान में कुछ माल ही नहीं था तो फिर ग्राहक क्या आते, इस प्रकार धीरे-धीरे मैं बीमार पड़ने लगा और मुझे पहला 'हार्ट अटैक' हुआ जिससे मैं मरते-मरते बचा।

इन दो वर्षों में मैं सैकड़ों ज्योतिषियों, तांत्रिकों, मांत्रिकों आदि के पास गया और उन्होंने जो कुछ कहा वह मैंने किया, परन्तु कोई भी स्थिति सुधार नहीं सका। मैं निरन्तर कर्जे में डूबता गया और एक दिन मैंने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया।

आप विचार कर सकते हैं कि ऐसा कठोर निर्णय मैंने कितने दुखी मन से लिया होगा। उस दिन बाजार जाकर मैं नींद की गोलियां ले आया, अपने परिवार के नाम एक पत्र लिखा जिसमें इस दुखद स्थिति की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली और उन सबसे क्षमा याचना की, एक पत्र मैंने अपनी पत्नी के नाम लिखा जिसमें मैंने इस गरीबी की स्थिति का जिम्मेवार अपने आप को ठहराया, क्योंकि घर में बड़ा मैं ही था अतः निर्णय भी मैं ही लेता था और मेरे ही निर्णयों से परिवार इस स्थिति तक पहुंचा था।

मैंने दोनों पत्र सिरहाने रखकर शाम को सभी बच्चों को प्यार कर भाइयों से जी भर कर मिल कर अपने कमरे में आ कर सो गया और नींद की पन्द्रह से ज्यादा गोलियां खा लीं। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि यह रात मेरी अन्तिम रात है।

परन्तु दुर्भाग्य मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा था। रात के तीन बजे मेरी आंखें पथरा गईं, गले में खरास पैदा हो गई और घरघराहट की ध्वनि से पूरा परिवार जाग गया, उसी समय मुझे उल्टी हो गई और मैं चाहते हुए भी नहीं मर सका। मुझे मजबूरी से दूसरे दिन का सूर्य देखना पड़ गया, पर मेरी इस घटना से पूरा परिवार आशंकित हो गया और सभी अपने ऊपर मौत को मंडराते हुए देखने लगे।

दूसरे ही दिन संयोग से हमारे किसी समय रहे हुए श्री मूलचन्द दलाल आये, वे केवल मिलने के लिए ही आये थे। उन्होंने पांच साल पहले दलाली का कार्य छोड़ दिया था और बम्बई में अपनी स्वयं की दुकान खोल दी थी, वे किसी कारणवश दिल्ली आये थे। हमारे घर की स्थिति थोड़े-बहुत रूप में उन्हें मालूम थी, पर उस दिन जब मेरे घर आये और मेरी स्थिति को देखा तो वे अनुभवी होने के कारण सब कुछ भांप गये, उन्होंने मुझे बताया कि आप घबरावें नहीं और एक बार जोधपुर जाकर पण्डित जी से सम्पर्क स्थापित करें, केवल मात्र वे ही आपको इस विपत्ति से छुटकारा दिला सकते हैं या कोई रास्ता दिखा सकते हैं।

पर मैं पूरी तरह से टूट गया था, मुझे किसी भी ज्योतिषी या तंत्र-मंत्र पर भरोसा नहीं रहा था, पर जब उन्होंने बहुत हठ किया और बताया कि मैं जो कुछ बन सका हूं वह उनकी ही कृपा से बन सका हूं, दलाली का कार्य छोड़ने के बाद मैंने उनकी सलाह के अनुसार ही अपनी दुकान खोली थी और आज मैं जो कुछ हूं इसमें उनका बहुत बड़ा योगदान है, अतः आप एक बार उनकी राय अवश्य ले लें। यदि आप कहें तो मैं आपके साथ चलने के लिए तैयार हूं।

एक सप्ताह बाद जब मैं कुछ स्वस्थ हुआ तो उस दलाल को साथ लेकर मैं जोधपुर आपके निवास स्थान पर पहुंचा। वह दलाल जो कि उस समय तक एक सफल धनपति बन चुका था आपसे परिचित था, अतः उसके आग्रह से आपसे मिलने का

सौभाग्य प्राप्त हुआ, मैंने आपके सामने अपनी सारी कहानी सुना दी, आप चुपचाप सुनते रहे।

मैंने अपने जीवन के वैभव का भी सही वर्णन किया था और आपके मिलने के समय मैं जिस स्थिति में था उसका सही-सही सत्य विवरण आपके सामने प्रस्तुत कर दिया था, शायद आप मेरी सत्यता से पसीज गए थे, या मेरा समय अच्छा आने वाला था अतः आपने मुझे सान्त्वना दी और बताया कि 'अष्ट लक्ष्मी साधना' से आप वापिस उसी स्तर पर पहुंच सकते हैं जिस स्तर पर आप थे।

मुझे आपके कथन पर बिल्कुल विश्वास नहीं हुआ था, परन्तु आपका व्यक्तित्व मुझे प्रभावित कर रहा था और मेरा अन्तरमन इस बात की साक्षी दे रहा था कि यदि कल्याण हो सकता है तो केवल इसी व्यक्ति के द्वारा ही संभव है अन्य कोई उपाय नहीं है। मैं जिस समय आपसे मिला था, उस समय आश्विन महीना चल रहा था, आपने कहा कि दीपावली पर मैं तुम्हारे लिए अष्ट लक्ष्मी साधना करवा सकता हूं और मुझे विश्वास है आने वाले समय में आप पुनः श्रेष्ठ स्थिति पर पहुंच सकेंगे।

आपके कथन पर मेरे साथ आये दलाल को बहुत अधिक विश्वास था, अतः उसने निवेदन किया कि आप इनके लिए 'अष्ट लक्ष्मी साधना' यहीं जोधपुर में ही सम्पन्न करा लें। ये पति-पत्नी उसमें भाग लेने के लिए यहीं पर आ जायेंगे। यद्यपि आप उस समय अधिक व्यस्त थे, परन्तु हमारे अनुरोध को आपने मान लिया था, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। आपने यह भी कहा था कि साधना में पति-पत्नी भाग लें यह अनिवार्य नहीं है, परन्तु मैंने मन में सोचा कि यदि दिल्ली में कुछ दिन और रहा तो शायद पागल हो जाऊंगा, इसकी अपेक्षा तो कुछ दिन जोधपुर में ही बिता दिए जांय। आपने जो व्यय बताया था मेरे पास तो उसका सौवां हिस्सा भी नहीं था, परंतु दलाल श्री मूलचन्द जी को आप पर अत्यधिक विश्वास था अतः उन्होंने सारा खर्चा सहन करने का निश्चय किया।

आपने अपने कार्यक्रम को देख कर नवरात्रि में ही इस अनुष्ठान को सम्पन्न करने की स्वीकृति दी, फलस्वरूप मैं तीसरे ही दिन अपनी पत्नी के साथ जोधपुर आ गया था, मूलचन्द जी भी एक दिन के लिए बम्बई जाकर लौट आये थे।

मैंने मन-ही-मन सोचा कि पण्डितजी जो भी अनुष्ठान करायेंगे उसे मैं अपनी डायरी में नोट करता रहूंगा, यदि यह सफल हो गया तो यह आलेख मेरी पीढ़ियों के लिए लाभदायक ही रहेगा।

आपने आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से इस अनुष्ठान को प्रारम्भ किया। जहां तक मुझे स्मरण है ग्यारह पण्डितों ने इसमें भाग लिया था, मैंने जब आपसे अष्ट लक्ष्मी के बारे में पूछा था तो आपने बताया था कि लक्ष्मी प्राप्ति और स्थायी लक्ष्मी के लिए अष्ट लक्ष्मी साधना सर्वश्रेष्ठ है। इसमें (१) धन लक्ष्मी (२) धरा लक्ष्मी (३) वाहन लक्ष्मी (४) यश लक्ष्मी (५) व्यापार लक्ष्मी (६) आयु लक्ष्मी (७) सन्तान लक्ष्मी (८) दारिद्रय विनाशक अखण्ड लक्ष्मी, इन अष्ट लक्ष्मियों की पूजा होती है और

इनसे सबंधित साधना सम्पन्न होती है, जिससे कि जीवन में किसी भी प्रकार का अभाव न रहे।

आपने ग्यारह कलश स्थापन किये थे और आठ तख्ते बिछाकर उन पर आठ यंत्र चावलों से बनाये थे जो कि निम्न प्रकार थे :

१. लक्ष्मी यंत्र, २. श्री यंत्र, ३. कनकधारा यंत्र, ४. ऐश्वर्य यंत्र, ५. वरदा यंत्र, ६. स्थायित्व यंत्र, ७. घंटाकरण यंत्र, ८. कुबेर यंत्र।

इन आठों यंत्रों पर क्रमश: अष्ट लक्ष्मी की अलग-अलग चांदी की प्रतिमाएं बनाकर स्थापित की थीं, और प्रत्येक यंत्र की विस्तार से पूजा की थी, इसके साथ-ही-साथ आपने प्रत्येक यंत्र को स्फुरण कर मंत्र सिद्ध प्राण प्रतिष्ठा युक्त बनाया था। आपने प्रत्येक पण्डित को अलग-अलग मंत्र जपने के लिए दिया था, और तीन पण्डितों को कनकधारा मंत्र जपने की आज्ञा दी थी। मैं उन पण्डितों के पास बैठा था और उनसे कनकधारा विनियोग ध्यान और मंत्र नोट कर लिया था।

कनकधारा संकल्प

ओम् विष्णु-विष्णु तत्षद० मम सकल विघ विजय श्री सुख शान्ति, धन धान्य, यश, पुत्र पौत्रादि प्राप्तये स्मज्जन्म जन्मान्तरीय कुलार्जित संचित महादु:ख दारिद्रय-तादि शान्तये व कनकधारा यंत्र पूजन महं करिष्ये॥

कनकधारा विनियोग

ओम् अस्य श्री कनकधारा यंत्र मंत्रस्य, श्री आचार्य श्री शंकर भगवत्पाद् ऋषि : श्री भुवनेश्वरी ऐश्वर्यदात्री महालक्ष्मी देवता, श्री बीजं ह्रीं शक्ति, श्री विद्या : रजोगुण, रसना ज्ञानेन्द्रियं रस वाक् कर्मेन्द्रिय मध्यमं स्वरं, द्रव्य तत्वं, विद्या कला, ऐं कीलनं, ब्रू उत्कीलनं प्रवाहिनी संचय मुद्रा, मम क्षेमस्थेर्यायुरारोग्या भि वृद्धयर्थं श्री महालक्ष्मी अष्ट लक्ष्म्ये भगवती दारिद्रय विनाशक धनदा लक्ष्मी प्रसाद सिद्धयर्थं च नमोयुक्त वाग् बीज स्व बीज लोम-विलोम पुटितोक्त त्रिभुवन भूतिकरी प्रसीद मह्यम्माला मंत्र जपे विनियोग :

कनकधारा ध्यान

सरसिज नियये सरोज हस्ते
धवल तंमाशुक गन्ध माल्य शोमे
भगवति हरि वल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवन भूति करि प्रसीद मह्यम्॥

कनकधारा-मंत्र

ओम् वं श्रीं वं ऐं ह्रीं श्री क्लीं कनकधाराये स्वाहा।

मैं तो केवल कनकधारा से संबंधित मंत्र ही अपनी डायरी में लिख पाया था परन्तु जैसा कि मुझे याद है प्रत्येक लक्ष्मी से सम्बंधित अलग विनियोग, अलग ध्यान

तथा अलग मंत्र था, इस प्रकार अष्ट लक्ष्मी के आठ मंत्र ध्यान, और विनियोग थे, जो कि प्रत्येक पण्डित अलग-अलग यंत्र के सामने बैठकर संबंधित अनुष्ठान कर रहे थे।

आठ दिन आपके निर्देशन में कार्य होता रहा, आपके सान्निध्य में जिन पण्डितों ने जिस प्रकार से कार्य किया था उनकी सराहना करता हूं, वास्तव में—उन्होंने समर्पण भाव से कार्य किया था, आपकी अनुपस्थिति में उन पण्डितों से जब आपकी चर्चा चलती तो वे आपके प्रति अत्यन्त ही उच्च भाव रखते और अपना सौभाग्य मान रहे थे कि आपके निर्देशन में उन्हें कार्य अनुष्ठान करने का सौभाग्य हो रहा है।

नवें दिन आपने यज्ञ किया जिसमें विशेष मंत्रों से आहुतियां दी गई थीं, आपने जितनी सामग्री यज्ञ के लिए मंगाई थी उसे देख आश्यर्यचकित रह गया था कि इतनी सामग्री का संयोजन आपने किस प्रकार से किया होगा ?

यज्ञ समाप्त होने के बाद मैं अपनी पत्नी सहित घर चला आया था, आपने एक 'अष्ट लक्ष्मी यंत्र' मुझे दिया था जिसे अपनी दुकान पर स्थापित करने के लिए कहा था, मैंने वह यंत्र अपनी दिल्ली स्थित दुकान में स्थापित कर दिया था, परन्तु फिर भी मेरा मन संशय ग्रस्त बना रहा था, क्योंकि मैं जब अपने परिवार की स्थिति देखता तो मेरी आंखों में आंसू तैर जाते।

परन्तु वास्तव में ही आप मंत्रपूत हैं। यंत्र स्थापित करने के दस दिनों बाद ही एक अमेरिकन जवाहरात व्यापारी से भेंट हुई और उसने एक सौदे में सहयोग का प्रस्ताव रखा। मैं आश्चर्यचकित था कि इस समय भारत में चार-पांच अरबपति फर्में हैं फिर वह मुझ से ही सौदे के लिए क्यों समझौता करना चाहता है, जबकि मैं तो पूरी तरह से टूटा हुआ था, परन्तु फिर मुझे मालूम हुआ कि उसने एक बार न्यूयार्क स्थित दुकान से सौदा खरीदा था और हमारी ईमानदारी उसके चित्त पर अंकित हो गई थी।

उस एक सौदे में ही हमें बीस लाख रुपये मिले। इसके बाद मेरा कुछ हौंसला खुला और उस अमेरिकन जौहरी के साथ भारत के पांच-छः राजघरानों से सौदे हुए और प्रत्येक सौदे में तीस से चालीस लाख का लाभ हुआ, इस प्रकार उस यंत्र को स्थापित करने के दो महीनों के भीतर ही एक करोड़ का लाभ हो गया था।

मैं ही नहीं पूरा परिवार आश्चर्यचकित था, और हमारी प्रत्येक सांस के साथ आपका नाम निकलता था। इस अनुष्ठान को सम्पन्न हुए एक साल बीत गया है और आज मैं वापस उसी स्थिति में हूं जिस स्थिति में मैं पहले था। मैंने अपनी चारों कोठियां छुड़वा ली हैं जो कि गिरवी रखी हुई थीं, पुनः कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और न्यूयार्क की दुकानें खुल गई हैं और आर्थिक दृष्टि से मैं अत्यधिक समृद्ध हूं, समाज में मेरा नाम आदर के साथ लिया जाने लगा है, और यह आपकी कृपा है कि मैं कुछ दिनों पूर्व जवाहरात संघ का अध्यक्ष चुना गया हूं।

इस एक वर्ष में मुझे प्रत्येक सौदे में लाभ हुआ है, मैं जिस सौदे को भी मिट्टी

समझता उसी सौदे में लाभ हो जाता, और इस एक वर्ष में मैं पुनः सम्पन्नता की स्थिति में पहुंच गया हूं।

पंडितजी मैं किन शब्दों में आपका आभार व्यक्त करूं, मैं और मेरा परिवार तो मरा हुआ था, आर्थिक दृष्टि से हम भिखारी बन गए थे, सामाजिक दृष्टि से हम अयोग्य ठहरा दिये गए थे और स्वास्थ्य की दृष्टि से मैंने आत्महत्या का प्रयास कर लिया था, ऐसी स्थिति से इस एक वर्ष में जिस स्तर पर पहुंचा हूं वह सब आपके ही प्रयत्नों का फल है। आपका आशीर्वाद मेरा सहायक रहा है।

वह 'अष्ट लक्ष्मी यंत्र' मेरी दुकान पर स्थापित है, और इस समय पुनः चार सौ से ज्यादा नौकर तथा सौ से अधिक दलाल मेरे व्यापार में सहायक हैं, यह सब कुछ आपका ही प्रभाव है, मेरे शरीर का रोम-रोम आपका ऋणी है, और जीवन भर ऋणी रहेगा, आज जो कुछ भी मेरी सम्पत्ति है वह आपकी है, उस पर आपका ही अधिकार है। मैं तो केवल निगरानी रखने वाला हूं, ऐसा ही भाव मेरे मन में है, इस सम्पत्ति का आप जिस प्रकार से भी उपयोग करना चाहें कर सकते हैं।

अनुष्ठान सम्पन्न होने पर मैं आपको कुछ भी दक्षिणा नहीं दे सका था और आज दक्षिणा देने की बात कहते हुए संकोच और हिचकिचाहट हो रही है कि आप जैसे पुण्यात्मा को मैं दे ही क्या सकता हूं ? मेरी सामर्थ्य ही क्या है ? मैं तो उस दिन भी आपके सामने भिखारी की तरह खड़ा था और आज भी आपके सामने भिखारी के रूप में ही उपस्थितं हूं।

आप तो शायद मुझे भूल गये होंगे क्योंकि आप प्रत्येक क्षण क्रियाशील हैं, मेरे जैसे सैकड़ों धनिक आपके चरणों में बैठे हुए हैं, अतः मेरा स्मरण आपको शायद ही रहा होगा, परन्तु मैं, मेरा परिवार, और मेरी आने वाली पीढ़ियां आपको एक क्षण के लिए भी नहीं भुला पायेंगी, हमेशा आपके ऋणी हैं और ऋणी रहेंगे।

मैं इस पत्र के माध्यम से, अपनी आत्मा से निवेदन कर रहा हूं कि मेरी इस समय जितनी भी सम्पत्ति है वह सब आपके चरणों में रखी हुई है, आप आज्ञा दें, आप जितनी भी सम्पत्ति को, जिस रूप में भी व्यय करने की आज्ञा देंगे वह मेरे लिए बिना हिचकिचाहट के स्वीकार्य होगी।

मेरे दो स्वार्थ हैं—पहला स्वार्थ तो यह है कि मैं आपके चरणों में उपस्थित होना चाहता हूं और इस उम्मीद के साथ उपस्थित होना चाहता हूं कि आप मेरी झोंपड़ी में पधारें और आज्ञा दें कि जिससे मैं और मेरा परिवार धन्य हो सके, दूसरा स्वार्थ यह है कि आप इसी प्रकार के तीन अनुष्ठान और सम्पन्न करावें जिससे कि इस प्रकार के यंत्र बम्बई, मद्रास, तथा न्यूयार्क की दुकान में स्थापित किए जा सकें।

इस घोर अनास्था के युग में केवल आप ही ऐसे प्रकाश स्तम्भ हैं जिनके प्रकाश में हम लोग आगे बढ़ सकते हैं। आपका स्नेह, आपकी कृपा और आपकी मधुरता मेरे हृदय पर अंकित है। यद्यपि मैं शिष्य कहलाने के काबिल नहीं हूं फिर भी मैं आपको

गुरु शब्द से सम्बोधित करना चाहता हूं और मुझे आशा है आप इस अकिंचन के अनुरोध को ठुकरायेंगे नहीं।

मैं और मेरा पूरा परिवार आपके प्रति श्रद्धानत है, कृतज्ञ है, ऋणी है। हमारा सब कुछ आपका है, हम आपके ही हैं। यह मैं अपनी आत्मा से, विचारों को और भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं।

मुझे विश्वास है आप मेरे अनुरोध को स्वीकार करते हुए मुझे चरणों में उपस्थित होने की स्वीकृति देंगे जिससे कि मैं आपको आदर सहित अपनी कुटिया में लाकर अपने जीवन को और अपने परिवार के जीवन को धन्य कर सकूं।

आपका ही—

(हेमचन्द्र अग्रवाल)

सम्मोहन साधना

पूज्य बाबा जी,

सादर दण्डवत।

बहुत समय बाद इस पत्र के द्वारा आपको याद कर रहा हूं और अपना विनम्र प्रणाम इस पत्र के द्वारा भेज रहा हूं। आपको मेरा स्मरण शायद हीं होगा, परन्तु मैं आज से छः वर्ष पूर्व आपको हरिद्वार में मिला था जबकि आप वहां माताजी के साथ एक मास के प्रवास हेतु आये थे और गीता आश्रम में ठहरे थे, सबसे पहले मैं वहीं पर आपसे मिला था।

आपके बारे में मैंने कई साधुओं और संन्यासियों से सुन रक्खा था कि आप तांत्रिक क्षेत्र में निष्णात हैं साथ-ही-साथ मंत्र साधना में भी आपने सर्वोच्च उपलब्धियां प्राप्त की हैं, मेरा कई बार विचार हुआ कि मैं जोधपुर आकर आपसे भेंट करूं और अपने मन की व्यथा आपके सामने प्रकट करूं, परन्तु प्रयत्न करने पर भी मैं उस तरफ नहीं आ सका। एक बार जब कुछ रुपयों का जुगाड़ हुआ तब मैं जोधपुर आया था, परन्तु उस समय आप जोधपुर से बाहर थे इसलिये मिलना नहीं हो सका। मैं वहां एक सप्ताह तक हनुमान आश्रम में ठहरा था और नित्य आपके घर जाकर पता करता परन्तु यही उत्तर मिलता कि अभी आप वापस नहीं लौटे हैं, लौटने का कोई निश्चित कार्यक्रम भी नहीं है, अतः मैं निराश हो वापस लौट आया था।

बचपन से ही मैं ब्रह्मचारी रहा हूं, घर गृहस्थ का मोह मुझे प्रारम्भ से ही नहीं रहा, मैंने अपने जीवन को ईश्वर भजन में ही बिता देने का निश्चय किया था, इसलिये मैंने साधु रूप धारण कर लिया था, परन्तु मेरे भगवे कपड़े पहनना व्यर्थ ही रहा, क्योंकि मैं चाहकर भी अपने चित्त को एकाग्र नहीं कर पाया और ईश्वर भजन की तरफ उन्मुख नहीं हो पाया, मैं साधारण कार्यों में लिप्त रहा और धन संचय करने की प्रवृत्ति मेरे मन में पनपती रही।

फिर मेरे मन में विचार आया कि मैं एक आश्रम स्थापित करूं और उसके द्वारा जनता को मैं अपने विचारों से प्रेरित करूं, जब भी मैं ऐसा सोचता तो अपने आप पर लज्जा आती, क्योंकि मुझमें कोई विशेष गुण नहीं था जिससे कि मैं इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकता।

मैंने ऋषिकेश को ही अपना क्षेत्र चुन लिया, भगवे कपड़े पहनने के कारण रोटी की चिन्ता नहीं थी परन्तु मेरा मन पूरी तरह से उदास और निराशा से भरा हुआ था, मैं शाम को जब गंगा तट पर बैठता तो अपने आप पर ग्लानि आती कि मेरा जीवन एक प्रकार से व्यर्थ ही गया। न तो मैं सही रूप में गृहस्थ बन सका और न मैं साधु जीवन के उच्च आदर्शों को ही प्राप्त कर सका। एक प्रकार से मैं अन्न पर पलने वाला पशु बनकर रह गया, न मैं तंत्र मंत्र के क्षेत्र में किसी को गुरु बना सका और न आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सका।

यहां पर बाहर से भी कई साधु और संन्यासी आते, नित्य सायं गंगा-तट पर या गीता आश्रम में प्रवचन होते, हजारों लोग उन प्रवचनों को सुनने के लिये आते और वे मंत्र मुग्ध से प्रवचन सुनते रहते, कई साधु घंटों धारा प्रबाह बोलते। वे इस प्रकार तथ्यों को रखते कि जनता उनके पीछे दीवानी बनी रहती, यद्यपि मैं उन प्रवचनकर्त्ता के व्यक्तिगत जीवन से परिचित रहता। उनका जीवन किसी भी प्रकार से आदर्श नहीं था, वे व्यक्तिगत जीवन में कामुक, लोभी, और पतित थे, परन्तु जब वे प्रवचन देते तो पता नहीं उनके होठों पर कैसे सरस्वती आकर बैठ जाती कि वे बोलते ही रहते और श्रोता चुपचाप सुनते रहते। वे जो बात कहते उनका ज्ञान मुझे भी था परन्तु मैं उस ज्ञान को प्रवचन के माध्यम से सही रूप में नहीं रख पाता, यद्यपि मेरी इच्छा यही रहती कि मैं भी एक श्रेष्ठ प्रवचनकर्त्ता बनूं, घंटों धारा प्रवाह भाषण देता रहूं और मेरे प्रवचनों को जनता दत्तचित्त होकर सुनती रहे। मैंने एक दो बार प्रयास भी किया, परन्तु पांच-सात मिनट से ज्यादा नहीं बोल सका। मेरे मन की एक ही लालसा थी कि मैं श्रेष्ठ प्रवचनकर्त्ता बनूं और श्रोताओं को अपने प्रवचन के माध्यम से सम्मोहित-सा कर दूं जिससे कि वे मेरे प्रवचनों के लिये दीवाने रहें।

इसके लिये मैं कई प्रवचनकर्त्ताओं और साधुओं से मिला, परन्तु किसी ने भी मुझे सन्तुष्टि नहीं दी, जब मैं उनके जीवन को कुरेदता तो वे मुझसे भी ज्यादा पतित और पाखण्डी प्रतीत होते। एक प्रकार से मुझे साधु जीवन पर ही घृणा हो आई थी।

ऐसे ही ऊहापोह में एक दण्डी स्वामी ने मेरी समस्या को सुनकर आपसे मिलने की राय दी, और आपका पता भी दिया, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि जोधपुर जाने पर भी आपके दर्शन नहीं हो सके। मैं अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ वापस लौट आया।

अचानक एक दिन गीता आश्रम के ब्रह्मचारी धीरेन्द्र स्वामी से बातों-ही-बातों में पता चला कि आप ऋषिकेश आये हुए हैं और लगभग एक महीने तक वहीं गंगा के किनारे रहेंगे, मैं उस रात्रि को सो नहीं पाया, चाहता तो मैं यही था कि उसी समय आपसे मिलूं, परन्तु रात्रि अधिक बीत जाने के कारण दूसरे दिन प्रातः आपसे मिलने का निश्चय किया।

दूसरे दिन मैं प्रातः आपके कक्ष में आया तो आप सन्ध्या वन्दन से निवृत्त हो आसन पर बैठे हुए किसी पुस्तक को पढ़ रहे थे। मैंने आकर आपके चरणों में प्रणाम

किया, आपने एक क्षण के लिये मुझे देखा और बिना आशीर्वाद दिये पुनः पुस्तक पढ़ने लग गये ।

मैं आध घंटे तक बैठा रहा, फिर मैंने आपका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करना चाहा तो आपने छूटते ही जवाब दिया कि यहां व्यर्थ ही आये हो, जब तक तुम्हारे मन से पाखण्ड और ढोंग दूर नहीं होगा तब तक कुछ भी उपलब्धि संभव नहीं है ।

मैं कुछ नहीं बोला, फिर थोड़ी देर बाद आपसे निवेदन किया कि मैं तो केवल आपसे मिलने के लिये ही आया हूं और कोई प्रयोजन नहीं है ।

आपने हंसकर जवाब दिया यहां पर भी असत्य बोल रहे हो तो आगे जीवन में क्या करोगे ? साथ-ही-साथ आपने बता दिया कि तुम अच्छा प्रवचन करना चाहते हो, मन की मंसा यही है कि तुम्हारे भाषण से या प्रवचन से लोग प्रभावित हों और वे तुम्हें उच्च स्तर का साधु मान लें, जबकि तुम पतित, पाखण्डी और अवसरवादी हो ।

मैंने अपनी सारी रामकहानी आपके सामने रख दी । आपका ध्यान पुस्तक की तरफ था, मेरी बात आपने सुनी या नहीं, मैं नहीं कह सकता, पर मुझे आपको अपनी राम कहानी कहकर सन्तोष अवश्य हुआ, साथ ही आपने बिना मेरा प्रश्न जाने मेरे बारे में या मेरी इच्छा के बारे में जो कुछ कह दिया था उससे मैं यह तो जान गया कि आप विशिष्ट व्यक्ति हैं और मेरा भला आपके द्वारा हो सकता है ।

उस समय तो मैं लौट आया । परन्तु मैं इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहता था, अतः मैंने निश्चय कर लिया कि गालियां खाकर भी आपकी सेवा करनी है और सेवा के द्वारा ही आपका मन जीतना है, जिससे कि जाने से पूर्व कुछ साधना प्राप्त हो सके ।

मैं नित्य प्रातः सायं आपके कक्ष में आता और यथासंभव सेवा करने का प्रयत्न करता । एक दिन आपके साथ गंगा तट पर विचरण करने का भी अवसर मिला ।

आपको संभवतः स्मरण होगा कि एक दिन एक विशिष्ट संन्यासी स्वामी प्रज्ञानन्द जी आपसे मिलने के लिये विशेष रूप से पधारे थे । उनके बारे में गीता आश्रम और ऋषिकेश में कई बातें प्रचलित थीं कि वे विशिष्ट योगी हैं और अधिकांश समय ऋषिकेश से दस मील दूर एक पेड़ पर बैठकर साधना करते हैं । चौबीसों घंटे वे पेड़ पर ही रहते हैं, यद्यपि उनके कुछ शिष्य नीचे कुटिया में रहते हैं, परन्तु बहुत ही कम लोगों ने उन्हें पेड़ से नीचे उतरते हुए देखा था । वे कब मल-मूत्र विसर्जन करते हैं किसी को कोई ज्ञान नहीं था । जो भी साधु ऋषिकेश आता वह पैदल प्रज्ञानन्द जी के दर्शन करने अवश्य जाता, उनकी सिद्धियों के बारे में ऋषिकेश में काफी चर्चाएं थीं, परन्तु जब उस दिन वे स्वयं नियम तोड़कर पैदल आपसे मिलने के लिये आये तो ऋषिकेश के हजारों निवासी और साधु महात्मा आश्चर्यचकित रह गये, और उसी दिन ऋषिकेश को आपकी महानता के बारे में पता चला था । प्रज्ञानन्द जी लगभग चार घंटे आपसे एकान्त में बातचीत करते रहे । इसकी भनक पड़ते ही

आपके कक्ष के बाहर हजारों नागरिकों और साधुओं की भीड़ लग गई थी। जब वे बाहर निकले तो उनके चेहरे पर अपूर्व आभा विद्यमान थी। एक महात्मा ने उनसे जब आपके बारे में पूछा तो उन्होंने इतना ही उत्तर दिया कि मैं अपने गुरु भाई से मिलने के लिये आया था, विशेषकर ये मेरे अंग्रज हैं, अतः इनसे निर्देश लेने और कुछ सीखने के लिये ही आया था, इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया और तेज कदमों से अपने गन्तव्य की ओर चले गये।

उस दिन लोगों ने आपकी महानता के बारे में पहली बार जाना और उसके बाद तो चौबीसों घंटे आपके कक्ष के बाहर भीड़ लगी रही, इससे आप कुछ परेशान भी रहे, परन्तु इससे लाभ यह हुआ कि मुझे कुछ अधिक सेवा करने का मौका मिल गया।

जब आपके साधना समय में भी व्यवधान पड़ने लगा तो आपने घर जाने का निश्चय कर लिया। जिस दिन आपने यह निश्चय किया उसी दिन एक विशिष्ट संन्यासी आपसे मिलने के लिये आये थे, यद्यपि उनका नाम मुझे स्मरण नहीं है परन्तु बाद में मुझे कहा कि वे किसी समय आपके शिष्य रह चुके थे और आपसे मिलने के लिये विशेष रूप से यमुनोत्री से भी दूर अपने स्थान से आपसे मिलने के लिये आये थे। जब आप उनसे बातचीत कर रहे थे तब मैं भी सौभाग्य से उपस्थित था, उस दिन मेरा सौभाग्य ही था कि कक्ष में आपके शिष्य, आप, मैं और माताजी के अलावा और कोई नहीं था।

उन्होंने सम्मोहन साधना की चर्चा चलाई थी, तो आपने विस्तार से इस साधना के बारे में उन्हें समझाया।

आपने बताया कि सम्मोहन दो प्रकार का होता है, एक तो व्यक्ति सम्मोहन और दूसरा 'समूह सम्मोहन।' सम्मोहन के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को अपने मन के अनुकूल बनाया जा सकता है, इस प्रकार का प्रयोग करने के बाद सामने वाले व्यक्ति को जो कुछ भी कहा जाता है वह उसी प्रकार से करता रहता है, उसकी सारी इच्छाएं विचार और तर्क समाप्त हो जाते हैं, केवल उसका ध्येय सम्मोहनकर्त्ता के कथन का पालन करना रह जाता है।

दूसरा सम्मोहन 'समूह-सम्मोहन' होता है इसमें सर्वप्रथम स्वयं पर सम्मोहन करना होता है। फिर वह सम्मोहनकर्त्ता जहां तक दृष्टि डालता है उस दृष्टिपथ में जितने भी लोग होते हैं वे सब सम्मोहित से रहते हैं, इस सम्मोहन के द्वारा विशाल भीड़ भी सम्मोहित की जा सकती है, और उस भीड़ से मनचाहा कार्य लिया जा सकता है, उस समय उस भीड़ की इच्छा और तर्क समाप्त हो जाते हैं, केवल वह सम्मोहनकर्त्ता की इच्छाओं का दास बन जाती है, ऐसे समय में यदि कोई साधु या संन्यासी प्रवचन करता है। तो सामने चाहे हजारों, लाखों व्यक्ति बैठे हों, वे चुपचाप उस प्रवचन को सुनते रहते हैं चाहे वह प्रवचन नीरस हो, परन्तु उस भीड़ को वह प्रवचन अद्वितीय लगता है और वह भीड़ यही चाहती है कि इस प्रकार बैठे रहें और सुनते रहें। उस समय

उनकी सारी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां उस सम्मोहनकर्त्ता के अनुकूल बन जाती हैं तथा ऐसे समय वह जो भी आदेश या सलाह देता है भीड़ उस सलाह को मानने में प्रसन्नता अनुभव करती है।

आपने आगे समझाते हुए बताया कि यदि किसी व्यक्ति को जन मानस पर अपना नियंत्रण स्थापित करना है, या जन मानस को अपने नियंत्रण में रखना है, या उसे अपना अनुयायी बनाना है तो इस प्रकार की साधना सर्वश्रेष्ठ रहती है, परन्तु इसमें इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि भीड़ को यह मालूम नहीं होने देना चाहिए कि आपने उस भीड़ पर सम्मोहन किया है।

इसके बाद आपने इस साधना की क्रिया भी अपने शिष्य को समझाई थी, आपने बताया था कि इस प्रकार की साधना शुक्ल पक्ष की पंचमी से प्रारम्भ होती है और इसमें एक महीना लग जाता है।

सर्वप्रथम पंचमी को प्रातः उठकर स्नानादि कर पीली धोती पहन लेनी चाहिए, इसके अलावा शरीर पर अन्य किसी भी प्रकार का वस्त्र नहीं होना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व ही पूर्व दिशा की ओर किसी भी वट वृक्ष या आक के वृक्ष को निमंत्रित कर उसकी एक डाली तोड़कर ले आनी चाहिए, यह डाली हरी होनी चाहिए।

तत्पश्चात् सूर्योदय से पूर्व ही नदी तट पर जाकर कमर तक पानी में खड़े होकर बायें हाथ में वह डाली ले लें और दाहिने हाथ में मूंगे की माला ले लें। इस माला में चौपन मनके होने चाहिए, जो कि मूंगे के मनके होते हैं, मूंगा रत्न लाल रंग का होता है। और ज्योतिष की दृष्टि से इसे मंगल का रत्न माना जाता है।

इसके बाद निम्नलिखित मंत्र की इक्कीस मालाएं उसी जल में खड़े-खड़े जपनी चाहिए, खड़े होते समय पानी कमर तक होना चाहिए और पूर्व की तरफ मुंह करके खड़ा होना चाहिए। चौपन मंत्र जपने पर एक माला कही जाती है, यदि नदी नहीं हो तो तालाब में या अपने घर में पानी का कुण्ड बनाकर उसमें खड़े होकर भी यह साधना की जा सकती है, परन्तु इस बात का ध्यान रखें कि जब तक इक्कीस मालाएं समाप्त न हो जायं तब तक किसी से भी बातचीत न करें और कितना ही जरूरी काम हो पानी के बाहर न निकलें, इसके अलावा किसी की आवाज आने पर या प्रश्न पूछे जाने पर भी जबाव न दें, केवल मुंह से स्फुटित रूप में मंत्र जप करते रहें। यह प्रयोग तीस दिन का होता है।

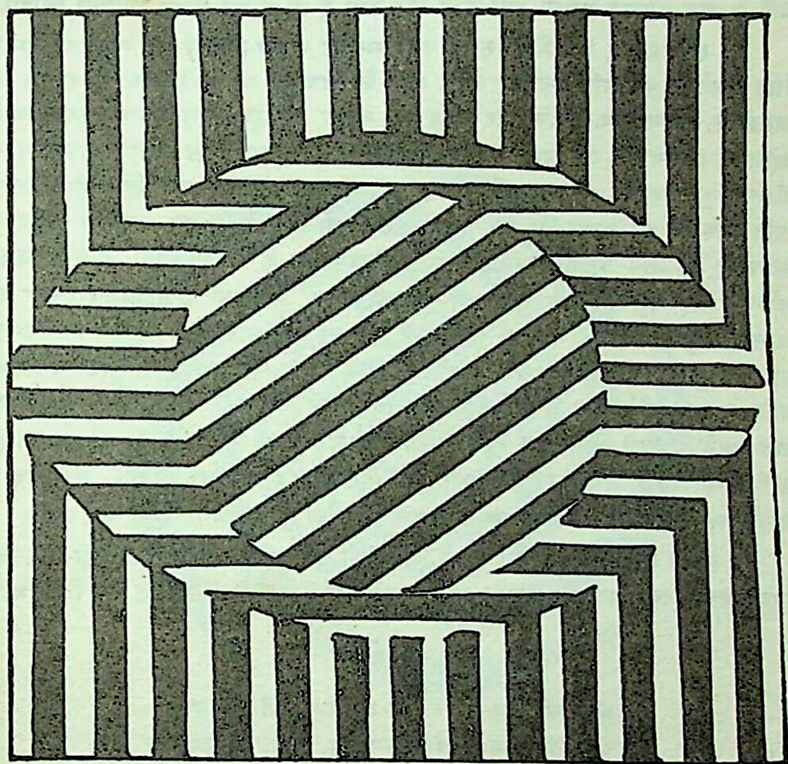
साधना काल में पूर्णतः ब्रह्मचर्य रखे, साथ ही इन तीस दिनों में स्त्री जाति से बातचीत न करें, चाहे वह मां, बहिन, पत्नी ही क्यों न हो, यथासम्भव चौबीसों घंटे तक मौन व्रत रखें।

इसके अलावा एक समय भोजन करें और लोम-विलोम गति से भोजन किया करें, अर्थात् पहले दिन एक तोला भोजन करें, दूसरे दिन दो तोला। इस प्रकार पन्द्रहवें दिन पन्द्रह तोला भोजन करें, फिर सोहलवें दिन चौदह तोला और इस प्रकार कम करते-करते तीसवें दिन एक तोला भोजन करें, इसके अलावा अन्य किसी भी प्रकार

का कोई अन्न न लें। दूध, पेय पदार्थ आदि का भी सेवन न करें, साथ ही साधना काल में किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन भी वर्ज्य है।

साधना में प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही जल में खड़े होकर इक्कीस मालाएं फेरें। इसी प्रकार सूर्यास्त के बाद भी जल में खड़े होकर इक्कीस मालाओं का प्रयोग करें। दिन में मध्यान्ह काल में अर्थात् बारह बजे से प्रारम्भ करके भी इक्कीस मालाएं फेरें, दोपहर को तथा मध्य रात्रि को जप आसन पर बैठकर किया जाता है, सायं और प्रातः जल में खड़े होकर किया जाना चाहिए।

आसन पीले रंग का होना चाहिए और पूर्व की ओर मुंह करके बैठना चाहिए, पद्मासन का प्रयोग आवश्यक है, आंखें स्थिर और कमर सीधी रहनी चाहिए, साधक को किसी भी प्रकार के आलस्य आदि से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। एक महीने तक किसी भी पुरुष या स्त्री से सम्भाषण न करें और भोजन स्वयं के द्वारा पका हुआ या



सम्मोहन आधार–इच्छा कम्पन

किसी शुद्ध वर्ण के पुरुष द्वारा पकाया हुआ ग्रहण किया जा सकता है, भोजन सात्विक और शुद्ध शाकाहारी होना चाहिए।

जब तीस दिन समाप्त हो जायं तो इकतीसवें दिन किसी ऐसे माध्यम को चुनना चहिए जो कि सीधा सरल व्यक्ति हो। उसकी उम्र वीस वर्ष से कम हो तो ज्यादा उचित रहेगा। यथासंभव माध्यम चौदह-पन्द्रह वर्ष का बालक उचित रहता है, उस दिन उस बालक को सामने बिठाकर मन-ही-मन मंत्र का पांच बार जप करना चाहिए और फिर मन में ही उस बालक को आज्ञा देनी चाहिए कि खड़ा होकर जल का लोटा भरकर ला। या ऐसा ही कोई सामान्य कार्य मन-ही-मन उस बालक को सम्बोधित करके कहना चाहिए, इसके लिए उस बालक को नाम उच्चारश करने की आवश्यकता नहीं है, केवल उस पर दृष्टि डालना या उसकी आंख में आंख डालकर मन-ही-मन कहना पर्याप्त होता है, ज्योंही आप मन में आज्ञा देंगे त्योंही वह बालक यदि उठकर आपका बताया हुआ कार्य कर लेता है तो प्रयोग सफल समझना चाहिए।

इसी प्रकार जब किसी समूह पर सम्मोहन करना होता है, तो समूह को सम्बोधित करने से पूर्व आंखें बंद कर अपने स्वयं के चित्र को या अपने स्वयं के स्वरूप को आंखों के सामने लाकर पांच बार मंत्र जप करना चाहिए, उसके बाद तुरन्त आंखें खोलकर सामने बैठे जन समूह पर दृष्टि डालनी चाहिए, उस समय आपकी दृष्टि जितनी दूर तक की भीड़ को देखेगी वह पूरी भीड़ आपके प्रति सम्मोहित रहेगी, उसके बाद आप जो भी आज्ञा देंगे वह समूह उस आज्ञा को क्रियान्वित करने में सौभाग्य समझेगी, या आप जो भी कहेंगे वह उनके लिए अमृत के समान होगा, आपके प्रवचन को वह भीड़ शान्ति से ध्यानपूर्वक सुनेगी और उस भीड़ को एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव होगा। वे सारे सम्मोहित व्यक्ति वार-वार यही चाहेंगे कि आपकी बात को सुनते रहें, प्रवचन समाप्त होने के बाद भी वे एक अजीब-सा आकर्षण आपके प्रति अनुभव करेंगे और वे बार-बार आपको देखने, आपकी सेवा करने या आपकी बात सुनने के लिये लालायित रहेंगे, उनमें तर्क करने या विरोध करने की क्षमता ही नहीं रहेगी। एक उच्चस्तरीय प्रवचनकर्त्ता के लिये यह साधना अत्यन्त आवश्यक है जिससे वह देश और विदेश में अपने भाषण के द्वारा लोकप्रियता प्राप्त कर सके।

आपने निम्नलिखित मंत्र अपने शिष्य को वताया था जो मैंने मन-ही-मन उसी समय स्मरण रखा था और बाहर आकर उसे अपनी डायरी में अंकित कर दिया था।

मंत्र

ओम श्रीं भैरवी भद्राक्षी आत्मन्, सर्व जन वाक्
चक्षु, श्रोत्र मन स्तंभय स्तंभय, वाधय वाधय मम
शब्दानुग्रह दर्शय दर्शय दृष्टिपथात् सम्मोहनाय
सम्मोहनाय कुरू कुरू स्वाहा।

मैं इसी प्रकार की साधना जानने के लिये ही तो भटक रहा था और उस दिन अनायास ही मेरी इच्छा पूर्ण हो गई थी। मैं आपके प्रति कृतज्ञ था कि आपने प्रत्यक्ष रूप से भले ही न सही परन्तु मेरे मन की बात जानकर अप्रत्यक्ष रूप से मुझे मेरी मनोवांछित साधना बता दी थी।

उसके तीसरे दिन ही आने जाने वाले लोगों की भीड़ से परेशान होकर आप जोधपुर के लिये प्रस्थान कर गये थे।

मैंने उसके बाद शुक्ल पक्ष की पंचमी से आपने जो विधि बताई थी उसके अनुसार साधना प्रारंभ कर दी थी। वहां पर एक फोटोग्राफर के द्वारा आपका जो चित्र लिया गया था उससे मैंने एक प्रति प्राप्त की थी और उसे अपनी कुटिया में रखकर आपको गुरु मान प्रार्थना निवेदन कर साधना कार्य प्रारंभ कर दिया था।



शक्ति चक्र

साधना निर्विघ्न समाप्त हो गई थी, यद्यपि मुझे आशंका थी कि मैं सफल हो सकूंगा या नहीं, परन्तु आपके मौन आशीर्वाद से इस साधना में सफल हो सका, और साधना के बाद मैंने व्यक्ति सम्मोहन किया और मन-ही-मन जो आदेश दिया उसका

उसने अक्षरशः पालन कर दिया था। जब तक उसने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तब तक वह कसमसाता रहा और कुछ ऐसा लगा जैसे कि कोई शक्ति उसे इस कार्य को करने के लिये प्रेरित कर रही है, जव उसने आज्ञा का पालन कर लिया तभी उसके चेहरे पर सन्तोष की झलक दिखाई दी।

साधना समाप्ति के बाद पन्द्रह दिन तक मैं विश्राम करता रहा और सोलहवें दिन मैंने गीता आश्रम के संचालकों से निवेदन किया कि आज मैं सायंकाल को प्रवचन देना चाहता हूं, वहां पर कोई-न-कोई प्रवचनकर्त्ता आते रहते हैं अतः जब मैंने अपनी बात उनके सामने रखी तो वे विश्वास नहीं कर सके कि मैं एक घंटे तक धाराप्रवाह प्रवचन दे सकूंगा, परन्तु मैंने उन्हें किसी प्रकार आश्वस्त किया और उस दिन धड़कते हृदय से व्यासपीठ पर जा बैठा।

मेरे सामने अपार जनसमूह बैठा हुआ था। एक क्षण के लिये मैं घबरा गया, परन्तु मैंने अपने सामने आपका चित्र लगा रखा था अतः मन-ही-मन आपको प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मुझे पूरी सफलता प्राप्त हो, इसके बाद मैंने स्वयं को सम्मोहित कर अपनी दृष्टि सामने फैले हुए जनसमूह पर डाली, अचानक एक विद्युत तरंग-सी मेरे सारे शरीर में दौड़ गई और कुछ ऐसा लगा कि जैसे मेरे होंठ कुछ कहने के लिये उतावले हों। मैंने प्रवचन प्रारंभ किया और धाराप्रवाह रूप से निर्धारित विषय पर बोलता रहा। मुझे ज्ञात ही नहीं हो सका कि समय कैसे बीत गया। उस दिन मैं एक घंटा बीस मिनट तक धारावाहित रूप से प्रतिपाद्य विषय पर बोलता गया और अपार जनसमूह शान्त चित्त से सुनता रहा। पूरे भाषण के दौरान इतनी शान्ति रही कि यदि सुई भी गिरती तो उसकी आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ सकती थी, उस सभा में सैकड़ों साधु और संन्यासी भी थे, प्रवचन समाप्त होने पर उन संन्यासियों ने मुझे घेर लिया और मेरे प्रवचन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। प्रवचन समाप्त होने पर पहली बार परम्परा तोड़ कर श्रोताओं ने हर्ष से तालियां बजायी थी जो कि मेरे प्रवचन के प्रभाव को स्पष्ट व्यक्त कर रही थीं।

परन्तु मुझे कुछ भी ध्यान नहीं था कि मैं क्या बोला था और किस प्रकार से बोला था, पर गीता आश्रम के संचालकों ने मुझे बताया कि आप निर्धारित विषय पर ही बराबर बोलते रहे थे, संबंधित विषय से कहीं पर भटके नहीं थे। मैं स्वयं अपने आप आश्चर्यचकित था।

दूसरे दिन प्रातः से ही श्रोता मुझ मिलने के लिए उतावले थे और जहां भी मैं जाता मुझे घेर लेते। वे मेरा दर्शन कर अपना सौभाग्य समझने लगे थे। उनकी राय में मैं विद्वान् और उच्चकोटि का अध्येता हूं, तभी तो मैं इस प्रकार के कठिन विषय पर इतनी गहराई और स्पष्टता के साथ बोल सका था।

इसके बाद मैंने एक महीने तक वहां निरन्तर प्रवचन किया, संचालकों ने यह उचित समझा कि मेरे प्रवचन को टेप कर लिया जाए, जिससे कि भविष्य में भी इसका उपयोग हो सके।

आज मैं एक श्रेष्ठ आश्रम का संचालक हूं, सैकड़ों शिष्य मेरे पास हैं आर्थिक दृष्टि से मैं सम्पन्न हूं और लोगों के अनुसार मेरी जीभ पर सरस्वती विराजमान है, परन्तु मैं अपने आपको समझ रहा हूं कि मैं क्या हूं।

मेरा मन बराबर अपने आपको धिक्कार रहा है कि मैंने छुप करके, चोरी से यह साधना आपसे सीखी है, बिना आपकी स्पष्ट आज्ञा के इस साधना को सम्पन्न किया है। जब भी मैं अकेला होता हूं मेरा मन पाश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है, अब मैंने यह अनुभव कर लिया कि जब तक पत्र के माध्यम से मैं आपसे क्षमा याचना कर लूं तब तक मेरे मन को शान्ति नहीं मिल सकेगी।

निश्चय ही मैं आपके प्रति अपराधी हूं और इस अपमाध की आप जो भी सजा देना चाहे वह स्वीकार्य होगी। आप आज्ञा दें मैं स्वयं आपके चरणों में उपस्थित होकर क्षमा याचना करूं और तब तक आपके चरणों में पड़ा रहूं जब तक कि आप क्षमा नहीं कर देंगे।

इस पत्र के साथ मैं अपना पता लिखा लिफाफा संलग्न कर रहा हूं। यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है परन्तु मैं आपके सामने बालक के समान उपस्थित हुआ हूं, इसीलिए यह पत्र और अपना पता लिखा लिफाफा भेजने की धृष्टता कर रहा हूं। जब तक आपकी आज्ञा प्राप्त नहीं होगी तब तक मेरा मन इसी प्रकार छटपटाता रहेगा।

मैं तो अपने मन से आपको गुरु मानता हूं और पूर्ण क्षमता तथा सर्वांग सहित आपके प्रति मनन करता हुआ याचना करता हूं कि आप मुझे अभय दें जिससे कि मैं अपने अपराध का प्रायश्चित कर सकूं और आपके चरणों में बैठकर कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकूं।

अकिंचन
साधु अमृतानंद

अघोर गौरी-साधना

आदरणीय पण्डित जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपसे बिछुड़े हुए लगभग एक वर्ष होने को आया है। मुझसे ऐसी क्या त्रुटि हुई है कि मेरे पत्र का उत्तर भी मुझे प्राप्त नहीं हो रहा है, इस एक वर्ष में मैंने कितने ही पत्र आपको दिये होंगे, परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे एक भी पत्र का उत्तर प्राप्त नहीं हो सका। मुझसे यदि कोई गलती हो गई हो तो मैं उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं। मैं तो बालक हूं और बालक हमेशा गलती करते रहते हैं आप मेरे लिए आदरणीय हैं और एक प्रकार से मेरे सर्वस्व हैं। अतः आपसे अलग रहकर मैं जीवित नहीं रहना चाहता। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ हो वह मुझे बतायें जिससे कि मैं उसका प्रायश्चित करूं।

मुझे वे दिन याद हैं जब मैं आपके सान्निध्य में दो साल रहा था और आपसे काफी कुछ ज्ञान मुझे मिला था। यद्यपि मैंने आपसे मन्त्र साधना ही सीखी थी परन्तु मैं मन-ही-मन इसलिए चिन्तित था कि मेरी एक ही बहिन है जो कि रंग से काली और दिमाग से कुछ कमजोर है, इसलिए बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका कहीं विवाह नहीं हो रहा था। मेरे पिताजी ने उसके विवाह के लिए अत्यधिक प्रयत्न किए थे पर अन्त में थक गये थे और यह निश्चय हो गया था कि अब इसका विवाह होना सम्भव नहीं है।

उसके विवाह के लिए मेरे पिता अपने मकान को गिरवी रखकर भी दहेज की पूर्ति में हिचकिचा नहीं रहे थे। उन्होंने कई जगह इस प्रकार आश्वासन भी दिया था कि आप जो भी चाहेंगे मैं यथासम्भव उसकी पूर्ति करूंगा, परन्तु फिर भी मेरे पिता अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर पाये थे।

जिसके घर में जवान बहिन हो और उसका विवाह नहीं हो तो माता-पिता या भाई को कितना मानसिक दुख होता है इसकी कल्पना वही कर सकता है जो मुक्त भोगी हो, परन्तु मुझे रह-रहकर एक विचार आ रहा था कि यदि मैं आपके सामने इस समस्या को रखूं तो शायद उसका समाधान मिल सकेगा।

पिछली बार जब मैं आपके पास आया था तो मैं इस समस्या से बहुत अधिक

दुखी और परेशान था, परन्तु मेरी आत्मा इस बात के लिए तैयार नहीं थी कि मैं अपने स्वार्थ के लिए आपको परेशान करूं। परन्तु जब एक दिन अघोर मन्त्रों की चर्चा चली तो आपने ऐसे ही एक मन्त्र की चर्चा की थी कि वह मन्त्र सामान्य दिखाई देता है, परन्तु विवाह कार्य में पूर्ण सफलतादायक है। यह बात सुनकर जहां मुझे मन-ही-मन प्रसन्नता हुई, वहीं मेरी आंखों में आंसू भी छलछला आये। मुझे उस एक क्षण



अघोर गौरी देवी

में अपनी बहिन का स्मरण हो आया था। मैं उठकर एक तरफ चला गया था। मैं अपने आंसू आपको दिखाकर परेशान नहीं करना चाहता था।

आपने बताया था कि यह मन्त्र अघोर मन्त्रों में विवाह मन्त्र कहलाता है और यदि नित्य इस मन्त्र की एक सौ आठ मालायें फेरें तो ग्यारह दिनों के भीतर-भीतर अनुकूल समाचार प्राप्त हो सकते हैं, पर आपने यह बताया था कि इस मन्त्र का जप वही करें जिनका विवाह होना है। आपने जो मन्त्र बताया था वह इस प्रकार था :

अघोर विवाह मंत्र

मखनो हाथी जर्द अम्बारी
उस पर बैंठी कमाल खां की सवारी
कमाल खां कमाल खां मुगल पठान
बैंठे चबूतरे पढ़े कुरान
हजार काम दुनिया का करे
एक काम मेरा कर
न करे तो तीन लाख तैंतीस हजार पैंगम्बरों की दुहाई।

मैंने इस मन्त्र को एक अलग कागज पर नोट कर लिया था और उसके तीसरे दिन आपकी आज्ञा से मैं अपने घर चला आया था।

घर आने पर मैंने देखा कि मेरी घर की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है और पिताजी बेटी के विवाह की चिन्ता में घुलकर आधे हो गये हैं और मेरी मां ने खाट पकड़ ली है।

मैंने आपके बताये हुये मन्त्र का प्रयोग करने का निश्चय किया। यद्यपि यह मेरा अपराध ही है कि बिना आपको सूचना दिये इस प्रकार का प्रयोग अपनी बहिन से करवाया परन्तु इसके पीछे मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ था और उससे भी ज्यादा यह स्वार्थ था कि मेरे माता-पिता की चिन्ता दूर हो सके।

मैंने अपनी बहिन को इस मन्त्र के बारे में बताया तो उसने इस मन्त्र को जपने से मना कर दिया, इससे पूर्व उसने सैंकड़ों व्रत-तप पूजा-पाठ आदि कर लिये थे और एक प्रकार से वह इन सबसे निराश हो गई थी। उसे विश्वास हो गया था कि यह मन्त्र-तन्त्र झूठे हैं, इनमें किसी प्रकार की कोई सत्यता नहीं है, पर मेरे आश्वासन देने पर कि यह अन्तिम बार है, मेरा कहना मानकर इस मन्त्र का जाप ग्यारह दिन कर ले। यदि इस बार भी सफलता नहीं मिली तो भविष्य में तुझे मैं कुछ भी नहीं कहूंगा।

मेरे कहने से उसने इस मन्त्र का जप प्रारम्भ किया। आश्चर्य की बात यह है कि नवें दिन ही मेरे दूर के चाचाजी ने एक लड़के के बारे में सूचना दी। उनका

घर सम्पन्न और हमसे बढ़ा-चढ़ा था, लड़का योग्य तथा उच्च पद पर नौकरी कर रहा था, इसलिए मेरे पिताजी को बिल्कुल विश्वास नहीं था कि वहां सगाई हो सकेगी, परन्तु चाचाजी और मेरे विशेष आग्रह पर वे गये और प्रसन्नता की बात यह है कि उन्होंने सम्बन्ध स्वीकार कर लिया।

इस अनुष्ठान को प्रारम्भ हुये ग्यारह दिन बीते थे कि लड़के वालों ने मेरे घर आ बहिन को देखकर स्वीकृति दे दी। उन्होंने कहा हमें रंग-रूप की जरूरत नहीं है, हमें तो सुशील कन्या चाहिए, दहेज की भी इच्छा नहीं है, क्योंकि भगवान की पूरी कृपा है।

ग्यारहवें दिन मेरी बहिन ने अनुष्ठान पूरा किया और उसके एक महीने बाद ही विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह निर्विघ्न समाप्त हुआ और अब बहिन अपने ससुराल है तथा वहां पूरी तरह से सुखी है।

मैंने यह पहली बार अनुभव किया कि अघोर मन्त्र भी अपने आप में चमत्कारिक है। उस दिन बातों-ही-बातों में आपसे यह मन्त्र प्राप्त हो गया था और इससे एक बार घर का कल्याण हो गया है।

वास्तव में ही आपके साथ रहने से प्रत्येक क्षण मूल्यवान बन जाता है। बातचीत के प्रसंग में भी हम शिष्यों को कब कौन-सा रत्न प्राप्त हो जाए, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि मुझसे गलती हुई है कि मैंने इस मन्त्र का जप बिना आपकी अनुमति के अपनी बहिन से सम्पन्न कराया है पर इसके लिए इतनी कठोर सजा न दें कि मुझे आपके चरणों से बिछुड़ना पड़े।

मैं अपने अपराध के लिए बार-बार क्षमा प्रार्थी हूं। आप मेरे अपराध को क्षमा कर पत्र का उत्तर दें और स्वीकृति दें जिससे कि मैं आपके चरणों में उपस्थित हो सकूं।

आपका ही,
कृष्ण गोपाल 'यदु'

काल ज्ञान मंत्र

आदरणीय गुरुदेव,

सादर चरण स्पर्श ।

यह मेरा सौभाग्य है कि आपका वरदहस्त पिछले बीस वर्षों से मुझ पर है और इन बीस वर्षों में समय-समय पर आपने जो मुझे तंत्र-मंत्र का ज्ञान दिया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूं, केवल मात्र आभारी शब्द कहने से मैं उऋण नहीं हो सकता, क्योंकि मेरे जीवन का निर्माण और इस जीवन की संरचना आपकी कृपा के फलस्वरूप ही है, फलस्वरूप मेरा पूरा जीवन आपको समर्पित है ।

मैं कई वर्षों से आपसे 'काल ज्ञान मन्त्र' सीखना चाहता था क्योंकि मैंने कई ग्रन्थों में काल ज्ञान मन्त्र के बारे में काफी कुछ सुन रखा था, परन्तु कहीं से भी मुझे काल ज्ञान मन्त्र प्राप्त नहीं हो सका था, इसके लिए मैंने तन्त्र-मन्त्र की कई पुस्तकें टटोलीं परन्तु इस प्रकार का मन्त्र मुझे प्राप्त नहीं हो सका ।

मुझे यह विश्वास था कि आपको अवश्य ही काल ज्ञान मन्त्र का ज्ञान होगा, परन्तु मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी कि मैं इस सम्बन्ध में आपसे निवेदन करूं ।

परन्तु इस बार जब आपने मुझे अभयदान दिया तो मैंने सकुचा कर अपने मन की बात आपके सामने रख दी । आपने जब काल ज्ञान मन्त्र के बारे में सुना तो मेरे चेहरे की ओर दो क्षण के लिए देखने लगे । मैं उन दो क्षणों में पसीने-पसीने हो गया था कि शायद मुझसे कोई त्रुटि हो गई है, क्योंकि मैं आपकी उस भेदिनी दृष्टि का सामना नहीं कर पा रहा था ।

परन्तु यह मेरा सौभाग्य था कि आपने काल ज्ञान मन्त्र सीखने की स्वीकृति दी, साथ ही इस मन्त्र के बारे में बताया कि यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय है और जो साधक उच्चस्तरीय साधना सम्पन्न कर लेता है, तब उसे काल ज्ञान मन्त्र की साधना सिखाई जाती है। इस मन्त्र की साधना करने के बाद ही वह साधक सिद्धाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी होता है ।

आपने बताया था कि इस मन्त्र की इक्कीस मालाएं नित्य फेरनी आवश्यक होती हैं, आसन सूती या रेशमी किसी भी प्रकार का हो सकता है, इसका प्रयोग किसी भी पूर्णिमा से प्रारम्भ किया जाता है । यह एक महीने का प्रयोग होता है,

प्रयोग के समय अन्य किसी भी प्रकार के विधि-विधान की आवश्यकता नहीं होती; केवल सामने गुग्गुल धूप लगाते रहना चाहिये।

आपने यह भी बताया था कि एक महीने तक इसका अनुष्ठान करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है और इसके साथ-ही-साथ वह व्यक्ति भी सिद्ध पुरुष हो जाता है, और किसी को देखते ही उसका भूत, वर्तमान और भविष्य उसकी आंखों के सामने स्पष्ट हो जाता है। उस साधक से कुछ भी छिपा नहीं रहता और वह सामने वाले व्यक्ति की गोपनीय-से-गोपनीय बात जान लेता है, इसी प्रकार वह भविष्य के प्रत्येक क्षण को अपनी आंखों के सामने देख लेता है और वह जो कुछ भी कहता है भविष्य में सत्य होता है, एक प्रकार से कहा जाय तो उसका वचन मिथ्या नहीं जाता।

आपने यह भी बताया था कि यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय होता है और सामान्य रूप से इस मन्त्र का ज्ञान साधक को नहीं दिया जाता, जब तक कि सिद्धाश्रम स्थित गुरु की आज्ञा प्राप्त नहीं हो जाती, सम्भवतः यह मेरे पूर्व जन्मों का पुण्योदय था कि आपने मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए मुझे काल ज्ञान मन्त्र प्रदान किया था।

आपने जो मुझे मन्त्र बताया था वह इस प्रकार था :

काल ज्ञान मन्त्र

ओम नमो भगवते ब्रह्मानन्द पद : गोलोकादि असंख्या ब्रह्माण्ड भुवन नाथाय शशांक शंख गोक्षीर कर्पूर धवल गात्राय नीलांभोधि जलद पटलाधिव्यक्तस्वरूपाय व्याधिकर्म निर्मूलोच्छेदन कराय, जाति जरायमरण, विनाशनाय, संसारकान्तारोन्मूल नाय, अचिन्त्य बल पराक्रमाय, अति प्रतिमाह चक्राय त्रैलोक्याधीश्वराय, शब्दै के त्रैलोक्याधिर्नारिवल भुवन कारकाय, सर्वसत्य हिताय, निज भक्ताय, अभीष्ट फल प्रदाय भक्त्याधीनाय सुरासुरेन्द्रादि मुकुटकोटि घृष्टवाद पीठाय, अनन्त युग नाथाय, देवाधि-देवाय, धर्मचक्राधीश्वराय, सर्व विद्या परमेश्वराय, कुविद्या विघ्न प्रदाय, तत्पादपंकजा श्रयानि यवनी देवी सासन देवते त्रिभुवन संक्षोभनी, त्रैलोक्य शिवापहारकारिणीं श्री अद्भुत जातवेदा श्री महालक्ष्मी देवी (अमुकस्य) स्थावर जंगम कृत्रिम विषमुख संहा-रिणीं सर्वाभिचार कर्मापहारिणी परविद्योच्छेदनी परमन्त्र प्रनाशिनीं अष्ट महानाग कुलीच्चाटनीं कालदंष्ट्र मृत कोत्यापिनीं (अमुकस्य) सर्वरोग प्रमोचनी, ब्रह्माविष्णु-रुद्रेन्द्र चन्द्रादित्यदिग्रह नक्षत्रोत्पात मरण भय पीड़ा मर्दिन त्रैलोक्य विश्वलोक वशंकरि भुविलोक हितकं महाभैरवि भैरव शस्त्रोपधारिणी रौद्रे, रौद्ररूपधारी प्रसिद्धे, सिद्ध विद्याधर यक्ष राक्षस गरुड़ गंधर्व किन्नर कि पुरुषो दैत्यारगेन्द्र पूजिते ज्वालापात कराल दिगन्तराले महावृषभ वाहिनी, खेटक कृपाण त्रिशूल शक्ति चक्रपाश शरासन शिव विराजमान षोडशार्द्ध भूजे एहि एहि लं ज्वाला मालिनीं ह्रीं ह्रीं ह्रं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः देवान् आकर्षय आकर्षय नाग ग्रहान् आकर्षय आकर्षय यक्ष ग्रहान् आकर्षय आकर्षय : गंधर्व ग्रहान् आकर्षय भूत ग्रहान् आकर्षय आकर्षय दिव्यतर ग्रहान् आक-

र्षय आकर्षय चतुराशि जैन्य मार्ग ग्रहान् आकर्षय आकर्षय आकर्षय अखिल मुंडित ग्रहान् आकर्षय जंगम ग्रहान् आकर्षय आकर्षय दुर्गेशादि विद्यग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं नग निग्रह वासी ग्रहा आकर्षय आकर्षय सर्वं सर्वनग निग्रह वासी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं ाशय वासी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वस्थल वासी ग्रहान आकर्षय आकर्षय ति स्थित ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं श्मशान वासी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं पवनी वासी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं धर्मं शापादि शाप ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं गिरिगुहा दुर्गवासी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय श्रापित् ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं दुष्ट ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वं नाथपंथी ग्रहान् आकर्षय आकर्षय सर्वभूवासी प्रेत ग्रहान् आकर्षय आकर्षय वक्र पिंड ग्रहान् आकर्षय आकर्षय कट कट कंपय कंपय शीर्षं चालय शीर्ष चालय गात्रं चालय गात्रं चालय बाहुं चालय बाहुं चालय पादं चालय पादं चालय कर पल्लवान चालय कर पल्लवान चालय सर्वांग चालय सर्वांग चालय लोलय लोलय धुन धुन कंपय कंपय शीघ्र भव तारय तारय ग्रहि ग्रहि ग्राह्य ग्राह्य अक्षय अक्षय आवेशय आवेशय ज्वलूं ज्वालामालिनीं ह्रां क्कीं व्लूं द्रां द्रां ज्वल ज्वल र र र र र र र प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल धग धग धूमाक्ष करणींज्वल विशोषय विशोषय देवग्रहान् दह दह नाग ग्रहान् दह दह यक्ष ग्रहान् दह दह गंधर्वं ग्रहान् दह दह ब्रह्म ग्रहान् दह दह राक्षस ग्रहान् दह दह भूत ग्रहान् दह दह दिव्यन्तर ग्रहान् दह दह चतसराशि जन्य मार्ग ग्रहान् दह दह चतुर्विंश जिन ग्रहान् दह दह सर्वं जटिल ग्रहान् दह दह अखिल मुंडित ग्रहान् दह दह जंगम ग्रहान् दह दह सर्वं दुर्गेशादि विद्या ग्रहान् दह दह सर्वं नगनिग्रहवासी ग्रहान् दह दह सर्वस्थलवासी ग्रहान् दह दह सर्वान्तरिक्ष वासी ग्रहान् दह दह श्मशानवासी ग्रहान् दह दह सर्वं पवनहार्त ग्रहान् दह दह सर्व धर्म शापादि गोशापवासी ग्रहान दह दह सर्वगिरिगुहा दुर्गवासी ग्रहान् दह दह शापित ग्रहान् दह दह सर्वनाथ पंथि ग्रहान् ह दह सर्वभूवासी प्रेत ग्रहान् दह दह (अमुक गृहे) असद्गति ग्रहान दह दह वक्रपिण्ड ग्रहान् दह दह सर्वदुष्ट ग्रहान् दह दह शतकोटि योजने दोषदायी ग्रहान् दह दह सहस्त्र कोटि दोष दह दह आसमुद्रात् पृथ्वी मध्ये देवभूत पिशाचादि (अमुकस्यो) परिकृत दोषान् तस्य दोषान् दह दह शत्रुकृतभिचार दोषान् दह दह घे घे स्फोटय स्फोटय मारय मारय धगि धगि धागय मुखे ज्वालामालिनी ह्रीं ह्रीं ह्री ह्रं ह्रौं ह्रः सर्वं ग्रहाणां हृदये दह दह पच पच छिंधि छिंधि भिंदि भिंदि दह दह हा हा स्फुट स्फुट थे थे।

क्षम्लुं क्षां क्षीं क्षुं क्षैं क्षौं क्षः स्तंभपः म्म्लूं भ्रां भ्रीं भ्रूं भ्रैं भ्रौं भ्रः बाडय बाडय। म्मलूं म्रां म्रीं म्रूं म्रैं म्रौं म्रः नेत्रं स्फोटय स्फोटय दर्शय दर्शय। यूम्लुं यां यीं यूं यैं यौं यः प्रेषय प्रेषय घ्म्लुं घ्रां घ्रीं घ्रुं घ्रैं घ्रौं घ्रः जठरं भेदय भेदय ग्म्लूं ग्रां ग्रीं ग्रुं ग्रैं ग्रौं ग्रः मुखै बंधयः बंधयः। रक्युं खां खीं खुं खैं खौं खः ग्रीवां भंजय भंजयः। छप्लुं छां छीं छूं छैं छौं छः अंत्रान् भेदय भेदय : द्रप्लुं द्रां द्रीं द्रूं द्रैं द्रौं द्रः महाविद्यु त्पामाणा स्त्रहन श्त्रैहन व्म्पुं व्रां व्रीं व्रूं व्रैं व्रौं व्रः समुद्रे मंजय मंजय द्म्पुं द्रां द्रीं द्रूं द्रैं द्रौं द्रः सर्वं डाकिनीं सुन्दरी मर्दयः मर्दय सर्वं योगिनी स्वज्जैय

स्वज्जैय। सर्वं शत्रुं ग्रासय ग्रासय ख ख ख ख ख ख ख खादय खादय सर्वं दैत्यान् विध्वंसय विध्वंसय सर्वं मृत्युं नाशय नाशय सर्वोपद्रवान् स्तंभय स्तंभय ज : ज : ज : ज : ज : ज : ज : ज्वरान् दह दह पच पच घुमु घुमु घुरु घुरु घुरु खरु खरु खंग रावण सुविद्ययां घातय घातय अखिल रुजान् दोषोदयान् कृत कार्यणाभिचारोत्थान (अमुकस्य) देहे स्थितान् अधुना रुज कारंकान् चन्द्रहास शस्त्रेण छेदय छेदय भेदय भेदय उरु उरु छरु छरु स्फुट स्फुट घे आं क्रौं क्षीं क्षं क्षैं क्षौं क्षः ज्वाला मालिनी (अमुकस्य) सौख्यं कुरु कुरु निरुजं कुरु कुरु अभिलाषित कामना देहि देहि ज्वाला मालिनीं विज्ञापतये स्वाहा।

आपने जिस प्रकार बताया था मैंने उसी प्रकार से इस मन्त्र को सिद्ध करने की व्यवस्था की थी। मैंने पूर्णिमा से इस अनुष्ठान को प्रारम्भ कर अगली पूर्णिमा के दिन इस अनुष्ठान का समापन किया था। प्रातः सूर्योदय के समय, मैं आसन बिछाकर पूर्व की तरफ मुंह करके आसन पर बैंठ जाता और अपने सामने गुग्गुल धूप लगा देता, मैंने रुद्राक्ष की माला से इसका जप प्रारम्भ किया था, माला में १०८ मनके थे। मैं रात्रि को ग्यारह बजे उस दिन का अनुष्ठान पूरा कर पाता, अनुष्ठान पूरा करने के बाद रात्रि को भूमि शयन करता और केवल दुग्ध तथा फलाहार ही लेता, अनुष्ठान के दिनों में मैंने व्रह्मचर्य का पूरी तरह से पालन किया था और अन्य किसी के भी घर का अन्न ग्रहण नहीं किया था।

अगली पूर्णिमा के दिन इस अनुष्ठान को समापन कर दूसरे दिन प्रतिपदा को मैंने ग्यारह अविवाहित बालकों को आंगन में बिठाकर उन्हें भोजन कराया था, आपने ऐसा ही आदेश दिया था।

आश्चर्य की बात यह है कि उसके बाद मेरे देखने की क्षमता में ही परिवर्तन आ गया है, किसी भी पुरुष या स्त्री को देखते ही उसके भूत और भविष्य का सारा जीवन आंखों के सामने नाचने लग जाता है, ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मैं चलचित्र देख रहा हूं। मैं अपनी आंखों के सामने उसका जन्म, जन्म की तारीख तथा वहां से लगाकर उसकी मृत्यु तक की सारी घटनायें स्पष्ट देखता रहता हूं। यह बात अलग है कि मैं सभ्यता के नाते उसे कहूं या न कहूं। परन्तु इससे किसी भी व्यक्ति की गोपनीयता मुझसे छिपी नहीं रहती।

वास्तव में यह मन्त्र अद्भुत और आश्चर्यचकित है, इससे आश्चर्यजनक फल प्राप्त हो रहे हैं। मैं सोचता हूं कि संसार में इससे प्रभावशाली और कोई मन्त्र शायद ही होगा।

यह आपकी मुझ पर विशेष कृपा है कि आपने इस प्रकार का अद्भुत मन्त्र देकर मेरे जीवन को धन्य किया है, इसके लिए मेरा रोम-रोम आपका आभारी है।

आपका शिष्य
ज्ञानेश्वर झा

अनंग साधना

परम पूजय स्वामी जी,

दण्डवत प्रणाम ।

आज से पांच वर्ष पूर्व आपके चरणों में उपस्थित हुआ था, संभवतः आपको मेरा स्मरण नहीं रहा होगा । मैं नैपाल में काठमाण्डू से एक सौ पचास मील दूर कोसाना गांव में रहने वाला युवक हूं और आपका नाम सुनकर आपके चरणों में उपस्थित हुआ था ।

आपके यहां आने से पूर्व मैं अपने जीवन से पूरी तरह से निराश हो चुका था, क्योंकि मैं सामान्य रूप से नपुंसक था । मैं सही रूप में संभोग करने में सक्षम नहीं था और इस सम्बन्ध में जितनी भी दवाइयां लेता उसका विपरीत असर ही मुझे प्राप्त होता ।

मैं अपने पिता का इकलौता पुत्र था, इसलिए वे मेरा विवाह करने को इच्छुक थे जिससे कि बहू घर में आ सके और पौत्र हो जिससे कि उनकी वंश परम्परा आगे बढ़े, परन्तु मैं अपने आपको भली प्रकार से जानता था क्योंकि बचपन में कुटेवें और कुसंगति में पड़कर अपने स्वास्थ्य को चौपट कर दिया था । मेरी इन्द्री कमजोर और टेढ़ी हो गई थी । मैं किसी कन्या का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहता था, इसलिए मैं विवाह करने को इच्छुक नहीं था ।

परन्तु मेरे पिता इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते थे और मैं शर्म के मारे उन्हें कुछ नहीं कह सकता था । फलस्वरूप कुछ समय बाद ही मेरा विवाह हो गया । मैं मन-ही-मन लज्जित रहने लगा । मेरी पत्नी मेरे घर आ गई थी, परन्तु मैं हर समय उससे कटा-कटा रहता, क्योंकि मेरे मन का चोर मुझे खाये जा रहा था ।

इस प्रकार लगभग एक महीना बीत गया और मैंने एक दिन भी पत्नी से बातचीत नहीं की, पिताजी मुझे ठेलकर छत पर भेज देते तो मैं अलग बिछौना बिछाकर सो जाता और ऐसा प्रदर्शन करता जैसे कि मुझे नींद आ गई हो ।

परन्तु यह कब तक चलता और एक दिन मेरे इस रहस्य का भण्डाफोड़ पत्नी के सामने हो गया । पत्नी को जब विश्वास हो गया कि मैं नपुंसक हूं और मैं किसी भी स्थिति में पत्नी की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता तो उसकी आंखों में आंसू आ गये । उस

समय मुझे जितनी ग्लानी और वेदना हुई थी उसे मैं ही जान सकता हूं। इस प्रकार का दुख और शर्म वही जान सकता है जो भुक्तभोगी हो।

उस रात मैं एक क्षण के लिये भी सो नहीं पाया। दूसरे दिन मैं विना घर वालों को बताये घर से भाग खड़ा हुआ। मैं किसी भी हालत में अपने जीवन को समाप्त कर देना चाहता था।

इस प्रकार मैं लगभग दो महीने भटकता रहा, न तो मेरे खाने का ठिकाना था और न रहने का आश्रय। मेरे पास जो थोड़ी बहुत पूंजी थी वह भी समाप्त हो गई। अतः मैं इलाहाबाद में मजदूरी करने लगा। मैं नित्य संगम पर जाकर सो जाता और यदि कोई साधु सन्यासी मिलता तो उसकी थोड़ी बहुत सेवा भी कर लेता।

एक दिन मैंने अपनी व्यथा एक संन्यासी को बताई तो उसने कहा कि इस संबंध में मेरे पास तो कोई उपाय नहीं है और गरम दवाइयां लेकर तुमने अपने शरीर को बर्बाद कर दिया है। अतः दवाइयों से अब तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता, यदि कोई 'मदन साधन मंत्र' का ज्ञान तुम्हें दे या तुम 'अनंग यंत्र' प्राप्त कर सको तो तुम्हारी समस्या का हल हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट बताया कि मैं ऐसे किसी भी साधु को या पण्डित को नहीं जानता, परन्तु मैंने जोधपुर के श्रीमाली जी का नाम अवश्य सुना है, वे समर्थ हैं और यदि तुम्हारी समस्या का समाधान कोई भी कर सकता है तो वे ही कर सकते हैं।

मेरे मन में जिन्दा रहने की आशा जगी और मैं उसी दिन जोधपुर के लिये रवाना हो गया। जोधपुर में मैं एक धर्मशाला में टिक गया, परन्तु आपके सामने आने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

एक दिन मन कड़ा करके आपके सामने उपस्थित हुआ और अपनी पूरी राम कहानी आपके सामने प्रकट कर दी। मैं बात कहता जा रहा था और साथ-ही-साथ मेरी आंखों से आंसू भी बहते जा रहे थे। संभवतः आपको मेरे आंसुओं पर तरस आया होगा और आपने मुझे अनंग मंत्र का ज्ञान दिया था और बताया था कि इस मंत्र का एक लाख जप नदी के किनारे किया जाय और जप समाप्ति के बाद एक हजार चमेली के पुष्पों से आहुति दी जाय तो तुम वापस पूर्ण पुरुष बन सकते हो और तुम्हारी वंश परम्परा कायम रह सकती है।

आपने जो मंत्र दिया था वह इस प्रकार था :

मंत्र

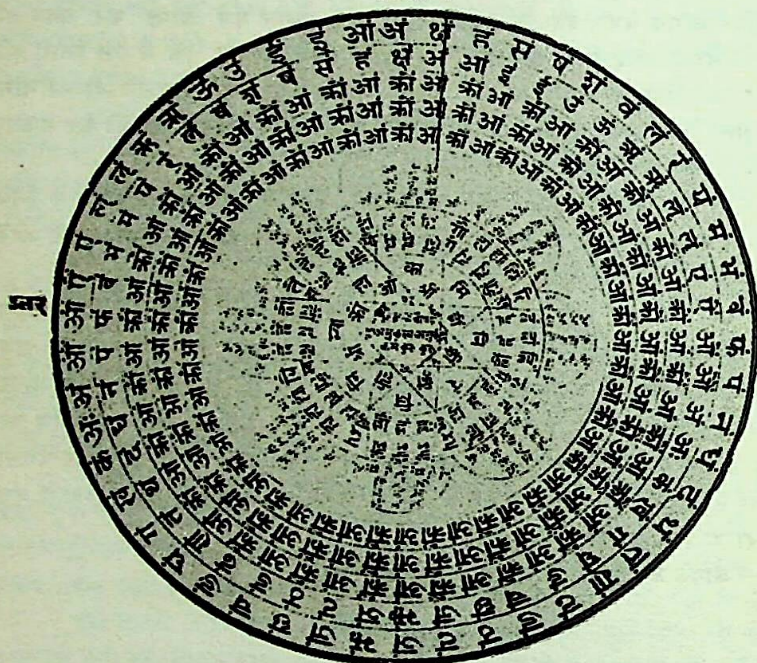
ओम एं मदने मदनविद्रावणे अगंसगमे देहि
देहि क्रीं-क्रीं स्वाहा।

मैं वापस इलाहाबाद आ गया था, और संगम तट पर इस मंत्र का जप प्रारंभ कर दिया था। चौदह दिनों में मैंने इस मंत्र का एक लाख जप कर दिया था। दिन में

मैं एक समय भोजन करता और गंगा के किनारे इस मंत्र का जप करता। पन्द्रहवें दिन मैंने गंगा के किनारे ही एक हजार चमेली के पुष्पों से आहुतियां देकर अनुष्ठान को आपके बताये हुए तरीके से सम्पन्न किया था।

उस रात्रि को पहली बार मुझे अनुभव हुआ जैसे मैं सक्षम पुरुष हूं। मैंने अपने शरीर को स्पर्श किया तो प्रसन्नता के मारे चीख निकल पड़ी और मुझ में आश्चर्य-जनक परिवर्तन आ गया।

अनुष्ठान सम्पन्न कर मैं सीधा अपने घर चला आया। घर वाले यह समझ चुके थे कि मैं हमेशा-हमेशा के लिए घर से चला गया हूं। मुझे पाकर उनकी प्रसन्नता



अनंग यंत्र

का ठिकाना न रहा। उसी दिन रात्रि को मैंने पूर्ण सन्तुष्टि के साथ अपने पौरुष का प्रदर्शन किया। मेरी पत्नी और मैं पूर्णतः सन्तुष्ट थे।

आज मेरे दो पुत्र तथा एक पुत्री है, और यह जो कुछ भी है वह आपकी कृपा के फलस्वरूप ही है। इसके बाद मैं ऐसे तीन और युवकों को यह अनुष्ठान सम्पन्न करवा चुका हूं और वे पुनः नया जीवन प्राप्त कर चुके हैं।

मैं लज्जा के साथ यह पत्र लिख रहा हूं क्योंकि मैं पिछले पांच वर्षों से आपको पत्र नहीं दे सका। आपने मुझे जीवन दान दिया है और मुझ में एक नई चेतना जाग्रत की है। मेरे वंश को आगे बढ़ाने में आपका ही मंत्र सहयोग रहा है, इसके लिए मैं और मेरा पूरा परिवार आपका आभारी है।

इस महीने के अन्त में मैं अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ आपके दर्शनों के लिए आ रहा हूं। पिछली बार जब मैं आपके यहां आया था तब मैं कुछ भी भेंट करने के योग्य नहीं था, परन्तु इस बार मैं आपके चरणों में पत्र पुष्प अर्पित कर अपने मन के वेग को शान्त करना चाहता हूं।

मुझे विश्वास है कि इस महीने के अन्त में आप जोधपुर में ही होंगे, जिससे कि मैं और मेरा परिवार आपके दर्शन कर जीवन को सफल बना सके।

भवदीय,
(शमशेर बहादुर राणा)

दत्तात्रेय-साधना

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर चरण स्पर्श ।

आपकी कृपा से मैं सकुशल घर पहुंच गया था । आपने जिस प्रकार से दत्तात्रेय साधना करने को कहा था उसी प्रकार से मैंने उस साधना को सम्पन्न किया है और उसका अनुकूल परिणाम भी मुझे प्राप्त हुआ है ।

आपने मुझे आज्ञा दी थी कि मैं साधना सम्पन्न कर उससे संबंधित अनुभव को आपके सामने रखूं ।

यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे इस बार आपके चरणों में बैठकर 'दत्तात्रेय साधना' सीखने का अवसर मिला । आपने बताया था कि यह साधना अभी तक गोपनीय रही । बहुत ही कम साधकों को इस साधना का ज्ञान रहा है । यह मेरे ऊपर आपका विशेष अनुग्रह है कि आपने कृपा कर इस साधना को करने के लिए मुझे प्रेरित किया ।

आपने बताया था कि यदि किसी का बालक खो जाय, या उसका पता नहीं चले, इसी प्रकार किसी भी बन्धु बान्धव के खो जाने पर इस प्रकार की साधना सम्पन्न की जाती है, फलस्वरूप खोया हुआ प्राणी साधना सम्पन्न होते-होते घर आ जाता है ।

आपके कहने के अनुसार मैंने इस साधना को शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा से प्रारम्भ किया । सर्वप्रथम मैंने अलग कक्ष में एक ऊनी आसन बिछा दिया था और उसके सामने एक लकड़ी का बाजोट या तख्ता रख दिया था जो डेढ़ फुट लम्बा तथा डेढ़ फुट चौड़ा था । उस पर लाल वस्त्र बिछा दिया था और उस पर चावलों से दत्तात्रेय यंत्र बना दिया था जो कि आपने मुझे बताया था ।

इसके बाद इस यंत्र पर एक कांसी का कटोरा रखकर उसमें एक किलो तेल भर दिया था और उसके सामने एक छोटा-सा दीपक भी जलाकर रख दिया था ।

पूर्णिमा की रात्रि को स्नान कर लाल धोती पहन नौ बजे मैं आसन पर बैठ गया और फिर दत्तात्रेय यंत्र की षोडशोपचार पूजा कर उस पर जो तेल का पात्र था उसकी भी पूजा की ।

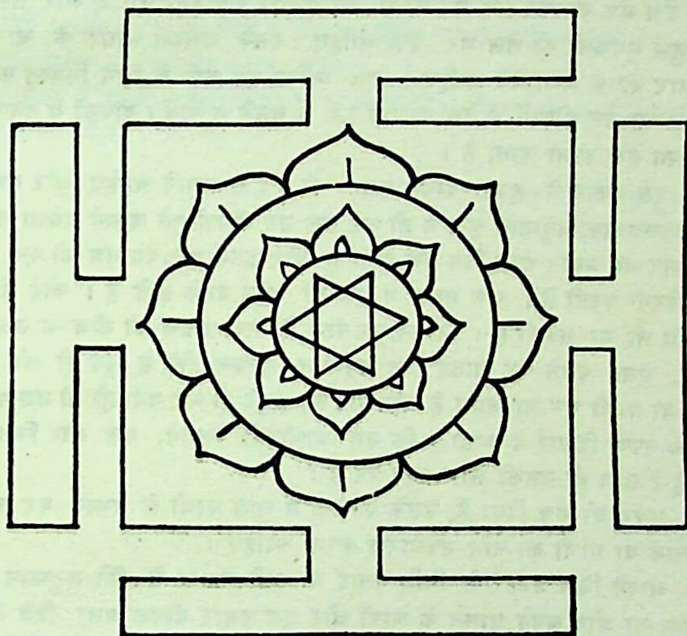
तत्पश्चात् संकल्प कर मैंने आपके बताये हुए तरीके से दत्तात्रेय मंत्र की इक्यावन मालाएं फेरीं । आपने मुझे जो मंत्र बताया था वह इस प्रकार था :

मंत्र

ओम् ह्रीं क्लीं ऐं श्रीं महायक्षिण्ये
(लुप्त प्राणी) आगच्छ स्वाहा

रात्रि को जब इक्यावन मालाएं समाप्त हुईं तो मैं वहीं आसन पर सो गया। दिन को मैं एक समय भोजन करता और व्यसन आदि का परित्याग कर दिया था।

इस प्रकार तीन रात्रि तक मैंने प्रयोग कर दत्तात्रेय मंत्र को सिद्ध कर दिया।



दत्तात्रेय मंत्र

संयोगवश उन्हीं दिनों मेरे गांव के सेठ श्री कस्तूरचन्दजी के इकलौते पुत्र का अपहरण हो गया था, और दो महीने बीतने पर भी उसका कोई पता नहीं लग रहा था। पुलिस एक प्रकार से थक गई थी और सेठजी भी पूरी तरह से निराश हो गये थे।

एक दिन सेठजी को किसी ने बताया कि मैं श्रीमाली जी से दत्तात्रेय साधना सीखकर आया हूं जो कि इस प्रकार के कार्यों के लिये उपयुक्त है। तब सेठजी ने मुझसे निवेदन किया कि मेरा इकलौता पुत्र रमेश का अपहरण हो गया है और दो महीनों से पता नहीं चल रहा है, अतः आप यदि श्रीमालीजी से इस प्रकार की कोई साधना

सीखकर आये हों तो कृपया उस अनुष्ठान को सम्पन्न कर दें, जो भी व्यय आयेगा मैं वहन करने को तैयार हूं।

यह मेरा पहला अवसर था। मैंने इस अनुष्ठान को करने का निश्चय कर लिया और दूसरे दिन से ही इसके लिये व्यवस्था प्रारंभ कर दी। आपने बताया था कि मंत्र सिद्ध होने पर किसी भी दिन से इस अनुष्ठान को प्रारम्भ किया जा सकता है और यह अनुष्ठान प्रातः नौ बजे से प्रारंभ होकर सायं पांच बजे तक चलता है। इसमें आसन बिछाकर पूर्व की ओर मुंह करके बैठना चाहिए और सामने तख्ते पर चावलों से दत्तात्रेय यंत्र बनाकर उस पर कांसी का कटोरा रख देना चाहिए और उसमें एक किलो शुद्ध मूंगफली का तेल भर देना चाहिए। इसके अलावा साधक के चारों ओर एक हजार दीपक जला देने चाहिए। एक व्यक्ति इस कार्य के लिये नियुक्त कर देना चाहिए। वह उन दीपकों में तेल डालता रहे, वे बुझने न पावें। दीपकों में मूंगफली या तिल्ली का तेल डाला जाता है।

इस प्रकार वे हजार दीपक प्रातः नौ बजे से जलाने चाहिए और सायं पांच बजे तक जब तक अनुष्ठान पूरा न हो तब तक उन दीपकों को जलाये रखना चाहिए। इस प्रकार यह प्रयोग सात दिन तक होता है और इसमें दत्तात्रेय मंत्र की एक सौ एक माला फेरनी पड़ती हैं। एक माला में एक सौ आठ मनके होते हैं। कोई भी माला प्रयोग में ली जा सकती है। आसन पर बैठने के बाद साधक को बीच में उठना नहीं चाहिए, ऐसा करने पर सातवें दिन अनुष्ठान सम्पन्न होने से पूर्व ही खोया हुआ बालक या प्राणी घर आ जाता है और यदि वह पहले ही मर गया हो तो उस कटोरे में वह दृश्य स्पष्ट दिखाई दे जाता है कि उस प्राणी को किसने, कब और किस प्रकार मारा है ? साथ ही उसकी लाश कहां पर है ?

ऊपर जो मंत्र दिया है, उसके कोष्टक में लुप्त प्राणी के स्थान पर उस खोए हुए बालक या प्राणी का नाम उच्चारण करना चाहिए।

आपने जिस प्रकार से विधि बताई थी उसी प्रकार से मैंने अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया था और अपने आसन के चारों ओर एक हजार दीपक जला दिये थे। एक व्यक्ति इस बात का ध्यान रखता कि किसी भी दीपक का तेल समाप्त न हो जाय।

अनुष्ठान प्रारम्भ होने के चौथे दिन ही सेठजी का पुत्र रमेश घर आ गया था। उसने जो कहानी बताई वह आश्चर्यजनक थी। उसने बताया कि मुझे डाकू अपहरण करके ले गये थे और किसी एक पहाड़ी में छुपाकर रख दिया था, परन्तु आज से चार रोज पूर्व (जिस दिन से अनुष्ठान प्रारंभ हुआ) एक डाकू का सरदार से मतभेद हो गया और वह रात्रि को चुपचाप मुझे उठाकर भाग गया। उसने आज प्रातः गांव के पास मुझे लाकर छोड़ दिया और कहा कि मेरे भी तुम्हारी उम्र का ही एक पुत्र था जिसे डाकू उठाकर ले गये थे और उसे मार दिया था। उस समय जो मुझे वेदना हुई थी वैसी ही वेदना तुम्हारे माता-पिता को होती होगी, इसलिये मैं तुम्हें छोड़ देता हूं जिससे कि तुम अपने दुखी माता-पिता से मिल सको।

जब बालक घर आ गया तो चौथे दिन सायं मैंने अनुष्ठान को समाप्त कर दिया। वास्तव में ही यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसके लिये मैं आपका अत्यधिक कृतज्ञ हूं। बालक के घर आने से सेठजी को जो प्रसन्नता हुई है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, साथ-ही-साथ इस कार्य से मेरी प्रतिष्ठा आसपास के गांवों में बहुत अधिक हो गई है।

परन्तु पण्डितजी यह सम्मान और प्रतिष्ठा मेरी नहीं अपितु आपकी है। पिछले दस वर्षों से मैं आपसे सम्पर्क रख रहा हूं और इन दस वर्षों में आपने जो-जो साधनाएं मुझे दी हैं वे अद्‌भुत हैं। मानव कल्याण में सहायक हैं। जैसा कि आपने कहा था मैं पुन: आपके चरणों की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इन मंत्रों का उपयोग जन-कल्याण के लिये ही करता रहूंगा।

नवरात्रि में मैं आपके चरणों में उपस्थित होना चाहता हूं, इसकी स्वीकृति देने की अनुकम्पा करें।

आपका चरणानुरज,
केशव नारायण 'संपा')

Skill in correspondence ensures
Brighter Career... Faster Promotion... Sure Success in Business...

Rapidex
Self Letter Drafting Course



Whether you are an administrator or a supervisor office superintendent or a steno-typist—**the skill in correspondence is an art you must master**, because almost every situation, every occasion calls for a well-drafted letter And with this skill in hand none can stop you from getting ahead.

While other books teach you to copy readymade letters given in them, this course will teach you how to draft a letter of your own choice.

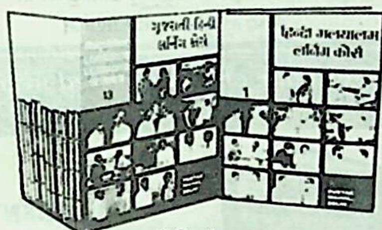
FEATURES

- Sentences and phrases in abundance.
- Tick mark the required ones.
- Arrange in proper order instantaneously.
- Shape & mould the way you want to.

....:And now make as many letters as you want on the same subject.

DIVIDED UNDER 3 SECTIONS.
It takes care of your personal and social letters, commercial correspondence and applications for job.

कोई भी भाषा सीखें



रैपिडैक्स
लैंग्युएज लर्निंग सीरीज़
इतनी सरल व ग्राह्य सीरीज़ कि आप कुछ ही दिनों में काम चलाने लायक कोई भी भारतीय भाषा बोलने और समझने लगेंगे

12 खण्डों की सीरीज़ की पुस्तकें

हिन्दी-तेलुगू लर्निंग कोर्स
हिन्दी-कन्नड़ लर्निंग कोर्स
हिन्दी-तमिल लर्निंग कोर्स
हिन्दी-बंगला लर्निंग कोर्स
हिन्दी-गुजराती लर्निंग कोर्स
हिन्दी-मलयालम लर्निंग कोर्स
इसी प्रकार प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी सीखने के लिए भी 6 पुस्तकें उपलब्ध

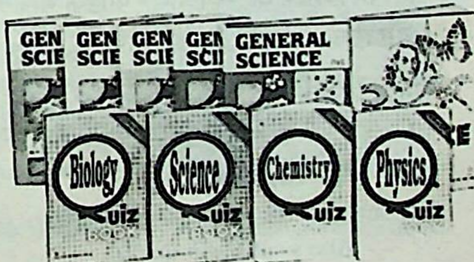
सभी पुस्तकें लगभग 250 पृष्ठों में
प्रत्येक पुस्तक का मूल्य: 42/- डाकखर्च: 6/- प्रत्येक

Books for Science Students

General Science
A series of five books
The series provides help and guidance on all the major branches of science—*Physics, Chemistry, Biology, Geology & Astronomy.*
Price: 20/- each • Postage: 5/- each

Quiz Series
(Work-Books for Physics, Chemistry, Biology & Science)
Each book in this series contains 1000 quiz type questions covering almost every branch of particular science with answers.
Price: 15/- each • Postage: 4/- each Also in Hindi

Know Science
Know Science offers pupils in the 10 13 age range 1000 questions in the general field of science
Price: Rs. 15/- Postage: Rs. 4/-



Master Computer Today For A Better Tomorrow

Computers are invading every facet of a person's life—the home, the office, the classroom or the play ground. Whether in job or business, they are opening up bright new vistas of knowledge and happiness.





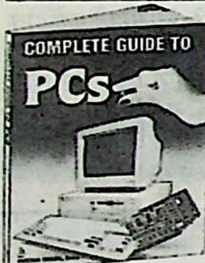
— *Er. V.K. Jain*

- **Computer for Beginners**
- **Basic Computer Programming**

The twin-books are a must for those who are interested in computers, their function and operation, but are discouraged by their complexities. All is made easy through simple language and instructive illustrations.

The books are designed for mass education as per Computer Literacy Project of NCERT and also conform to course on computers recently undertaken by C.B.S.E.

Big Size 192 & 172 pages respectively
Price: Rs. 40/- each Postage : Rs. 6/- each



A Complete Guide to PCs

★ Creates awareness about modern computer—Hardware & Software & how these can serve as productivity aids.

★ Imparts working knowledge of Computer technology, Software Packages like Word-Star, Lotus 1-2-3, dBASE-III etc. to an ordinary man avoiding technical words.

★ Helps in assessing the operations that require computer.

Price : Rs. 48/- Postage : Rs. 6/-

कद बढ़ाने के अनुभूत तरीके



अपना कद बढ़ाइये

मूल्यः 20/-
डाकखर्च : 5/-
Also available in English

प्रस्तुत है कद लम्बा करने का आजमाया हुआ वैज्ञानिक अनुसंधान! इसमें यूरोप और अमरीका में टेस्ट किया हुआ ऐसा सचित्र कोर्स दिया गया है जिसकी मदद से आप ***केवल 15 मिनट प्रतिदिन अभ्यास द्वारा कुछ ही हफ्तों में अपनी हाइट 10 सेमी. तक तो बढ़ा ही सकते हैं।***

बिना हथियार मारधाड़ की जापानी कलाएं

जूडो कराटे

(जुजुत्सु-बॉक्सिग सहित)

मूल्यः 20/- डाकखर्चः 5/-
पृष्ठ : 128
Also available in English



हिन्दी में पहली बार प्रकाशित 300 से अधिक दांव-पेंचों का सचित्र कोर्स। इसकी मदद से आप चाकू, लाठी, भाला आदि के वार से अपना बचाव करके अपने से चार गुना ताकतवर हमलावर को भी चुटकियों में धराशायी कर सकते हैं।

आप भी सीखो करना बुनाई



आधुनिक बुनाई शिक्षा

पुस्तक में 200 से अधिक नई बुनतियों से ऊनी वस्त्र तैयार करने की विधियां दी गई हैं। साथ में उनकी धुलाई व दाग-धब्बे छुड़ाने के विभिन्न तरीके भी दिये गये हैं।

मूल्यः 60/- • डाकखर्चः 6/-

खेल-खेल में जादू सीखो, खेल साइंस के खेलो—ज्ञान बढ़ाओ, रौब जमाओ, मित्रों में यश लेलो

101 मैजिक ट्रिक्स

—आइवर यूशिएल



इस सचित्र पुस्तक में दी गई हैं—ऐसी 101 शानदार व जानदार ट्रिक्स, जिनका समझना जितना सरल है, उनका प्रदर्शन उससे भी आसान! बस! जरूरत है तो थोड़े से अभ्यास के साथ चन्द ऐसी चीजों की, जो तुम्हें आसानी से उपलब्ध हो जाएंगी।

ट्रिक्स की एक झलक: ■ *टूटी माला फिर तैयार* ■ *गिलास का पानी गायब करना* ■ *रूमाल आग से न जले* ■ *सर पर रखा हैट स्वयं उछले आदि....*

पृष्ठ: 120 • मूल्य: 32/- • डाकखर्च: 6/-

Also available in English

101 साइंस गेम्स

—आइवर यूशिएल



विज्ञान के 101 खेलों की यह पुस्तक खेल ही खेल में कुछ ऐसे वैज्ञानिक उपकरण बनाना सिखा देती है, जो बनेंगे तो खिलौने ही पर बच्चों को बिलकुल असली उपकरण जैसा ही आनंद देंगे। जैसे—***बैरोमीटर, विद्युत-चुम्बक, हैक्टोग्राफ, स्टीम टरबाइन, इलेक्ट्रोस्कोप आदि....***

इनके अलावा बहुत से अन्य रोचक प्रयोग जैसे—***कागज के बर्तन में पानी उबालना, भाप से नाव चलाना आदि*** 101 मनोरंजक जादू से प्रतीत होने वाले वैज्ञानिक खेल।

पृष्ठ: 120 • मूल्य: 32/- • डाकखर्च: 6/-

Also available in English

योगाभ्यास द्वारा किसी भी रोग से छुटकारा पाइये!



योगासन एवं साधना

योगासन पर सबसे ज्यादा बिकने वाली पुस्तक

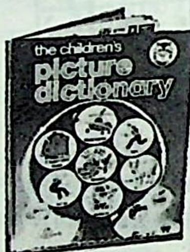
• आसनों का सुबोध व सचित्र विवरण • प्राणायम विधि • चक्षु-व्यायाम • पौष्टिक भोजन • योगासनों द्वारा रोग निदान आदि.....

योगासन सैकड़ों शाखाओं में प्रतिदिन हजारों योगाभ्यासी रोगों से छुटकारा पा जीवन का आनन्द ले रहे हैं।

डिमाई साइज • पृष्ठ: 120 • मूल्य: 24/- • डाकखर्च: 4/-

Also available in English

Get your child admitted in a public school



CHILDREN'S PICTURE DICTIONARY

All in colour

- Successfully prepares your child for admission in a Public School.
- Contains 1500 words of daily use.
- Each & every word has been explained with colourful pictures & small & simple sentences.

The Dictionary is really a treasure-trove of knowledge for your children wherein they will discover the names of... • *Birds* • *Animals* • *Fruits* • *Vegetables* • *Colours* • *Parts of Body etc.*

Giant Size Price: 40/- Postage: 6/-

Out with all Stains

Spot Check



Straightforward tips to cope with all types of stains. A full section on fabrics with a comprehensive chart. Tackle stains on Wallcoverings, Carpets, Pots, Furniture, Metals etc.

यह पुस्तक हिन्दी में भी उपलब्ध है।
Price: Rs. 20/- • Postage Rs. 6/-

घर में ही ब्यूटी क्लीनिक

होम ब्यूटी क्लीनिक

—परवेश हांडा



घर-बैठे ब्यूटी क्लीनिक जैसे मेकअप की विधियां सिखाने वाली एक ऐसी पुस्तक, जिसमें त्वचा की देखभाल, शरीर को सुडौल बनाने संबंधी व्यायाम तथा आकर्षक हेयर स्टायल्स आदि की संपूर्ण जानकारी दी गई है।

बड़ा आकार 140 पृष्ठ • मूल्य: रु. 40/-

समय और धन की बचत करें

गृह-उपयोगी नुक्ते (Home Hints)

Also available in English.



चीजों के लंबे समय तक बिना सड़े-गले भंडारण की विधियां, बोतलों, टी-पॉट आदि की सफाई सहित हजारों नुक्तों का एक बहुरंगी सचित्र संकलन।

मूल्य: 20/- • डाकखर्च: 6/-

आधुनिक केश-सज्जा सीखो

मॉडर्न हेयर स्टायल्स

-आशारानी व्होरा



इस पुस्तक की मदद से किसी भी प्रकार की हेयर सैटिंग घर में ही कीजिए। बॉय-कट, बॉब-कट, राउण्ड-कट, स्ट्रेट-कट, फीजर-कट, स्टैप्स, पोनी-टेल, रिंगलट्स, शोल्डर-कट, शेग-स्टायल या स्विच-सज्जा—मूल्य: 24/- डाकखर्च: 6/-

कमर पतली कीजिए

लेडीज स्लीमिंग कोर्स



केवल ***15 मिनट*** रोज के इस कोर्स की मदद से आप अपनी कमर और पेट पर चढ़ी फालतू चरबी शीघ्र ही घटा सकती हैं और अपनी कमर का नाप ***पांच दिन में सात-आठ सेंटीमीटर*** तक कम कर सकती हैं। मूल्य: 30/- डाकखर्च: 5/-

18 विशेषज्ञ डाक्टरों के इंटरव्यूज़ पर आधारित

बेबी हेल्थ गाइड

-आशारानी व्होरा



यह गाइड बच्चों से संबंधित सभी विषयों का एक अनूठा एनसाइक्लोपीडिया है, जिसमें उनके शारीरिक रोगों से लेकर उनके मनोविज्ञान तक के सभी पहलुओं को सविस्तार समझाया गया है।

मूल्य: 48/- डाकखर्च : 6/-

मोटे पतले हो सकते हैं



20 दिन में
मोटापा घटाइये

Also available in English

मोटापा भयंकर बीमारियों की जड़ है, सैक्स-क्रीड़ा में बाधक है, सेहत के लिए अभिशाप है। **केवल 15 मिनट नित्य का कोर्स लगातार 20 दिन तक करिए,** आपको आश्चर्यजनक फर्क नजर आएगा।

मूल्य: 20/- डाकखर्च: 5/- पृष्ठ: 72

बाटिक कला सीखिए



बाटिक कला

बड़े साइज के 120 पृष्ठ
मूल्य: 30/- • डाकखर्च: 6/-

घर की सजावट के साज-सामान से लेकर पहनने के वस्त्रों तक पर बाटिक कला का प्रयोग कर—***पर्दे, मेजपोश, टीकोजी, रेडियो कवर, चादरें, कुशन, साड़ी-ब्लाउज़*** आदि पर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे डिजाइन बना सकते हैं।

पेंटिंग सिखाने वाला कोर्स

ड्राइंग
तथा
पेण्टिग कोर्स
—ए.एच. हाशमी



इस कोर्स की मदद से आप कुछ ही दिनों में आकृतियों के एक्शन से भरे चित्र तथा सीन-सीनरियां, वाटर-कलर, ऑयल-कलर, एक्रेलिक-पेंटिंग, हिन्दी-अंग्रेजी लैटरिंग आदि सीख कर लाभान्वित हो सकते हैं।

पृष्ठ: 144 • मूल्य: 32/- • डाकखर्च: 6/-

आकस्मिक दुर्घटना के समय

प्राथमिक उपचार
(First Aid)

मूल्य: 20/- डाकखर्च: 5/-
Also available in English



पुस्तक में डाक्टरी सहायता उपलब्ध होने तक दिल का दौरा पड़ने, करंट लगने, विषाक्त भोजन खाने, जल जाने, चोट से निरंतर खून बहने, हड्डी टूटने आदि जैसी अनेक आकस्मिक दुर्घटनाओं से जूझने की विधियां दी गई हैं।

Bring Greenery Indoors



House Plants

Price: Rs. 20/-
Postage: Rs. 6/-

Tips on indoor greenery. Get to know all about choosing. buying. watering and feeding House plants.... Bottle gardens.... Flowering and Foliage plant.... from BULBS to BONSAI

रसोई की रानी बनिये



भारतीय व्यंजन
—कुमुदिनी मुंशी

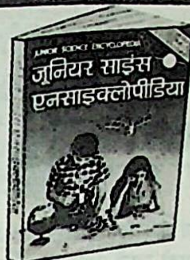
मूल्य: 20/- • डाकखर्च: 5/-

परांठे, पूरी, सब्जियां, बाटी, कढ़ी, कोफ्ते, सलाद, चटनी, मुरब्बे, अचार, खीर, हलवा, डोसा-इडली, कचौरियां, शरबत, आइसक्रीम

हिन्दी में पहली बार प्रकाशित बहुरंगी एनसाइक्लोपीडिया

जूनियर साइंस एनसाइक्लोपीडिया

(Junior Science Encyclopedia)



256 पृष्ठों में *800* से भी अधिक रंगीन चित्रों एवं *80,000* शब्दों की पाठ्य-सामग्री से युक्त प्रस्तुत एनसाइक्लोपीडिया वैज्ञानिक विषयों पर लिखा गया एक अमूल्य संदर्भ-ग्रंथ है। बच्चे की हर **'क्यों', 'कैसे'**, और **'कहां'** का उत्तर देने में सक्षम एक संग्रहणीय ग्रंथ!

मूल्य: 300/- डाकखर्च: 10/-

पांच खंड

1. पृथ्वी एवं ब्रह्मांड, 2. नाप, गति एवं ऊर्जा, 3. प्रकाश, दृष्टि तथा ध्वनि, 4. इलेक्ट्रॉनों की उपयोगिता, 5. खोज एवं आविष्कार।

Published in India in collaboration with Hamlyn Publishing London.

सुविख्यात पाक-कला विशेषज्ञा 'श्रीमती आशारानी व्होरा' द्वारा प्रस्तुत

मॉडर्न कुकरी बुक

भारतीय एवं पश्चिमी स्टायल में किचन सैटिंग के 15 से अधिक फोटोग्राफ्स, रसोईघर के आवश्यक सामान व आधुनिक उपकरणों सहित।



बड़े साइज के
148 पृष्ठ
सैकड़ों रेखा व छाया चित्र
मूल्य : 24/-
डाकखर्च : 5/-
Also available in English

- मेहमानों का स्वागत कैसे करें, परोसने के क्या-क्या तरीके हैं, व्यंजनों को प्लेटों में कैसे सजाएं तथा डायनिंग टेबल पर प्लेटो व क्रॉकरी आदि को कैसे सजाएं।
- दैनिक नाश्ते, लंज़ीज़ सब्जियां तथा विशेष अवसरों के लिए मीठे व नमकीन विशिष्ट पकवानों के साथ-साथ जैम, मुरब्बा, जैली, आइसक्रीम, कुल्फी, स्कवैश, फ्रूट-कस्टर्ड, अचार, चटनी, सॉस, सलाद, सूप, सैंडविच और फ्रूट-काकटेल आदि व्यंजनों को बनाने की सचित्र विधियां।

चमत्कारी किरण—लेसर

रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत



एक ऐसा चमत्कारिक आविष्कार, जिसके उपयोगों ने आज सारे संसार में धूम मचा दी है। ***लेसर क्या है तथा लेसर के 50 से भी अधिक -उपयोगों की सचित्र जानकारी।***

बड़े साइज़ के
112 पृष्ठ
मूल्य: 24/-
डाकखर्च: 6/-

अपने लाड़लों के लिए कोई भी मनपसन्द नाम चुनिए!

बच्चों के 2001 नाम



मूल्य: 10/- डाकखर्च: 4/-

(In Two Colour)

N.C.E.R.T. द्वारा पुरस्कृत

51 महान आविष्कार
–राजेन्द्र कुमार राजीव



पुस्तक में आज के विज्ञान और आधुनिक सभ्यता का आधार समझे जाने वाले हजारों साल पहले के पहिए के आविष्कार से लेकर आधुनिक युग के राडार कम्प्यूटर, रॉकेट आदि तक के आविष्कारों का सचित्र वर्णन किया गया है।

बड़े 168 पृष्ठ • मूल्य: 40/- • डाकखर्च: 6/-

जीव-जन्तुओं की आत्मकथाएं

हम जीव-जन्तु
लेखक–रवि लायटू
भूमिका–रामेश बेदी

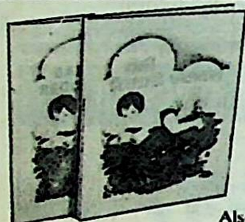


जीव-जन्तुओं के संसार के 50 सदस्यों की रोचक आत्मकथाएं, उनकी जबानी सुनिए–

* *वे किस जात बिरादरी के हैं?*
* *उनकी दिनचर्या क्या है?*
* *वे क्या खाते-पीते हैं? आदि-आदि....*

बड़े 116 पृष्ठ • मूल्य: 24/- • डाकखर्च: 6/-

नवजात शिशु के लिए सर्वोत्तम उपहार



बेबी रिकार्ड एलबम

Also available in English

समें आप अपने बच्चे के जन्म से अगले पाच वर्ष क के सीढ़ी-दर-सीढ़ी विकास (दंत-अंकुरण, हली वार बैठना व चलना आदि), जन्म संबंधी विवरणों (जन्म तिथि, जन्म का वजन, लंबाई व कुंडली आदि), के रिकार्ड के साथ ही प्रत्येक अवसर के स्मरणीय फोटो भी संजो सकते हैं।

पृष्ठ : 52 मूल्य: 60/- डाकखर्च: 6 /-

लैटरिंग की आकर्षक विधियां सीखो



इंगलिश-हिन्दी मॉडर्न लैटरिंग
लेखक: ए.एच. हाशमी

- अक्षरों की बनावट का वर्गीकरण तथा बेसिक बनावट, स्ट्रॉक्स लगाने के तरीके, पैन, स्टील तथा फ्लैट ब्रुश द्वारा लैटरिंग।
- अक्षराकन के मूल सिद्धांत। सभी तरह की अंग्रेजी-हिन्दी लैटरिंग करने की विधियां तथा सैकडों आकर्षक नमूने।

172 पृष्ठ • मूल्य: 60/- • डाकखर्च: 6/

अपना मनपसन्द वाद्य बजाना सीखिए

- *सितार सीखिए*
- *गिटार सीखिए*
- *वायलिन सीखिए*
- *हारमोनियम सीखिए*
- *मैंडोलिन व बेंजो सीखिए*
- *तबला व कोंगो-बोंगो सीखिए*



संगीताचार्य श्री रामावतार 'वीर' रचित

युवा पीढ़ी के चहेते वाद्य, जिन्हें बिना शिक्षक के सरलता से सीखा जा सकता है और हमारे इन कोर्सों की मदद से आप कुछ ही दिनों में फिल्मी

मूल्य: 30/- • डाकखर्च: 5/- प्रत्येक



PUSTAK MAHAL

ORDER FORM

Please send me the following books by V.P.P. My address is given below. I promise to pay the amount of V.P.P. on its presentation. I have sent Rs. .... by M.O./Draft No.................................. Please adjust this amount in the value of books.

1. ______________________________
2. ______________________________
3. ______________________________
4. ______________________________
5. ______________________________

- Please note that it is uneconomical for us to send books by V.P.P. Ask by V.P.P. only when you fail to get locally;
- Please do not refuse to accept the V.P.P. Honour it and write to us if you have any complaint.
- The V.P.P. charges given against each book is subsidised by 20% to 40% in actuals. Besides this we spend Rs. 3/- on each packet on its packing & forwarding.

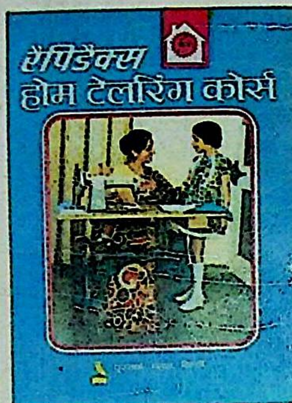
Name & Address

PIN | | | | | | |

Cut it from here

घर-घर के लिए महिलोपयोगी पुस्तकें

रैपिडैक्स होम टेलरिंग कोर्स



पृ. 320, मूल्य: 60/-

श्रीमती आशारानी व्होरा द्वारा लिखित इस कोर्स से आप घर बैठे दर्जियों जैसी टेलरिंग सीख सकती हैं। पुस्तक में घर भर की पोशाकों.... अर्थात् नन्हें-मुन्नों की नेपकिन से लेकर पुरुषों की कमीज-पैं[illegible] कुल [illegible] [illegible] की [illegible], कटाई [illegible] सिलाई की सचित्र जानकारी। *मनमोहक फ्राकें* गृह-सज्जा के लिए परदे, कुशन आदि * पुराने कपड़ों से बच्चों के कपड़े बनाना * भांति-[illegible] की डॉट्स, चुन्नट, प्लीट्स, जेबें, आस्तीन, कालर [illegible] आदि * कलपुर्जों की जानकारी भी।

आ टी आई, गवर्नमेन्ट पालिटेक्निक्स एवं सैकड़ों टेलरिंग इन्स्टिट्यूटों में अपनाया गया कोर्स।

लेडीज़ हैल्थ गाइड



पृ. 410, मूल्य :60/-

श्रीमती आशारानी व्होरा द्वारा एवं 25 विशेषज्ञ डॉक्टरों के इंटरव्यूज पर आधारित इस पुस्तक में आपकी हर सौन्दर्य समस्या का समाधान किया गया है जैसे * सौन्दर्य-समस्याएं : बेडौलपन, अपुष्ट वक्ष, छोटा कद, बालों का झड़ना, चेहरे की कमियां आदि। * आम शिकायतें : मासिक धर्म की गड़बड़ियां, बेजा थकान व तनाव, पीठ-दर्द, हीन-भावना, यौन रोग आदि। * शिशु-जन्म प्रक्रिया: गर्भाधान से लेकर प्रसवोपरांत थकान, सतर्कताएं एवं समस्याएं।। *सामान्य स्वास्थ्य - नारी शरीर-संरचना की संपूर्ण जानकारी. फर्स्ट-एड. मीनूपाज, बांझपन आदि।

होम ब्यूटी क्लीनिक



आज केवल सुंदर चेहरे को ही सौंदर्य नहीं मानते। सौंदर्य का मानी है- भव्य और दिलकश व्यक्तित्व।

इस पुस्तक में नारी सौंदर्य के सारे पहलुओं- चेहरे की त्वचा, झुर्रियां, श्रृंगार-प्रसाधन, केशकला, शारीरिक-सुंदरता, संतुलित आहार का विवेचन सैकड़ों फोटोग्राफ्स तथा रेखाचित्रों सहित वर्णित किया गया है। पुस्तक पढ़कर आप अपनी ब्यूटीशियन स्वयं बनें या फिर अपना होम ब्यूटी क्लीनिक खुद चलाइए।

पृ. 140, मूल्य : 36

अंग्रेजी में भी उपलब्ध।

आधुनिक उषा बुनाई शिक्षा



[illegible] पुस्तक में तरह-तरह की बुनाइयों का वर्णन है - सादे [illegible] व जालीदार [illegible] की बुनाई [illegible] नये फैशन की जानकारी।

[illegible] से प्रारंभिक बुनाई सीखने की [illegible] महिलाओं [illegible] बुनाई संबंधी [illegible] जानकारी [illegible] फंदे डालना, [illegible]-उल्टी बुनाई, [illegible] घटाना-बढ़ाना, [illegible] ऊनी वस्त्रों की [illegible], ऊनी वस्त्रों की मार-संभाल, धुलाई व सभी प्रकार के दाग-धब्बे छुड़ाने संबंधी उपयोगी सुझाव। बुनाइयों के 200 से अधिक डिजाइन्स भी दिए गए हैं।

पृ. 336 मूल्य : 60/-

न्यू लेडीज़ स्लीमिंग कोर्स



मोटापा एक अभिशाप है- पुरुषों के लिए भी, महिलाओं के लिए भी। स्त्रियों के लिए तो यह मौत समान है। पर आप घबराएं नहीं। आप भी मोटापे से छुटकारा पा सकती हैं। जरूरत है आपको लेडीज़ स्लीमिंग कोर्स पढ़ने की और इसमें दी गई हिदायतों का पालन करने की। आप केवल 15 मिनट प्रतिदिन व्यायाम कीजिए। पुस्तक में बताई गई डायटिंग कीजिए। आप देखेंगी छह सप्ताह में ही आपका वजन कम हो जाएगा। एक अचूक कोर्स, जो आपको अपना यौवन लौटा सकता है।

पृ. 116, मूल्य : 30

अंग्रेजी में भी उपलब्ध।

अपने निकट व ए.एच.व्हीलर के रेलवे व बस-अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता-



पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006, फोन : 239314

शोरूम: 10 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 *फोन:* 3268292, 3268293

2106 D